२१—पारधि=व्याध । वेधि.........आय=आकर वींध डालता है। मधुप=भ्रमर। मरम=मर्म। सुभाव=स्वभाव। जैसे...... रंग=जिस प्रकार जल और रंग मिलने पर एक रूप हो जाते हैं।

विशेषः—एक बार प्रभु की अलौकिक रूप-सुधा को चख लेने के पश्चात् उनके विरह में प्रेमी की अन्तःसृष्टि में जो उफान वा विलक्षण छटपटाहट होती है उसके भुक्त भोगी सभी अनन्य प्रेमी भक्त वही अपना स्वानुभव, स्वरचित पद-काव्यादि रचनाओं में करते आये हैं। महाराष्ट्र के संत तुकाराम ने इस पद के दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध के "पानी पीर न जानई ज्यों, मीन तड़फ मरि जाय"-इस भाव को अपने मराठी अभंग में 'जीवना वेगळी मासोळी, तैसा तुका तळ मळी' (अर्थात् जल से पृथक् की गई मछली के समान तुकाराम तड़फ रहा है) इन शब्दों द्वारा दरसाया है इसी प्रकार अपने प्रीतम की रूप-माधुरी का एक बार आस्वादन कर लेने के पश्चात् पुनः उसके लिये तरसती हुई श्री युगल प्रियाजी भी इसी पद के तीसरे चरण के पूर्वार्द्ध के भाव में ही पुकार उठती है—'सीखी कहाँ निठुरता एती, दीपक पीर न लावै। गिरि गिरि मरत पतंग जोति में, ऐसेहु खेल सुहावै।

पद—३५-५० को भी विचारिये।

२२—राती=लाल,। कुलरा न्याती=पारिवारिक स्वजन। यो मन.........समझाती मत्त गजराज के समान मेरा मन बड़ा ही विषयाभिमुख एवं चंचल है परन्तु सद्गुरू का कृपा हस्त अपने सिर पर पाकर, उसी अंकुश द्वारा ही उसे समझा कर ठिकाने लाती हूँ।

पाठान्तरः—

६ वीं पंक्ति में 'हरामी' के स्थान पर 'कुचाली'।

विशेषः—संसार में भगवद् प्राप्ति के जो भी साधन हैं वास्तव में वे सब चित्त के स्थिर करने के ही साधन हैं। 'चित्त की स्थिरता' और 'भगवद् साक्षात्कार' ये दोनों एक ही स्थिति के भिन्न शब्द-प्रयोग हैं। श्री पातंजल योग सूत्र के सू० २ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' और सू० ३ 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' में इसका पूरा रहस्य समाया है। सर्वत्र व्यापी परमात्मा को

'अभ्यास और वैराग्य' के साधन को ग्रहण करती है। 'तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यासः' योग सूत्र—समाधिपाद सू० १३ के अनुसार अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये यत्न करना ही अभ्यास है और,—'द्रष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्' समाधिपाद सू० १५ के अनुसार जिसकी भुक्त और योग्य विषयों में वितृष्णा अर्थात् अनासक्ति हो गई उस पुरुष की वासनाओं के वशीकार का नाम 'वैराग्य' है। स्त्री, अन्न, पानादि को विषय कहते हैं। वे सब भुक्त होने के पश्चात भी पुनः पुनः भोग की वासनाओं को उत्पन्न करते हैं। यही दृष्ट विषय वासना है। अनुश्रविक विषय वे हैं जिनका अभी तक भोग नहीं हुआ परन्तु कालान्तर में भोग होने की संभावना है—स्वर्ग सुखादि— उन पर भी तीव्र वासना हुआ करती है। इन सब वासनाओं के वशीभूत न होकर वासनाओं को अपने वशीभूत कर लेने का ही नाम वैराग्य है। सन्त तुकाराम ने अपने एक मराठी अभंग में प्रभु से वर मांगते हुए गाया है:—

'हें चिदान देगा देवा, तुझा विसर न व्हावा।
गुण गाईन आवड़ीं, हें चि माझी सर्व जोड़ीं॥
न लगें मुक्ति, धन, सम्पदा, संत संग देईं सदा।
तुका म्हणें गर्भवासीं, सुखें घालावें आम्हांसीं॥

'हे प्रभो, मुझे यही वरदान दो कि तुम्हारा कभी विस्मरण न हो, प्रेम से तुम्हारे गुणगान किया करूँ, धन और संपदादि वैभव मुझे नहीं चाहिये, बस सर्वदा संतों का संग हुआ करे। तुका कहता है कि इतना देकर फिर भले ही सुख से मुझे किसी भी जीव-योनि में जन्म मिले।' अब मीरांबाई की साधना देखिये! तुकाराम के जैसे उसे भी मुक्ति का कोई विशेष मोह नहीं। उसने श्रीकृष्ण ही को जो जन्म-मरण का साथी मान लिया फिर उसे भव-व्याधि का भय ही क्यों! 'थांने नहिं विसरूं दिन राती' का तात्पर्य वह प्रभु का रात्रि दिन में कभी भी विस्मरण नहीं होने देती अर्थात् उसके हृदय में अपने प्रियतम का अखंड स्मरण बना रहता है। 'ऊँचो चढ़ चढ़ पंथ निहारूं' से यह भाव व्यक्त होता है कि स्वीकृत भक्ति पथ में क्रम, क्रम से प्रगति करती हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती जा रही है जैसा कि मीरांबाई ने कहा है:—

पाठान्तरः—

म्हारा पुरब जनमरा साथी, थाँसे नहिं भूलौं दिनराती ॥०॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, जाणे तो मदनो हाथी ।
सत गुरू हस्त धर्यो सिर उपर, अंकुश दे दे चलाती ॥३॥
मीरांबाई के साँवरो गिरधर, सुण लीज्यो म्हारी वाती ।
हाथी जोड़ कर म्हें करूँ विनती, भौ भौ की म्हें दासी ॥४॥

अधिक चरणः—

यो संसार हाट को मेलो, सांझ पड़्या उठ जासी ।
घेलो राणाजी मान्यो नहीं रे, अमरापुर ले जाती ॥

२४—गुरू······भागी हो=गुरू प्रताप से भगवदानुभव पाकर दुर्मति नष्ट हो गई। दियना=दीपक। या तन को·········राती हो= प्रेम रूप तेल से भरे इस तन रूप दीपक में मनकी वत्ती वनाकर उसे रात्रि दिन जलाती हूँ। अर्थात् काया, वाचा, मनसा भगवत्प्रेम में निरन्तर लवलीन रहती हूँ। पाटी पारों=केश सँवारूँ। पाटी······वारां हो= ज्ञान के मर्म को और सात्विक भावों को ग्रहण कर उन पर मनन और निदिध्यासन करती हुई अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पण कर देती हूँ।

विशेषः—यह निगुर्णी भाव का पद है। सत्गुरू की कृपा से नर जन्म को सार्थक करने के लिये आवश्यक कर्त्तव्य-ज्ञान के उदय होने पर उस पथ पर अग्रसर होने वाले साधक को किस प्रकार अत्यन्त कठिन विरहावस्था का अनुभव करना पड़ता है, इसमें वही भाव प्रदर्शित किये हैं। विरहाग्नि में शरीर का क्षीण होना, मन छीजा करना एवं निद्रा का छूट जाना पद के प्रथम चरण में बताया है। दूसरे में तड़फते हुए मन को ज्ञान द्वारा धैर्य देने और प्रभु को आत्मसमर्पण करने का भाव है। तीसरे में प्रभु के स्वागत में तत्पर साधक दर्शनोत्कंठा की सीमा पर पहुँच जाता है। चौथे में असह्य प्रतीक्षा में निरन्तर आँसू की झड़ी लगी रहने की स्थिति है। पाँचवा चरण अनन्यता का सूचक है एवं छठवें में प्रभु पद की प्राप्ति के लिये प्रार्थना अथवा एक बार अपने प्रियतम में मिलकर सदा के लिये वियोग-व्यथा से मुक्त हो जाने के लिये विरही हृदय की पुकार है।

युगों से पृथक् हुई मीराँ को लाकर प्रभु ने अपने निज धाम में स्थान दिया।

पाठान्तरः—

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरू दिया वताय।
जुगन जुगन से विछड़ी मीराँ, वर लीन्हों मैं पाय ॥४॥
(लीन्हीं कंठ लगाय)

भावार्थः—गली तो········कैसे जाय=प्रभु से-प्रियतम से मिलने की तीव्रोत्कंठा होने पर भी वीच में अनेकानेक वाधायें हैं जिनमें ४ प्रधान है। वाधायें क्या हैं, प्रभु के पादपद्मों तक पहुँचने के अथवा मानव जीवन की कृतार्थता के लिये जो ४ प्रकार के साधन प्राप्त होने चाहिये वे सुलभ नहीं हो पा रहे हैं इसलिये वाधायें। सांसारिक मायाजाल और मोहादिक प्रपंच के कारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ४ पुरुषार्थ नहीं सध पाते, ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग में से किसी मार्ग का अवलंबन नहीं हो पाता, विवेक, वैराग्य, षड्सम्पति और मुमुक्षुता ज्ञान के इस साधन चतुष्टय को धारण करने की क्षमता नहीं और प्रेमा-भक्ति के ४ मुख्य अंग—नाम, रूप, लीला व धाम की साधना भी नहीं वन पड़ती, तव प्रभु की प्राप्ति कैसे सम्भव हो और परमार्थ पथ पर किस प्रकार प्रगति हो! इन्हीं भावों को मीरांवाई ने वड़ी ही रहस्यमयी और सरस पद्धति से इस पद में व्यक्त किया है। जीव जाकर हरि से कैसे प्राप्त हो जव कि, (१) वीच की राह निष्कंटक और सरल नहीं (२) प्रियतम का रंगमहल समतल भूमि पर वना हुआ नहीं और न सुगम ही है, (३) मार्ग में स्थान स्थान पर पेहरे और लुटेरों के कारण मार्गाव-रोध का भय है, (४) प्रियतम का स्थान अत्यधिक दूर है। ये चारों वातें प्रतिकूल होने से प्रिय मिलन के कार्य में रुकावट उपस्थित करती हैं। ऊंची नीची········डिग जाय=प्रथम वाधा राह की, जोकि इस प्रकार फिसलने जैसी वनी है कि पैर टिक ही नहीं पाता वड़ी सावधानी से पैर रखने पर भी वार वार खिसकता जाता है अर्थात् लोभ, मोह, तृष्णादि वाह्य सांसारिक प्रलोभन इस प्रकार मायिक और प्रभावशाली हैं कि मन को वार वार चंचल और विचलित कर देते हैं। ऊँचा

के द्वार रुद्ध पाकर व्याकुल होकर वह पुकार उठता है—'गलितो ········जाय'। योग साधन के अभ्यासी को सर्वप्रथम यम-नियम सम्पन्न होना चाहिये। यम-नियम का पालन न करने वाले को त्रिकाल में भी योग की प्राप्ति नहीं हो पाती। सर्वदा व सर्वत्र किसी के भी द्वारा अविच्छिन्न रूप से इनका पालन किये जाने पर ये महाव्रत कहलाते हैं। सभी संप्रदायों में इनका महत्व माना है। यहाँ तक महिमा है कि सम्पूर्ण योग को न साधकर केवल यम-नियम का ही पूर्ण रूप से आचरण किया जाय तव भी मानव-जीवन संसार में महान आदर्शभूत होता हुआ कृतकृत्य हो जाता है। इनके साधन के समय में आने वाली वाधाओं से वचने के लिये उपर्युक्त सू० ३३ और ३४ में वड़ी ही मार्मिक युक्ति वताई है। इन्हीं सव वातों की ओर लक्ष्य करके ही प्रथम चरण में कहा गया है:—उँची नीची········डिग जाय। स्थान्युपनिमन्त्रणे संङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्॥ यो० सू० विभूति० सू० ५१ के अनुसार साधन काल में क्रमशः पांचभौतिक, पंच तन्मात्रिक, पञ्चभाव और तीन गुण सम्वन्धी विषयों का अर्थात् इन चार स्थानों का और वहाँ के देवताओं का साक्षात्कार होता है, इन्हें स्थानियां का उपनिमंत्रण कहते हैं। चाहे किसी का साक्षात्कार हो उस समय उसके संग का आनन्द लेना ठीक नहीं क्योंकि इससे पुनवरि अनिष्ट की सम्भावना होती है। चरम लक्ष्य तक पहुँचने पर्यंत यदि उत्तरोत्तर गुण-वितृष्णा (वैराग्य) होती गई तो कुल वासनाओं के शेष हो जाने से वह विराम-प्रत्यय, निवृत्तिमार्ग कहलाता है-(समाधि-सू० १८) परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका, विषयों के साक्षात्कार में योगी यदि आसक्त हो गया तो 'भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्' (यो० सू० समाधि १६) के अनुसार उसका भव-प्रत्यय अर्थात् संसारासक्ति-कारक प्रवृत्ति मार्ग होता है। इन्हीं सव भावों को लेकर मीरांबाई ने दूसरे चरण में गाया है, उचा नीचा········झकोला खाय।

"व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या विरतिभ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥३०॥"

रोग, चित्त की अकर्मण्यता, सन्देह, असावधानता, जड़ता, विषय वासना, भ्रमदृष्टि, साधन में सिद्धि न होना और चित्त की अस्थिरता—ये सब चित्त को विक्षिप्त करने वाले अन्तराय हैं।

तड़पती है, मेरी भी वही स्थिति हो रही है। महाराष्ट्र के भक्त कवि संत नामदेव के उपरोक्त अभंग में मीराँ जैसी ही भाव तीव्रता की अनुभूति व्यक्त होती है।

मो विरहिन की बात हेली विरहिन होर जानि है।
या तनकूं विरहा लगोरी हेली ज्यूं घुन लागो काठ।
निसदिन खाये जातु है, देखूँ हरि की वाट॥

(महात्मा चरणदास)

उपर्युक्त चरण के साथ मीराँ के इस पद का (प्रथम चरण-उत्तरार्द्ध) कैसा चमत्कारिक भावसाम्य ही नहीं अपितु शब्द साम्य भी है सो देखने योग्य है।

श्री नारदभक्ति सूत्र में प्रेम रूपा भक्ति का लक्षण नारद मत से यह बताया है कि:—नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुल तेति [नारद भक्ति सूत्र १६]। 'देवर्षि नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ासा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ही भक्ति है।' मीराँ के 'मैं हरिबिन क्यों जीयूंरी माय।' इस सारे पद में यही भाव झलक रहा है। वास्तव में सुंदरातिसुंदर और मधुरातिमधुर उन प्यारे श्यामसुन्दर की अपूर्व प्रभामयी और सुधामयी छटाके अनुपम दर्शन हो जायँ तो फिर संसार में और ऐसी आनंदमयी कौन स्थिति है जो उसका विस्मरण करा सके। जिसने एक वार भी उनकी वाँकी छटा का—उस दिव्य-रूप-सुधा का आस्वादन कर लिया क्या उसका फिर कभी सांसारिक वस्तु में चित्त लग सकता है!

मीराँ के पद २१ और ५०,(इसी विभाग में) को भी विचारिये।

३६—पाठभेद:—टेर-हरिमन वज्र कियो री सजनी।

४१—विशेष:—विरही जनों की सृष्टि सर्वथा न्यारी ही हुआ करती है। प्रियतम के विरह में उन्हें सभी वातें विपरीत हो जाती हैं, यहाँ तक कि शीतल, कोमल और सुधामयी रश्मियों युक्त चन्द्रमा भी उन पर अग्नि वर्षा करता सा उन्हें प्रतीत होता है। साहित्यिक संसार में सुधाकर का वहुत अधिक महत्व है। इस पद की विशेपता यह है कि

४३—जानि·····बाती=बीती बात को—किसी रहस्य को लेकर ही उन्होंने मौन धारण कर रखा है।

४४-पद पाठान्तरः—

पतियां में कैसे लखुं। लिख्यौ री न जाय ॥०॥
कलम भरत मेरो कर कंपत है। नैन रहै झड़ लाय ॥१॥
बात कहूँ तो कहत न आवे। जीव रयों डर राय ॥२॥
विपत हमारी देख तुम चाले। हरी यो हरिजी सूं जाय ॥३॥
मीराँ के प्रभु सुख के सागर। चरण की कवल रखाय ॥४॥

अन्य पाठान्तरः—

कैसे लिखूँ में सजनी, पतियां लिखी न जाय ॥०॥
कलम भरत मेरो कर कंपत है, शब्द से हिरदो भराय ॥१॥
बात कहुं तो मोरी जिव्हा चलत ना, नैणा से आंसु न्हाय ॥२॥
किस विध सुमरूं ध्यान धरूं में, कंपे मोरी काय ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, ये दुःख ना विसराय ॥४॥

४५-पिव·····विहाइ=प्रिय प्रतीक्षा में ज्यों त्यों कर काल व्यतीत करती है।

विशेषः—इधर मीराँ कौए के साथ पत्रिका भेजती है उधर विद्यापति की गोपी भी अपनी पत्रिका किसी के साथ भेजने को व्याकुल हैः—

के पतिआ लए जाएत रे मोरा पियतम पासे
हिय नहिं सहए असह दुख रे भेल साओन मास॥

४६—तोड़े=तोलता है, जाँचता है। वालूडारी=बालक की। चेजे लागे=चुगने लग जाते हैं। टाँडा=बालध—व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों आदि पशुओं का समूह।

भावार्थः—संसार के प्राणी दिन भर के परिश्रम के पश्चात् जब रात्रि को सो जाते हैं तब विरहिणी ही एकमात्र प्रिय चिन्तन में बैठी बैठी जगा करती है। इसके अतिरिक्त वैसे तो प्रजा रञ्जन की चिन्ता में राजा, बार बार रोते हुए नन्हें बच्चों को सम्हालने वाली माता, एकान्त

४८--पतीजे = विश्वास करेगा। अंचरो = आँचल, पल्ला। क्या ......दीजे = ऐसी मिथ्या बात में क्या धरा है।

४९—ऊनालो=ग्रीष्म ऋतु। ढोलन की = झलने की । पतियाँ... सावन की = पत्र पढ़ते समय, उसमें प्रियतम के आगमन के समाचार न पाकर, विरहाग्नि तीव्र हो उठी और नेत्रों से श्रावण की भरी नदियों के समान अश्रु धारा बह रही हैं। सियालो = शीत काल।

भावार्थ:—मीरांबाई ने इस पद में पूर्वानुभूत गोपी भाव व्यक्त किया है। बृन्दावन को शीघ्र लौटने का वचन देकर जब से श्रीकृष्ण मथुरा पधार गये हैं तब से गोप ललनायें उनके विरह में दिन गिन रही हैं। प्रतीक्षा करते करते ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा और तत्पश्चात् शरद आदि ऋतु परंपरा का कोई अन्त नहीं आता है। बीत रही अवधि में जबकि ऋतु विशेष के अनुकूल विविध प्रकार से उनकी सेवा करने के भाव हृदय में उमड़ उमड़ कर आते हैं तब उस परिस्थिति में, उनकी ओर से आई हुई पत्रिका, जिसमें कि उनके पुनरागमन का कोई सन्देश नहीं, गोप सुन्दरी उसे धैर्य पूर्वक पढ़ने का साहस ही कैसे कर सकती है!

५०—कान......होजाई = जैसे घुन खाई हुई वन में पड़ी लकड़ी को अग्नि सहज ही जला डालती है, वैसे ही सुदीर्घावधि से प्रिय विरह में छीज छीज कर अत्यन्त क्षीण हुई काया, प्रभु के दर्शन विना अब तो शीघ्र ही भस्म होना चाहती है। पद-२१ और ३५ को भी विचारिये।

५२—उमावो = उमंग, उत्कंठा। नाभि न.........साँसड़ियाँ = हृदय में श्वास नहीं ठहर पाता। आरत = तीव्र उत्कंठा। आँटड़ियाँ = आँट, उपेक्षा।

५३—पाठभेद:—(टेर) जाओ हरि निरमोहडा रे। चरण-१, 'अब......रीत' के स्थान पर 'अब क्यों भये नचीत।'

५६—विशेष:—व्रजभाव के परम रसिक महाकवि सन्त सूरदास भी प्रेमपथ पर चलते हुए यही अनुभव पाकर अपने तड़फते हुए हृदय से गा उठते हैं:—

प्रीति करि काहु सुख न लह्यो ॥०॥
प्रीति पतंग करी दीपक सों। आपै प्राण दह्यो ॥१॥

तो फिर उसे, सूर्यास्त के समय कमल के मूँदें जाने की भी कोई सुधि नहीं रहती। कमल में बन्द हो जाने पर उसमें छिद्र करके बाहर निकलना भी इसलिये वह नहीं चाहता कि कहीं अपने प्रेम पात्र को तनिक भी व्यथा न हो। अन्त में किसी जल विहार करने वाले गजराज के द्वारा नष्ट हो जाता है।

जायसी ने भी यही कह दिया है:—प्रेम-पंथ जो पहुँचे पारा।
बहुरि न मिलै आइ एहि छारा॥

प्रेम-प्राप्ति का मूल्य बताते हुए महात्मा कबीर कहते हैं:—

प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे, सीस देई ले जाय॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं हम नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

वास्तव में इस प्रेम-गली में दो के लिये अवकाश ही नहीं। 'ध्याने ध्याने तद्रूपता' अथवा 'कीट-भृंग' न्याय से अन्त में अपने प्रियतम में मिलकर एकाकार होकर ही प्रेमी की साधना शेष होती है।

प्रेम मार्ग की सूक्ष्मता और दुर्गमता की ओर संकेत करते हुए भक्त कवि बोधाजी ने क्या ही सरस और सारगर्भित विवेचन किया है:—

अति छीन मृनाल के तारहु तें, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई-बेह तें द्वार सँकीन, तहाँ परतीतिं कौ टाँडो लदावनो है॥
कवि 'बोधा' अनी घनीनेज हु तें, चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पै धावनो है॥

देवर्षि नारद रचित 'भक्ति सूत्र' में 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' इस ५१ वें सूत्र से लेकर ५५ वें सूत्र तक 'प्रेम' का जो स्वरूप बताया है वह भी बड़ा ही मननीय है।

५७—करवत=पूर्व काल में काशी में करवत लेने से (करवत द्वारा मस्तक कटवाने से) मुक्ति मिलने की प्राचीन काल से मान्यता चली आती थी।

से मोरा बिहि विघटाओल,

निन्द ओ हेराएल रे ॥ (विद्यापति)

६१—आवड़े=चैन पड़ता। ढँढोरा फेरती=डुग्गी पिटवाती।

विशेषः—प्रियतम के बिना विरहिणी के अन्तस्तल में रह रह कर ऐसी कसक उठा करती है कि उसे किसी भी स्थिति में चैन नहीं पड़ता। न खाना भाता है न नींद ही आती है। निरन्तर प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा में व्याकुल हो झुर झुर कर, रो रोकर जब तन, मन, प्राण और नेत्र क्षीण हो जाते हैं तब उस असह्य अन्तर्व्यथा की परिस्थिति में, प्रीति करके आपत्ति मोल लेने के लिये हृदय में मधुर आत्म-ग्लानि युक्त निराशात्मक भाव हठात् कभी उदय हो जाय तो कोई आश्चर्य जनक नहीं है।

विचारिए:—

सोच फिकर में भइ मैं बावरी नैन गमाया साधां जोय जोय।
कहा तो करूँ रे मेरा पियु नहिं पाया, नयन गमाया साधां रोय रोय।

(कबीर)

६२—नाव्या फरीने=फिर से नहीं लौटे। मे'ली=छोड़कर। जई=जाकर।

६४—पातळिया=प्रीतम। वहेला=शीघ्र। जइ ने = जाकर। नाभि ......रचीलारे=कुंडलिनी शक्ति के जागृत होने के बाद प्राण शक्ति जब धीरे धीरे भृकुटी चक्र में जाकर ठहरती है तब नाना प्रकार के विचित्र दृश्य दिखाई देते हैं। सुखमना=सुषुम्ना। एनी=उसकी सुखमना......रासधारी=प्राण शक्ति सुषुम्ना में स्थिर होने के बाद ही हृदय के भीतर परमात्मा का व उनकी दिव्य लीलाओं का अनुभव होता है। घरेणुं=आभूषण। अवर=अन्य। मामेरां पूर्या=माहेरा किया। छाब......आवो रे=सामग्री लेकर शीघ्र पधार गये। साव= शुद्ध। शीवडावुं=सिलाऊँ। विंटाणा छे वरमाळे=वरमालाओं से लिपटे गये। कागळीयानो......न होती रे=उस दिन (उस समय में) कागद, स्याही और लेखिनी आदि लेखन सामग्री दुर्लभ थी। एटलुं= इतना। मधुरी......जागेरे=मधुर मुरली ध्वनि को सुनती हुई श्री राधा

श्री युगल प्रियाजी भी अत्यन्त विरहाकुल होकर इसी स्वर में पुकार उठती है :—

नयननि नींद हिरानी,
व्याकुल व्हे सुध बुध सब भूली, हरी विरह की आग में।
जुगल प्रिया हरि सुध हू न लीन्हीं, कहा लिखी या भाग में॥

७०—सागी=साक्षात्।
७१—पाठ भेद :—

तुम कहो ने जोशी मोहे राम मिलन कब होशी॥०॥
(नया चरण)
पिया मिलन बिन झुरी झुरी, दुःख चिता करी शोषी॥

७२—बाबल=पिता अथवा कहीं ताऊ भी। छीजिया=क्षीण हो गया। करक=हड्डियाँ। गळ आहि=गले में आकर। आँगळियाँरी=अंगुलियों की। मूदड़ी=अँगुठी। साम्हले=सुनेगी। खिण=क्षण। ज्याँ देसाँ=जिस देश में।

भावार्थ:—माँस........बाँहि=श्यामसुन्दर के आत्यन्तिक विरह में अन्नादि के प्रति सर्वथा अभाव हो जाने के कारण काया ऐसी क्षीण-कंकाल (हड्डियों का ढाँचा) हो गई कि अंगुली में पहनी अंगुठी हाथ में आने लगी। काढ़.........खाय=विरहाग्नि में जलते हुए मेरे कलेजे को, हे काग! प्रियतम के समक्ष ले जाना और उनको मेरा हृदय बताकर भले ही खा जाना।

विशेष:—इस पद के चरण १ व २ से तुलना करिये:—

पिय कारन पियरी भई हो लोग कहैं तन रोग।
छह छह लांघन मैं कियो रे पिया मिलन के जोग॥
कबीरा वैद बुलाइया, पकरि कै देखी बाहँ।
वैद न वेदन—जानइ, करक—करेजे माहँ॥
(कबीर)

७३ भावार्थ:—योग साधन में सुषुम्ना नाड़ी का बहुत अधिक महत्व

धना भक्त भी यही कहते हैं:—'राम बाण वाग्यां होय ते जाणे।'

प्रेम से घायल हृदय घायल की गति को जान तो सकता है, परन्तु न तो वह अपने न अन्य किसी घायल के हृदय की परिस्थिति को समझ सकता है।

पूछा जो मैंने दर्दे मुहब्बत से 'मीर' को।
रख हाथ उसने दिल पै टुक इक रो दिया॥

प्रेम की कसक कोई कहने-सुनने की वस्तु नहीं। 'मूकास्वादनवत्' (नारद भक्ति सूत्र ५२) इसकी स्थिति है।

प्रेम घाव दुख जानन कोई। जेहि लागे जानै पै सोई॥
(जायसी)

उपचार के लिये घायल मीराँ वन वनमें ढूँढती फिरती है पर,

प्रेम बान जेहि लागिया, औषध लगत न ताहि।
सिसकि-सिसकि मरि-मरि जियै, उठै कराहि कराहि॥
(कबीर)

न उसे औषधि ही मिलती है और न कोई ऐसे वैद्य ही प्राप्त होते हैं जो उसका ठीक ठीक उपचार कर सके। भव-व्याधिग्रस्त संसारी जनों के पास प्रेम-व्याधि की औषधि हो ही कैसे सकती है। मीराँ का उपचार तो 'मीराँ की प्रभु पीड़ मिटै जब वैद्य साँवरियो होय' एक मात्र श्यामसुन्दर ही कर सकते हैं। वे ही सच्चे वैद्य हैं। वे ही प्रियतम साक्षात् आकर जब दर्शन दें तभी उसकी व्याधि समूल मिट जाती है।

७६—दिख्यां········पतीज्यौ = दर्शन होने पर ही प्राणों को शान्ति होगी।

पाठभेद:—

थे मेरी सुध ज्यूं जाणौं ज्यूं लीज्यौ ॥०॥
बिरह लगी मोय कछु न सुहावे। तन धन यूं ही छीज्यौ ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी। मिल बिछड़ न जिन कीज्यौ ॥४॥

······विचारी=दोनों ओर से जलने वाले दीपक के समान व्याकुल विरहिणी के तन और मन दोनों ही जलते हैं।

८२—पांचूँ······धरावै हों=विरह के कारण पाँचों इन्द्रियाँ मेरे वश में नहीं अर्थात् नेत्र उनकी मधुरी छवी के दर्शन करने, कान उनके कण्ठ और मुरली स्वर को सुनने, जिह्वा उनसे प्रेम वार्ता करने, प्रेम-सुधा पीने और अंग अंग उनके दिव्य स्पर्श को पाने—उनसे लिपटने को अत्यन्तातुर हो रहे हैं परन्तु वर्षा काल में नव जलधर को देख कर वर्षा की आशा के समान ज्यों त्यों धैर्य धारण करते हैं। अरदास=माँग, विनती। तलफ······समावै हो=प्रियतम के बिना तड़पते हुए प्राणों की 'पिया पिया' की पुकार में—उस प्रिय स्मरण में ही एक ऐसा सुधामय-आनन्दयुक्त आस्वाद है कि हृदय में निरन्तर रटन लगी रहने पर भी तृप्ति ही नहीं हो पाती और अधीरता बढ़ती जाती है। निरदायै=निर्द्वन्द विथा=व्यथा। ऐसी······गुमावै हो=हे प्रभो हमें ऐसी औषधि प्रदान करो कि सारी विरह-व्यथा मिट जायँ।

८३—ओलगिया=दूर के प्रवासी। आभ=अभ्र, बादल। णाँ-नीर······लायाजी=बादल में जल के समान नेत्रों में जल भरा हुआ है और वर्षा की झड़ी के समान झरना लग रहा है अर्थात् अहर्निश अश्रुधारा वह रही है। रतवँती········बिलखायाजी=अपने स्वामी की अनुपस्थिति में ज्यों ऋतुमती नारी हृदय-व्यथा के कारण मलिन-मुख-कांति लिये फिरती है।

८४—अलीसुत=भँवरा। जल सुत सूँ=कमल से।
भावार्थ के लिये देखो पद—५६।

८५—अगम=गहन, (विरह के कारण) कठिन। अगण=अगण्य (प्रियतम के बिना दीर्घावधि के बीत जाने से अब दिन वा मास गिनने में कोई रस नहीं)। अगहन=मार्गशीर्ष। शी=शीत। जाड़ो=शीत, ठंड। केसू विशेष=वसंतोत्सव में श्याम उपस्थित हो तभी विशेषता है। लोभान=लुभाता है। ताती=गरम। चलत······लिपात=अत्यन्त गरम लू प्रसर रही है। टूकत=कुहकता है। खाँच्या नेह=प्रेम खींच लिया। अकारथ=व्यर्थ।

९५—पाठभेदः—

विरह दुखारी मैं तो वन वन दोडी ॥

प्राण तजूँगी लूंगी करवत कासी ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।

हरि चरणा की दासी ॥३॥

९७—पेस=समर्पण। अदीती=वीत गई। पंडर=श्वेत।

पाठान्तरः—(टेर) कह ज्यो म्हारा रमइयाने आज्यो म्हारे देश ॥

अंतिम चरण में—मीराँ के···मिलोगे, मटगो मनको कलेश ॥४॥

९८—कुरळहे= कूकते हैं। दूरी जिन मेले हो= (नदियाँ भी अपने प्रियतम सागर से मिलने दौड़ती हैं तो) मुझे ही दूर मत रखना अर्थात् प्रिय-मिलन से वंचित मत रखना। झेलती=ग्रहण करती है। पाला=हिम। फागाँ=होली के गीत। वणराय=वृक्ष, लकड़ी। ऊपजी=तीव्र उत्कंठा) जगी। फूलवै=प्रफुल्लित होते हैं। काग·····गया=शकुन के लिये काग उड़ाते उड़ाते दिन वीत गये।

९९—होय········सपेद= (विरह में) अंग कान्ति फीकी पड़ गई।

१००–कव को········चितारयो=किस वैर का वदला लिया। दाध्या=जले हुए। लूण=लवण।

१०१–लागी········जाणै=जिसे लगी है वही जानता है। सीर=साझा, भाग। सदकै=समर्पण।

विशेषः—इस पद में कहीं कहीं पंजावी भाषा का प्रभाव दीख पड़ता है।

१०२–गुलाली को चूड़लो=(कृष्ण) अनुराग की चूड़ी, प्रेम कंकण। सांचरया=विचरने निकले। सामां=सन्मुख। हळ········मेळ= (आशा भरा सन्देश पाकर) चहूँ ओर उमंग भरा वातावरण होगया, तन-मन में प्रसन्नता की लहरें उठ रही हैं। म्हांने·····वलमाय=(और सब चले गये पर) अपनी हंस गति के कारण विलम्व हो गया, मेरे मानस हंस ने मुझे (प्रियतम के रहस्यमय सन्देशानुसार प्रियानुसन्धान के लिये प्रेरणा करा कर) विलमा दिया, (प्रियतम की ओर से सन्देश

मीराँ दासी जनम जनम की हरजी से आन पड़ी।
दे दर्शन मेरा प्राण बचाओ धन हो मेवाड़ा ठाकुर आज की घड़ी ॥४॥

११४—प्रोईने = परोवीने, पोकर, लगाकर।

११५—सीस········न्यारा = शरीर के कर्मों में विसंगतता आ गई, देह वश में नहीं।

११६—वंध्या=वँधा है। संध्या = सन्धा है। अजासूत········संध्या = ज्यों व्याघ्रों के बीच में वँधे हुए अजासुत अर्थात् बकरे की अथवा स्वाति विन्दु के बिना, प्राणों पर शर सन्धानवत् पपीहे की जो स्थिति होती है वैसी प्रियतम के बिना विरहणी की। भई········पान रे हरदी = प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा में निराश होकर विरहिणी पीले सूखे पत्ते के समान अथवा हल्दीवत् फीकी-कान्ति हीन हो गई। पैंडो=माग।

११८ च्यारि········कहोजी = चार (बातें) सुनादी तो दस और सुनाओ।

११६-मारूडा-मारूजी = प्रियतम पति। सनक सनक = शान्ति पूर्वक भीतर समाते हुए। वैन = वेणु।

१२१—करवट = एक ओर से दूसरी ओर मुड़ कर लेटना। आन········परभात = (आये तब) प्रभात हो गया।

१२३—विशेषः—श्री कृष्णचन्द्र भगवान् के व्रज-त्याग के पश्चात् उनके विरह में चराचर सृष्टि के तड़पने का इस पद में वड़ा ही करुण वर्णन है।

१२४—खुमार = (प्रेम का नशा)। अमल········मोकूँ = विना नशा किये ही नशा चढ़ गया। इचरज = आश्चर्य। या तनकी········तार = इस देह रूपी वीणा में नाड़ियों के तार बाँध कर उसे बजाऊँ (प्रियतम को रिझाने के लिये)। समझ बूझ········रिझवार = विचार पूर्वक किये गये किसी भी उपाय से प्यारे मिल जायँ तभी रिझने वाले (प्रियतम) वास्तव में रिझ गये ऐसा जाना जायगा।

१२५—प्यारी = प्रियाजी, श्रीराधिकाजी। मांझल = मध्य। गात = अंग। मींडत = मलकर, मींजते हुए।

१२६—वोहोरा = ऋणदाता।

"तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्" (योगसूत्र समाधि सू० २) के अनुसार द्रष्टा अपनी स्वरूप-स्थिति-आनन्द स्वरूप को प्राप्त होता है।

१५६—बोलात·········पास=विरहावस्था में कोयल का कुहुकना भी गलफाँस के जैसे प्रतीत होता है। जीवन=जल-स्वाति बिन्दु। कुरनां=टिटिहरी के, कुररी के। ईंडा=अण्डे। मेले=रखती है। जैसे·········पास=जिस प्रकार पिव पिव बोलने वाले चातक को स्वाति जलबिन्दु के लिये प्यास लगी रहती है, और ऊँचे उड़ती हुई टिटहरी का मन ज्यों सागर तट पर रक्खे हुए अण्डों में लगा रहता है विरहिणी मीराँ कहती है कि त्यों मेरा तन मन एक मात्र प्रियतम श्यामसुन्दर में ही लगा रहता है।

१६०—अलप तलप=स्मृति में तरस तरस कर। बार·········भावे=प्रति दिन विविध रसोई बना करती है पर अन्न पर तनिक भी रुचि नहीं रहती है। सेज·········आवे=प्रियतम श्यामसुन्दर के बिना सूनी शय्या पर नेत्रों में निद्रा नहीं आती है।

१६१—बगड़ पड़ोसण=निकट की पड़ोसिन। कदे=कब।

प्रथम चरण पर विचारिये:—

सून सेज हिय सालिए रे,
पिया बिनु घर मोयँ आजि ॥
(विद्यापति)

१६२—मेहुँडा=मेह, वर्षा। बूँद·········गाँसी=विरह के कारण वर्षा की बूँदें तीर की धार ज्यूँ प्रतीत होती है।

चित्र-सूची

★

और मुसलमानी अद्वैतवाद का हिन्दुओं पर भी प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे एक नया आन्दोलन चलते चलते सूफी-मत का प्रचार होने लगा और एकेश्वरवाद तथा भक्ति की हिन्दुओं में चर्चा होने लगी। परिणाम रूप १५ वीं शताब्दी में कई संत-महात्मा ऐसे हो गये जिन्होंने यही उपदेश किया कि ईश्वर एक है और भिन्न-भिन्न धर्म उसके पास पहुँचने के लिये केवल मार्ग रूप है तथा नीच से नीच मनुष्य भी भक्ति को अपना कर परम गति को, प्राप्त कर सकता है। रामानंद, कबीर, नानक, वल्लभाचार्य, चैतन्य आदि महापुरुषों ने यही उपदेश किया।

भारत सदा से आध्यात्मिक दृष्टि से विश्व का गुरु बना रहा है। भारत से और देशों ने कुछ न कुछ सीखा है। जीवनोपयोगी आवश्यक सभी क्षेत्रों में यह कभी पीछे नहीं रहा। सोलवीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक तो भारत के सभी प्रांतों में संत महात्माओं की प्रधानता थी या यों कहा जाय कि यह मध्य काल संतों ही का युग था।

बंगाल में १२ वीं शताब्दी में भक्त कवि जयदेव ने जो गीत-गोविंद द्वारा व्रजभाव की राधा-कृष्ण के प्रेम की अमृत-स्रोतस्विनी बहाई थी, चौदहवीं शताब्दी में व्रज-भाव के प्रेमी बिहारी कवि विद्यापति ने उसी की मधुर लहरियों में अपने आपको परिप्लावित कर दिया और उसी अनुभूत आनंदास्वाद के कुछ अमृत-कण काव्य द्वारा विश्व में बिखेर दिये।

गुजरात में व्रज-प्रेम में पगले परम भक्त नरसिंह मेहता ने श्री राधा कृष्ण-रति के उन्माद में आत्म विभोर होकर भगवान् के रास विलास में साक्षात् अनुभव करने का अधिकार पाया था,

शिथिल पड़ती जाती थीं उन्हें फिर नया बल प्राप्त हुआ । संत कबीर निर्गुण पंथ के अगुआ रहे। इस निर्गुणवाद के उगम से, उस साधना के परिचायक, गगन मंडल, शून्य शिखर, सुरता, समाधि, वंकनाल, सुषुम्ना, भंवर, गुफा आदि आदि शब्द तत्संप्रदाय वाणी में व भाषा में प्रचलित होने लगे। संतों के विचरने से राजस्थान में भी धीरे-धीरे इस मत का प्रचार होता रहा जिसका प्रभाव कुछ मीरांबाई पर भी पड़ा जो उनके पदों में कहीं-कहीं देखा जाता है।

इस समय पंजाब में गुरु नानक अवतरित हो चुके थे और बंगाल में श्री गौर चन्द्र (श्री चैतन्य महाप्रभु) का उदय हो चुका था। पंजाब में गुरु नानक से एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ और बंगाल में श्री चैतन्य देव ने राधा कृष्ण के प्रेम व भक्ति की मंदाकिनी इस प्रकार बहादी कि जिसकी धाराओं ने वहाँ के प्रवर्तित 'शाक्त' मत को भी निष्प्राण-सा कर दिया ।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य द्वारा भी पुष्टि संप्रदाय की नींव डाली जाकर उनके शिष्यगण द्वारा उस पर निर्माण कार्य होने लगा था।

इधर राजस्थान के क्षितिज में प्रगट होकर मीरांबाई ने भी ऐसी भक्ति की भागीरथी बहाई कि जिसके पुण्य मय स्रोत में अनेकों नरनारी अवगाहन करके पावन हो गये। केवल राजस्थान में अथवा समूचे भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सारे विश्व में देवी-मीराँ का नाम अजरामर हो गया। सारे ब्रह्मांड भर में उसका कीर्ति-सौरभ फैल गया तथा विश्व के विभिन्न साहित्य और भक्ति-क्षेत्र में उसने अमिट स्थान पा लिया।

मेरी संतति कोई भी मेवाड़ की राजगद्दी पर नहीं बैठेगी। इसके पश्चात् महाराणा के साथ उस सम्बन्ध के निश्चित होजाने की राजसभा में घोषणा की गई।

इस प्रकार महाराणा का हंसादेवी से विवाह होगया और उससे मोकलदेव नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। कालान्तर में छोटे कुंवर को युवराज पद देकर, चुंडाजी को उसका रक्षक और प्रबंधक नियुक्त कर महाराणा गयाजी चले गये, जहां यवनों द्वारा उत्पीड़ित यात्रियों की रक्षा के निमित्त होने वाले संघर्ष में काम आये।

अब मोकल जी चित्तौड़ का राणा बना। उसके मामा रणमल ने जो बहिन के नाते चित्तौड़ में ही रहता था—अनुकूल अवसर पाकर शनैः-शनैः राठौड़ों के पक्ष को सबल बना लिया। इस परिस्थिति से बड़े कुंवर चुंडाजी ने राजमाता को परिचित किया; परन्तु रणमल ने इसके विपरीत चुंडाजी के ही मन में कपट होने की बात बहन को समझाई। भोली महाराणी ने भाई की बहकावट से चुंडाजी को देश निकाला दे दिया। जाते-जाते भी चुंडाजी अपनी सौतेली माता को जब भी आवश्कता पड़ने पर सूचना मिलते ही सहायता देने का वचन देते गये। उनके जाने से रणमल का अच्छा दाँव लगा। सीसोदियों के राज्यसिंहासन पर धीरे-धीरे राठौड़ों के अधिकार के लिये षड़यंत्र रचा जाने लगा। राजमाता भी समझ गई, परन्तु विवश थी। अन्त में उसने चुंडाजी को गुप्त सन्देश भेजा, जिसे पाकर चुंडाजी सेना लेकर चित्तौड़ आये और कुछ संघर्ष के अन्त में उन्होंने रणमल को परास्त किया और राणा मोकल को सुरक्षित किया। राव

की थी। रत्नसिंह विशेषकर कुड़की में ही रहा करते थे। लोगों की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। इनका विवाह झाला राजपूत सुरतानसिंह की कन्या वीरकुंवरी से हुआ था। रत्नसिंह की यह धर्मपत्नी बड़ी सुशीला, साध्वी तथा भक्ति परायणा थी। इनके जब गर्भ रहा तब दूदाजी ने अपने राजपुरोहित को कुड़की भेज दिये। उनकी इच्छानुसार पुरोहित राजमहल में नित्य श्रीमद्-भागवत की कथा सुनाते, थोड़ी देर भजन कीर्तन भी होता। राजवधू वीरकुंवरी प्रेम पूर्वक एकाग्रचित्त से कथा-भजन सुनती और इस सत्संग का पूर्ण लाभ लेती।

इस प्रकार समय बीतने पर (वि० सं० १५५६ के लगभग) एक दिन मंगल मुहूर्त में बालिका ने जन्म लिया। क्षण भर में ये शुभ समाचार सर्वत्र फैल गये। राजपुत्र के समान इस राजकुमारी का जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। चारों ओर वाद्यध्वनि होने लगी। नगर भर में मंगलाचार होने लगे। जन्म के समय बालिका के अपूर्व तेजोमय मुखमंडल को देख कर उसका नाम 'मिहिराँ बाई'—मीरांबाई (मिहिर = सूर्य) रक्खा गया। राज-ज्योतिषी द्वारा पुत्री की जन्म कुंडली में पड़े अपूर्व ग्रहों और लक्षणों को सुनकर माता-पिता के आनन्द का पार नहीं रहा।

पूर्व जन्म सम्बन्ध

मीरांबाई के लिये कहते हैं कि वह या तो राधा, ललिता, चंपकलता अथवा किसी गोपी का अवतार थी। वास्तव में मीरांबाई पूर्व जन्म में क्या थी यह तो वही या उसके प्यारे श्यामसुन्दर ही जानते हैं। परन्तु यह तो निश्चितरूप से कहा जा

इन्द्र ने कोप कर ब्रज को बहाने के हेतु प्रलय ढहाया तब श्रीकृष्ण चन्द्र ने गिरिराज को अपनी अंगुली पर उठाया और अत्यन्त व्याकुल होकर गोप, गोपी, गौवें आदि सबों ने दौड़-दौड़ कर श्रीगिरिराज की छाया में आश्रय लिया तब उस बरसाने वाली गोपी को भी प्राण बचाने के लिये बाध्य होकर वहाँ जाना ही पड़ा। "आपद् काले मर्यादा नास्ति" के अनुसार ऐसे भयंकर प्रसंग में मर्यादा का पालन स्वाभाविक ही नहीं हो पाता; इस-लिये अन्यान्य गोप वधुओं की भाँति उस बरसाने वाली गोपी की भी लज्जा न रह सकी और वह माता की शिक्षा भूल गई और भयभीत हरिणी की भाँति उसकी आँखें इधर उधर देखती हुई कृष्ण पर जा लगी और सहज ही उसके मन में विचार परम्परा होने लगी—कैसा सुन्दर मुख कमल, श्याम स्वरूप, पीतांबर धारी, घुंघराले बाल, मोर मुकुट, हाथ में वंशी, सुकुमार होते हुए भी वज्र समान गिरिराज को अपनी नन्ही-नन्ही सी अंगुली पर उठाये कन्हैया आज ब्रज की रक्षा कर रहा है। कैसा पुरुषार्थी है। अपने प्राण बचाने को ऋषि मुनि आबाल वृद्ध नर-नारी और पशु-पक्षी आदि भी आज जिसका मुँह ताक रहे हैं, क्या उसी का मुँह देखने के लिये माँ ने निषेध किया था। अहो! कैसी आत्मघातिनी शिक्षा! इतने दिन व्यर्थ ही गये मेरे जो इनके दर्शन नहीं किये। मन में यह भाव आते ही श्यामसुन्दर की ओर टकटकी लगी हुई आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगी। उसकी आँखें घटने वाली घटनाओं का चित्रपट देख रही थीं, चतुर्भुज रूप धारी कृष्ण के दिव्य दर्शन हो रहे थे। दो हाथों से वंशी बजा रहे हैं, एक हाथ नंद बाबा के कंधे पर है और एक हाथ पर पहाड़ उठा रक्खा है।

भागवत की कथा सुनी, ध्रुव, प्रहलाद जैसे परम भक्तों का चरित्र श्रवण किया, तथा ब्रज गोपियों के प्रेम-रसामृत का आस्वादन किया, न जाने विधाता ने उसका भविष्य किन रंगों में चित्रित किया होगा।

अब मीराँ का लालन-पालन दूदाजी की देख रेख से होने लगा। जैसे-जैसे बड़ी होने लगी उसके संस्कार भक्तिमय बनते जा रहे थे। माता तथा दादा जी का अनुकरण कर वह भी बगीचे से पुष्प चुन लाती, ठाकुर जी को तिलक करती, भोग लगाती, आरती उतारती तथा अपनी छोटी अंगुलियों से माला फेरती हुई तुतली बोली में जाने क्या क्या गुनगुनाया करती। कभी कोई भजनानन्दी साधू-संत वहाँ आ जाते तो दादाजी के पास बैठ कर वह बड़े प्रेम से व एकाग्रता से भजन सुनती।

चन्द्रमा की कला की भाँति जैसे मीराँ बढ़ने लगी वैसे-वैसे उसकी विलक्षणताएं संसार को विदित होने लगीं। उसके सुन्दर रूप की बातें सुनकर मेड़ते के बाहर से भी अनेकों नर-नारी उसके दर्शन को आया करते। तुतली बोली सुन कर माता पिता के आनन्द का पार नहीं रहता था। उसकी अनुकरण शक्ति, तीव्र बुद्धि और शनैः शनैः विकसित होते हुए विलक्षण गुणों को देख-देख कर राव दूदाजी अपने जीवन को सफल समझते हुए अपनी पौत्री के लिए आशीर्वादात्मक मंगल भावना किया करते। शनैः शनैः भक्त राव दूदाजी के भक्ति भरे संस्कारों का मीराँ पर अद्भुत प्रभाव पड़ता जा रहा था।

मीराँ जब ५ वर्ष की हुई तब राव दूदाजी अपने साथ रत्नसिंह व मीराँ आदि को लेकर गुजरात में श्री डाकोरजी की यात्रा को चले। वहाँ नगर के बाहर किसी संत के स्थान

मीराँ के भाई जयमल

युवराज वीरमदेव बड़े ही बलिष्ठ और साहसी वीर थे। वि० सं० १५५३ में इनका विवाह चित्तौड़ के राणा रायमल जी की पुत्री गोरज्या कुमारी से हुआ था। इस सम्बन्ध से मेवाड़ और मेड़ता के दोनों राज्यों में घनिष्ठ प्रीति और मित्रता हो गई। अपनी सीसोदिन ताई महिला समाज में जब अपने पितृ कुल चित्तौड़ के वीर नर-नारियों की गुण-गौरव-गाथा सुनाती तब मीराँ भी बड़ी ही भाव पूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर देखती हुई एक नई कल्पना सृष्टि में रम जाती।

कुछ काल बीतने पर वि० सं० १५६४ की आश्विन शुक्ला ११ के दिन वीरमदेवजी के भँवर जयमल का जन्म हुआ। पाँच वर्ष की मीराँ ने जब अपने चचेरे भाई छोटे जयमल को देखा तब न जाने उसे क्या क्या भाव उमड़ आए। वह उसे अपने नन्हे नन्हे कोमल हाथों में लेकर प्यार करने लगी फिर कोई भजन गुनगुनाने लगी और अपने ठाकुरजी के उसे दर्शन भी करा दिये।

कहते हैं कि मीराँ के माता पिता को मीराँ के पहले एक पुत्र भी हुआ था जिसका नाम गोपालसिंह रखा गया और जो २ वर्ष जीवित रह कर चल बसा था। यह भी किंवदंती सुनी जाती है कि मीराँ की एक छोटी बहन थी जिसका नाम अनोपा बाई था और वह भी अधिक जीवित नहीं रही थी।

मीराँ के भाई (चचेरे-ताऊ के) तो जयमल ही प्रसिद्ध हैं। अपनी वीरता तथा भक्ति के कारण वह जगत्प्रसिद्ध हो गये। दिल्ली के मुगल बादशाह अकबर ने जब चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब

होगा ? माता ने कहा—तू बड़ी हो जायगी तब तेरा विवाह करेंगे बेटी। परंतु मीराँ को लगा कि वर वहीं है और कन्या अर्थात् वह स्वयं भी, तब फिर विवाह में विलम्ब क्यों? इसी बात पर उसने हठ करली और तब खेल-खेल में माता ने भी अपनी बेटी का विवाह गिरधर गोपालजी की प्रतिमा से करा दिया। अब मीराँ के चित्त में पूर्ण रूप से जम गया कि गिरधर गोपाल ही उसके पति, प्रियतम और सर्वस्व हैं। उसकी यह भावना दृढ़ होती गई। श्रीराधा और गोपी की प्रेम-भरी लीला कथाओं को सुनते उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि वह भी कोई गोपी अथवा राधा है। वह इसी कल्पना और भावना की सृष्टि में विचरा करती।

शिक्षा-साधना

राव दूदाजी ने मीराँ की पढ़ाई के लिए राज-पुरोहित को नियुक्त किया था। मीराँ की ऐसी कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मरण शक्ति थी कि एक बार जो सुनती और बोलती वह उसे कंठस्थ हो जाता।

वह मिट्टी के खिलौने बनाती जिसमें अपने गिरधरगोपाल की प्रतिमा की प्रतिछवि बनाती। चित्रकला में भी उसकी बहुत अधिक रुचि थी। वह भगवान श्यामसुन्दर के और उनकी लीला के बड़े ही सुन्दर चित्र आलेखन करती और अपनी टूटी-फूटी भाषा में वह पद रचना भी बनाकर प्रभु को प्रेम से सुनाती। नित्य नया पद बनाकर प्रभु को अर्पण करने का उसका नियम था।

एक दिन कोई योग पारंगत संत विचरते हुए मेड़ते आये। दूदाजी ने श्रद्धा व सत्कार पूर्वक उन्हें श्री चतुर्भुजनाथ के मंदिर

एक वार गुरु-पूर्णिमा के उपलक्ष्य में भजन-सत्संग के लिये मीराँ द्वारा निमंत्रित सखियों को एकत्रित हुई देख कर माता वीरकुंवरी ने पूछा—आज इन्हें बुला कर भजन करने का क्या कारण है ? क्या भजन गा गाकर ही आयु पूरी करनी है ? मीराँ—क्या भगवान का भजन करने के लिए भी किसी कारण की आवश्यकता होती है माँ ? जो जन्म लेकर इस भव बंधन में आता है उसे उससे मुक्त होने के लिये यत्न करने का भी अधिकार है। फिर आज गुरुपूर्णिमा भी तो है। गुरु चरणों की शरण लिए विना ज्ञान कहाँ। गुरु पूजा का आज विशेष माहात्म्य है। माता—तू किस गुरु की पूजा करेगी वेटी ? मीराँ—मेरे गिरधर गोपाल ही तो सब चराचर विश्व के आदि गुरु हैं। इन्हीं की सेवा पूजा कर, इनके गुण गान कर आज का उत्सव मनायेंगी और वैसे तो हरीच्छा से आज जो कोई संत आवेंगे वह मेरे गुरु समान ही होंगे।

मीराँ ने श्यामकुंज सजाया; सुन्दर झाँकी वनाई और राज-पुरोहित को बुलवा कर गिरधर गोपाल का विधिवत् पूजन किया।

सायंकाल को सहसा विचरते हुए संत रैदास मेड़ते में आये। उच्चकोटि के उन महात्मा का नाम तो सबने सुन रखा था; परन्तु उनके दर्शन का अवसर पहले कभी मिला नहीं था।

राव दूदाजी ने वड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। रात्रि को भजन सत्संग का कार्यक्रम रखा गया; जिसका नगर के नर-नारियों ने भी लाभ लिया। दूदाजी के साथ मीराँ ने गुरु भाव से संत को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया।

बातों के लिये उसके मस्तिष्क में स्थान ही नहीं था। उन मदन-मोहन लीला पुरुषोत्तम की मधुर व्रजलीला-रसास्वादन में कभी तो सारी रात बीत जाती परन्तु उसके प्राणों को तृप्ति ही नहीं होती।

एक बार मीराँ अपने गिरधर गोपाल की सेवा कर रही थी कि वीरमदेव का पुत्र अष्ट वर्षीय बालक जयमल वहाँ आया; और ठाकुरजी के दर्शन करने लगा। जहाँ मीराँ को सेवा-पूजा के लिये राव दूदाजी ने महल के ऊपर एक पृथक् कक्ष बनवा दिया था। उसका नाम उसने 'श्याम-कुञ्ज' रक्खा था। वहीं वह गिरधर गोपल की सेवा करती, व सुन्दर सजावट के साथ नई-नई झाँकियाँ बनाती। ठाकुरजी के लिए शृङ्गार भी स्वयं बनाती। ठाकुरजी की ओर एक टक निहारते हुए सहज भाव से जयमल ने प्रश्न किया—बहन तुम्हारे ठाकुरजी को गिरधर गोपाल क्यों कहते हैं? मीराँ ने कहा—जब इन्द्र ने कोप करके व्रज पर घोर वर्षा का प्रलय मचाया तब सब प्राणियों की रक्षा के लिए श्री कृष्णचन्द्र ने गिरिराज गोवर्धन को उठा कर अपनी अंगुली पर धारण किया था इसी से इनका नाम गिरधर हुआ...... आगे वह कुछ कह न सकी, मौन हो गई। उसने नेत्र मूँद लिये और आँसू की धारा बहने लगी। न जाने किन भाव तरंगों में वह बह रही थी। जयमल ने घबरा कर मीराँ का हाथ पकड़ कर पूछा—तुम क्यों रोती हो बहन, तुम्हें क्या हो गया। परंतु वह तो 'हे श्यामसुन्दर, प्राणाधार' कह कर मूर्छित होगई। समाचार पाते ही दूदाजी राजपुरोहित आदि सब वहाँ आ गये और उसे सावधान करने की चेष्टा में लगे। जब उसकी मूर्च्छा हटी तब उसने आस पास में दृष्टि डाल कर कहा—मैं कौन हूँ,

व सत्सङ्ग से मुझे वञ्चित करने की कोई भी वात आप कभी न सोचें। अब तो इस त्रिभुवन मोहिनी माधुरी छवि में मेरे प्राण अटक गए हैं। मन वचन कर्म अब तो बिक गये हैं, इन्हीं अरुण कोमल चरणारविंदों में। मेरे गिरधर गोपाल की कृपा रूप वर्षा में मेरे रोम-रोम भींज रहे हैं। इस सुख से मुझे छुड़ाने का प्रसङ्ग न लावें। मैं यही भिक्षा आप से चाहती हूँ।

दूदाजी के नेत्रों में जल भर आया। उन्होंने उसी समय आये हुये अपने पुत्रों को सुना दिया कि सुकुमारी मीराँ का मुख-मण्डल मलिन होने जैसी कोई वात वे नहीं करेंगे। उनकी देह के न रहने पर जो श्री चारभुजानाथ की इच्छा होगी, वही होगा।

इस प्रसङ्ग से वीरकुंवरी की चिंता और वढ़ गई। बेटी को अपने गिरधर गोपाल के सिवाय और कुछ [illegible]ाता नहीं। दादाजी अपनी पोती को नाराज करना नहीं चाहते और मीराँ के पिता भी अपने पिता की हाँ में हाँ मिलाना ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझते हैं। तो क्या बेटी आजीवन अविवाहित रहेगी? भला स्त्री जाति के लिए यह क्या निन्दनीय वात नहीं। केवल मीराँ को संतुष्ट रखने से ही कैसे काम चलेगा। लोगों का मुँह थोड़े ही बन्द किया जा सकता है। ऐसी वातों में क्या बेटी की राय पूछनी पड़ती है। उसके दिन-प्रतिदिन वढ़ते हुए भजन-कीर्तन-संत-समागम व सत्सङ्ग के संस्कार क्या उसके भावी जीवन में बाधक नहीं होंगे। बार-बार इन विचारों के कारण वह अशांत रहा करती।

गिरधर गोपाल ने यहाँ आकर वंशी बजाई, न जाने किन पुण्यों के फलस्वरूप उन्होंने यह कृपा की इस दासी पर। हे मेरे श्यामसुन्दर, ऐसी माधुरी चखा कर फिर मुझे अकेली छोड़ कर कहाँ चले गये नाथ! यह कहते कहते मीराँ के नेत्रों से आँसू की झड़ी लग गई। माता आगे बढ़ उसके आँसू पौंछने लगी। सिर पर हाथ जाते ही वह चौंक पड़ी; बोली--यह क्या बेटी यह चोट कैसे आई। मीराँ निरुत्तर रही। माता समझ गई कि भावावस्था में गिर पड़ने से ही यह लगी है। वह झुँझला कर उसे समझाने लगी। विवाह की बात चलते ही मीराँ ने कहा, ऐसा न कहो माँ, मेरा विवाह तो गिरधर गोपाल के साथ कभी का हो चुका है। वे ही अब मेरे तन, मन और प्राणों में रम रहे हैं, मेरे हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। अब दूसरी बात सुनकर ही कलेजा काँप उठता है :—

ऐसे वर को के वरूँ, जो जनमें मर जाय।
वर वरिए गोपालजी, म्हारो चुड़लो अमर ह्वे जाय॥

माँ! प्रेम, रूप, गुण, वैभव और सकल ऐश्वर्यों के भंडार मेरे इन गिरधर गोपाल से बढ़ कर ऐसा और कौन है जिससे प्रेम का संबंध जोड़ा जा सकता है। इस नाशवान मर्त्य-लोक के पाप-ताप-दग्ध तथा सदा भय व्याधि ग्रस्त जीवों से भी कहीं प्रेम का नाता जोड़ा जा सकता है?

बेटी की बातों को सुनकर माता अपने हृदयावेग को नहीं संभाल सकी। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी—'हाय रे निष्ठुर विधाता! जहाँ ऐसी सुकुमारता, ऐसे अलौकिक गुण व ऐसा देव दुर्लभ रूप लावण्य वहाँ ऐसा निर्मोही हृदय! माता

करता हूँ कि तेरे द्वारा हमारा मेड़तिया वंश अवश्य उज्ज्वल हो जायगा। आज नहीं तो जब कभी संसार तुझे पहिचाने बिना न रहेगा······। बीच में ही मीराँ बोल उठी—मेरी प्रशंसा न कीजिये दादाजी, मैं जो कुछ हूँ, सब आप ही की तपश्चर्या का फल है। अब आप अधिक न बोलिये, दादाजी! शरीर में कष्ट होता है। दुर्बलता के कारण मन्दस्वर से वे कहने लगे—यही बोलने का समय है बेटी, बोल लेने दो। बेटा वीरम! मेरी शक्ति लाओ। दूदाजी की शैय्या के पास रखी हुई तलवार वीरमदेव ने दादाजी के हाथ में दी तब उन्होंने उसे कोप मुक्त कर उसे सिर झुकाया। बेटा—किसी की स्वाधीनता छीनने वाले अत्याचारी असुरों का बलिदान देकर शक्ति-माता की उपासना करते हुये प्रजा की रक्षा करना। यह शक्ति तुम्हें सौंप जाता हूँ। वीरमदेव ने नत-मस्तक हो तलवार ले ली और उसे कोप बद्ध कर पिताजी के चरण-स्पर्श किये। कुछ काल पश्चात् हाथ में माला लेकर मीराँ को देते हुए कहा—यह तुझे दे जाता हूँ मीराँ, यह किसी संत का प्रसाद है; इसके योग्य तू ही है। मीराँ ने उसे लेकर दादाजी के चरणों में प्रणाम किया।

इसके बाद दूदाजी ने मीराँ को नूतन वस्त्रालङ्कार तथा जयमल को वीर वेश में देखने को इच्छा प्रकट की। तदनुसार व्यवस्था की गई। अपने होनहार पौत्र जयमल को तलवार, ढाल व भालादि शस्त्र-सज्जित योद्धा वेश में देखकर दूदाजी की आँखें चमक उठीं। मीराँ के सुन्दर वस्त्र भूषण युक्त परम सौन्दर्य से ऐसी प्रभा छिटक रही थी मानों साक्षात् महालक्ष्मी प्रकट हो आई हो। दूदाजी के नेत्रों में जल भर आया। दोनों के सिर पर

राव वीरमदेव के प्रयत्नों के फलस्वरूप राजकुमारी मीराँ की सगाई निश्चित करने के लिए चित्तौड़ के महामंत्री और राज्य पुरोहित अपनी धर्मपत्नी सहित मेड़ते आये परन्तु मीराँ को इसमें कोई रुचि नहीं। फाग के दिन होने से उसने तो उस दिन फाग खेलने का आयोजन किया था। उसकी कई सखियाँ व दासियाँ उसके साथ इस आनन्द में भाग लेने नगर बाहर के बगीचे में एकत्रित हो गईं। उस सुन्दर उद्यान में कदम्ब के एक विशाल वृक्ष के नीचे चबूतरे पर एक शुभ्र संगमरमर के सुन्दर सिंहासन पर गिरधर गोपाल को सजाकर विराजमान कराया गया। नगर की स्त्रियाँ भी इस उत्सव को देखने गई थीं।

ठाकुरजी का पूजन हुआ। मीराँ ने अपने प्यारे गिरधर पर गुलाल उछाली। स्वर्ण पिचकारी द्वारा उन पर रंग डाला। उसके पश्चात् सब सखियाँ परस्पर में रङ्ग-रङ्ग की गुलालें उछालने लगीं। रङ्ग-बिरंगे बादलों की भाँति आकाश गुलालों से भर गया। सब गोपियों में राधा रानी के समान मीराँ अपनी सखियों में अनुपम शोभा पा रही थी। कुछ काल पश्चात् मीराँ ने होरी गवाना आरम्भ किया। वह ज्यों गवाती त्यों सब सखियाँ भी गिरधर गोपाल के चारों ओर घूमर लेती हुई गाती जाती थीं और उत्साह में डोलती हुई अपनी मस्ती में नृत्य करती थीं। पश्चात् वे पिचकारियाँ चलाकर रङ्ग खेलने लगीं और साथ में गाने लगीं। चारों ओर रङ्ग की धूम मच गई। मेड़ते की महिलाओं ने जीवन में प्रथम बार ही इस परमानंद को लूटा। विविध रङ्गों से वस्त्र और प्रेम रङ्ग से हृदय सब सखियों

आई। मीराँ ने ब्राह्मणी को प्रणाम किया। चित्तौड़ की पुरोहितानी उसे एकटक देखती ही रह गई। मीराँ के अथाह रूप-लावण्य-सिन्धु में उसकी चित्त वृत्ति गोते लगाने लगी। अवश्य ही उसके हृदय में यही विचार परम्परा चली होगी—क्या मृत्युलोक में भी ऐसा रूप-सौन्दर्य संभवत हो सकता है? क्या यह कोई देवकन्या है? चित्तौड़ के युवराज तो क्या सारे भूमण्डल पर भी इसके योग्य वर मिलना असम्भव है। कैसी अलौकिक कान्ति, कैसा अद्भुत आकर्षण, कैसी सुधा भरी दृष्टि। ऐसी परम सुलक्षणा कन्या का हमारे चित्तौड़ में संबंध होना निःसंशय हमारे पूर्व पुण्यों का ही फल है।

जब ठाकुर-प्रसाद वितरण करती हुई एक सखी पुरोहितानी को प्रसाद देने गई तभी उसे परिस्थिति का भान हुआ।

वीरकुंवरी जब पुरोहितानी के साथ वापस लौटी तब मीराँ के साथ आई हुई सब सखियाँ व महिलाएँ बिखर गईं।

नगर में मीराँ की सगाई के उपलक्ष्य में नगारे, शहनाई आदि बाजे बज रहे थे और घर-घर में श्रीफल तथा मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं। परन्तु मीराँ के हृदय की वास्तविक स्थिति को भला जान ही कौन सकता था।

मीराँ का श्वसुर कुल-सीसोदिया वंश

प्राचीन काल से भारत में राज्य करने वाले मुख्यतः तीन क्षत्रिय वंश हैं। सूर्य वंश, चन्द्र वंश और यदुवंश। इन तीनों में भी सूर्यवंश अधिक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित माना जाता है। मांधाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, भागीरथ, अम्बरीप, रघु और

मेवाड़ के महाराणा को पूज्य भाव की दृष्टि से देखते हुए उन्हें हिन्दुआ-सूरज कहते हैं।

राजा गुहिल के पश्चात इस वंश में नागादित्य व शीलादित्य आदि प्रतापी राजा हुए। शीलादित्य की चौथी पीढ़ी में बापा रावल हुए जिन्होंने आठवीं शताब्दी में अपने बाहुबल के प्रताप से चित्तौड़ में अपना राज्य स्थापित किया। वह विजयी और प्रतापी राजा हुए। धीरे धीरे वह एक स्वतन्त्र व विशाल राज्य के स्वामी बन गये।

बापा रावल की २६ वीं पीढ़ी में रावल रणसिंह (कर्णसिंह) चित्तौड़ की गद्दी पर आये। इनसे दो शाखायें फूटीं। एक रावल और दूसरी राणा। रावल चित्तौड़ के स्वामी थे और राणा शाखा वाले सीसोदा ग्राम के जागीरदार थे जो पीछे चल कर सीसोदिया कहलाये। रावल शाखा की समाप्ति अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ छीनने पर हुई और तब से राणा शाखा वाले इस गद्दी के स्वामी हुए।

रावल रणसिंह (कर्णसिंह) की नवीं पीढ़ी में रावल रत्नसिंह चित्तौड़ के अधिपति हुए। यह रावल शाखा के अन्तिम शासक थे। इनकी राणी सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मिनी परम सुन्दरी थी। उस समय के दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी के अलौकिक सौन्दर्य की कीर्ति सुन कर उसकी प्राप्ति के लिये आकाश पाताल एक कर छोड़ा, परन्तु राजपूतों के आगे उसकी एक न चली। अन्त में उसने कपट पूर्वक रत्नसिंह को कैद किया तब पद्मिनी ने 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति के अनुसार बड़ी चातुरी से अपने पति को बन्धन से

महाराणा कुम्भाजी के ज्येष्ठ पुत्र उदा ने राज्य के लोभ से अपने पिता की हत्या कर दी जिससे वह इतिहास में 'उदा हत्यारा' के नाम से कुख्यात है। इससे असंतुष्ट होकर सरदारों व प्रजाजनों ने विद्रोह किया जिसमें उदा हार कर भाग गया। तब उसके छोटे भाई रायमल को राज गद्दी मिली।

रायमल के बाद राणा संग्रामसिंह मेवाड़ के स्वामी हुए। इनके समय के हिन्दू राजाओं में ये सबसे अधिक सामर्थ्यवान् एवं प्रतापी नरेश थे। इनके समय में मेवाड़ की सीमा आगरे तक जा मिली थी।

राणा संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे भोजराज। ये अपने पिता के समान ही बड़े साहसी व वीर थे। सुगठित देह और गौर वर्ण के ये स्वरूपवान राजकुमार बड़े ही विचारवान और धीर स्वभाव के थे। राजकीय विषयों में भी इनके विचारों की पूछ होती थी। ये स्पष्ट वक्ता और बड़े ही स्वदेशाभिमानी थे। इन्हीं के साथ मेड़ते के राव वीरमदेव जी ने मीराँबाई की सगाई निश्चित की थी।

विवाह

विवाह के कुछ दिन पहले मीराँ ने बड़ी ही कठिनाई से अंगों में उबटन व पीठी लगवाना स्वीकार किया। वि० सं० १५७३ की अक्षय तृतीया का दिन उदय हुआ। इसी दिन मीराँ का विवाह होना निश्चित हुआ था। सायंकाल तक चित्तौड़ से बरात आने वाली थी। प्रातःकाल जब माता मीराँ के पास गई तब वह प्रसन्न हृदय से पद गा रही थी। सहज माता ने पूछा—

बनवाये गये मूल्यवान और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण उसे पहनाये। पैरों में महावर लगाया। आँखों में काजल आँजा। भाल पर कुंकुम बिन्दिका लगाई। बालों में मोती पोये। देवकन्या समान सुन्दर व सजी हुई मीराँ की बड़ी ही मन मोहक शोभा देखकर स्वयं माता भी मोहित सी होगई। वह मन-ही-मन कहने लगी–कैसी अनुपम रूप-राशि! जिसे देखकर देवता भी मोहित हो जाँय ऐसी यह मेरी लाड़ली अब तक भी कैसी भोली ही रह गई। अपनी असीम आकर्षण-शक्ति को यह नहीं पहचानती। और कोई होती तो अपने इस अद्वितीय लावण्य के प्रभाव द्वारा न जाने क्या-क्या कर डालती।

मीराँ ने आज गिरधर गोपाल को भी सजाया। श्यामकुञ्ज भी तोरण पुष्पों से सजाया गया।

दिन भर के प्रवास परिश्रम से थके हुए सूर्य भगवान रात्रि भर विश्रान्ति के लिए पश्चिम दिशा में क्षितिज के नीचे उतरने की तैयारी कर रहे थे और उनके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये मानों नूतन सूर्य उदय हुआ हो त्यों चित्तौड़ के सूर्यवंशी महाराज कुमार की बरात बड़े ही ठाट बाट के साथ मेड़ते की सीमा पर आती हुई दृष्टिगोचर हुई। नगारे बजने लगे। नगर में बड़ी ही चहल-पहल मच गई। नर-नारियों के उत्साह का पार नहीं रहा। इस अपूर्व समारंभ को देखने के लिये गाँव-गाँव से आये हुए लोगों का एक बहुत बड़ा समुदाय एकत्र हो गया। जहाँ-तहाँ मनुष्य-ही-मनुष्य दिखाई देते थे।

देखते ही देखते बरात ने नगर में प्रवेश किया। वीरमदेव ने बरातियों का यथोचित स्वागत किया और उनके ठहरने, भोजन एवं मनोरंजन का समुचित प्रबन्ध किया।

यह देख कर स्तब्ध-से हो रह गये। इसी समय पुरोहितानी ने मीराँ के खाली हाथों में दूसरी माला देकर उसे वर राजा के गले में डालने को कहा। तब उसने वर राजा के गले में माला पहनाई। तत्पश्चात् वर-वधू का हस्त-मिलन हुआ।

वर-वधू के वस्त्रों के छोर में गाँठ लगने के बाद भाँवर लेते समय जब राजकुमार आगे बढ़े तो उनका वस्त्र तनिक खिंच-सा गया। उन्होंने उस ओर झाँक कर देखा तो एक सखी सिंहासन से ठाकुरजी लेकर मीराँ को दे रही है। इस प्रकार यह सप्तपदी का संस्कार पूरा हुआ।

मध्य रात्रि के समय प्रथा के अनुसार वर-वधू के परस्पर मिलन के लिये मीराँ को किसी निर्धारित कक्ष में ले जाने के लिये दासी को आज्ञा हुई। तब पूछने पर मीराँ ने उससे कहा—कैसी पगली है! मेरे श्यामसुन्दर कृपा करके इस दासी को दर्शन देने न जाने किस क्षण में पधार जाँय! उनके लिये ही तो यह शयनगृह सजा रखा है। अब और कहीं मैं जा ही कैसे सकती हूँ।

मीराँ श्याम कुञ्ज में तम्बूरा बजाती हुई सुन्दर रागिनी में गाकर अपने प्यारे श्यामसुन्दर को रिझा रही थी। धीरे-धीरे उसकी और सखियाँ व दासियाँ भी उसके निकट आ गई और गाती हुई वीणा, मृदंग, तानपूरा, करताल आदि विविध वाद्य बजाने लगीं और वातावरण अपूर्व आनन्द मय बन गया।

मीराँ को ले जाने के लिए राजमहिलायें श्यामकुञ्ज के द्वार तक आकर ठहर जातीं। वहाँ का रङ्ग-ढङ्ग देख कर कोई वापस चली जाती तो कोई वहीं देखने के लिये ठहर जातीं। मीराँ की

भोर में जब सखियाँ, दासियाँ व महिलाओं ने जागृत होकर देखा तो पलङ्ग पर श्वेत शय्या पर मीराँ अचेत सोई हुई थी। उसका शृङ्गार अव्यवस्थित था, उसकी वेणी खुल कर पुष्प तथा उसके घने काले लम्बे केश बिखर गये थे।

अरुणोदय के समय सावधान होकर मीराँ ने आँखें खोलीं; परन्तु स्मृति द्वारा भुक्तानुभव के आनन्द-सुधा रस का आस्वादन करते हुए पुनः बन्द कर दीं।

जब वीरकुँवरी ने मीराँ को जगाया तब 'माँ' कह कर वह माता से लिपट गई और माता भी अपनी बेटी का सिर सहलाती हुई उससे प्यार करने लगी।

चित्तौड़ प्रस्थान

मीराँ का विवाह समारम्भ बड़ी ही धूमधाम से निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हो जाने के बाद मीराँ के साथ बरात के वापस चित्तौड़ लौटने का समय उपस्थित हो गया। मीराँ अब अपने माता-पिता, साथियों और अपनी मातृ-भूमि मेड़ता को छोड़ कर सुसराल जायगी इसलिये सबके हृदय में उदासी छाई है, आँखों में बार-बार जल भर आता है। मीराँ ने सब सखियों को समझाया; बेटी के शरीर पर अपना हाथ फेरती हुई माता का वात्सल्य हृदय उमड़ पड़ा, आँसू पोंछती हुई वह कहने लगी—जिस अमूल्य रत्न की वर्षों तक प्राणों से भी अधिक समझ कर मैं रक्षा करती आई थी वही आज मुझ से छीना जा रहा है। क्या करूँ, कन्या तो पराया धन है। बेटी, तेरे रूप लावण्य से ये महल जगमगाते रहे, परन्तु अब तेरे बिना इन सूने महलों

अपने ठाकुरजी को अपने साथ भले ही ले जा बेटी, परन्तु उनके पीछे पगली होकर ससुराल में अपने कर्त्तव्य को मत भूल जाना। वहाँ सब के प्रिय होकर रहना। अपनी सेवा से पति को अपने आदर भरे व्यवहार से सास, नणँद को प्रसन्न रखना और दास दासियों पर सदा दया की दृष्टि रखना।

मीराँ के पिता रत्नसिंह बेटी से मिले, उसे हृदय से लगा कर प्यार किया व बोले—ससुराल में ठीक ढङ्ग से रहना बेटी, माता पिता को यश अपयश मिलना सुसराल में कन्या के वर्ताव पर ही अवलंबित है। अधिक क्या कहूँ, तू समझदार है मीराँ! यह जोशी पुरोहित तेरे साथ चित्तौड़ जा रहे हैं। पुरोहितजी, ध्यान रखना, फूल जैसी कोमल मेरी बेटी को किसी प्रकार का कष्ट न हो, यह कह कर रत्नसिंह आँखें पौंछने लगे।

बालक जयमल सहित वीरमदेव भी आये, मीराँ को प्यार करते हुए बोले—बेटी, सुसराल में ऐसे रहना जिससे पितृकुल और पतिकुल दोनों का ही यश बढ़े। कहते-कहते उनका गला भर आया और नेत्रों से जल की दो बूंदें टपक पड़ीं।

मीराँ ने जयमल को प्यार किया। उसके सिर पर हाथ रख कर मन ही मन उसे आशीर्वाद दिया। पश्चात् राजमन्दिर के पुजारी ने श्री चरणामृत और प्रसादी भेंट की।

मीराँ ने अपने प्यारे गिरधर गोपाल को उठाकर अपने हाथ में लिये, उन्हें छाती से लगाया तब कुछ क्षण वह भावावेश में आ गई। दासी अपनी स्वामिनी को सम्भालती रही। यह देख वीरकुंवरी ने कहा—मिथुला, मेरी बेटी की ऐसी अवस्था होने पर सम्भाल रखती रहना। तुझे इसी लिए मैं इसके साथ भेज

ससुराल को परिस्थिति

पति–गृह जाने के बाद चित्तौड़ राजकुल रीति के अनुसार राजकुमार और राजवधू को जोड़े के साथ कुलदेवी पूजने को जाना आवश्यक था। मीराँ को कहा गया तब उसने अस्वीकार करते हुए यह कहा कि मेरे देवी-देवता सब कुछ मेरे गिरधरलाल हैं। इन्हें छोड़ कर और किसी को मैं पूजना नहीं चाहती। सासू-नणँद आदि बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने अपने सुहाग के लिये कुलदेवी पूजने को चलने के लिये मीराँ को बहुत समझाया, परन्तु उसने कह दिया कि मेरा सुहाग तो सदा अचल है। जिसे अपने सुहाग में शंका होवे भले ही कुलदेवी पूजें।

इस घटना से चित्तौड़ के राजघराने की महिलाओं में असंतोष फैल गया। उन्हें कल्पना भी नहीं थी कि ऐसी सुन्दर, पढ़ी लिखी, भक्ति भाव में रहने वाली और नई आई हुई राजवधू इस प्रकार स्पष्ट रूप से यहाँ की परम्परा से चलती आई धार्मिक रूढ़ि का अनादर व गुरूजनों का अपमान करेगी। मीराँ के प्रति अब उन्हें अरुचि होने लगी।

युवराज भोजकुमार भी उसके व्यवहारों से खिन्न रहा करते थे, किन्तु धीरे-धीरे मीराँ की वास्तविक मनःस्थिति को जान लेने के बाद उनके असंतोपादि भाव सब हट गये। यही नहीं उन्हें मीरांबाई के प्रति स्नेह होने लगा। एक बार वार्तालाप के प्रसंग में सांसारिक विपयों की आवश्यकता हो तो दूसरा विवाह करने और नहीं तो उसके परमार्थ पथ में सहयोगी बनने के मीराँबाई के प्रस्ताव को सुनकर उन्हें अपना कर्त्तव्य स्पष्ट हो गया। उन्होंने

भौजाई का परस्पर में कलह का नाता चला आता है, उसी श्रेणी में वह उतर आई और अकारण ही वह मीरांबाई का अनादर और अपमान करने पर तुली रहती। यह सब कुछ होते हुए भी मीरांबाई अपनी ओर से उससे सदा प्रेम का ही व्यवहार करती।

परिस्थिति परिवर्त्तन

संसार में कभी एक सी परिस्थिति नहीं रहा करती। स्थिरता का प्रकृति का सिद्धान्त ही नहीं। विवाह के पश्चात् ७–८ वर्ष तक ही युवराज भोजराज मीरांबाई के साथ रहे। पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया और मीरांबाई का एक बड़ा आधार चला गया। मीरांबाई संसार की दृष्टि से विधवा हुई, परन्तु वह तो अखण्ड सुहागिन थी। उसका भजन, साधन, सत्संग वैसा ही पूर्ववत् चलता रहा।

इसके पश्चात् कुछ ही वर्षों में जहीरूद्दीन बाबर ने दिल्ली पर चढ़ाई की। इब्राहीम लोदी हार गया—मारा गया और दिल्ली के सिंहासन पर बाबर का अधिकार हुआ। इसके कुछ काल पश्चात् राजपूतों के साथ भी उसका घोर युद्ध हुआ। राजपूत सेना का—जिसमें कई राजा, महाराजा एकत्रित हुए थे—नेतृत्व राणा संग्रामसिंह ने किया था। देश के—भारत के—दुर्भाग्य से बाबर की विजय हुई। राणा संग्रामसिंह के मस्तक में विषैले बाण के लगने से उन्हें रणक्षेत्र से हटाया गया जिससे राजपूती सेना हताश होगई। इसके अतिरिक्त राजपूतों में परस्पर फूट, ईर्षा और अव्यवस्था का भी बड़ा कारण था कि जिससे वे परास्त हुए। अनुकूल अवसर पाकर राणा संग्रामसिंह ने जो जयपुर के बसवा ग्राम में

विक्रमादित्य बड़ा ही दुष्ट प्रकृति का था। उसकी कुटिल नीति से राज्य में भी अव्यवस्था फैल गई और प्रजाजन तथा ठिकाने के सरदार व जागीरदार आदि लोग भी सब असंतुष्ट हो गये। ऊदाबाई को अब मन-चाहा संयोग मिल गया क्योंकि विक्रमादित्य ऊदाबाई को बहुत मानता था और राज्य-व्यवस्था में भी उसकी राय लिया करता था।

नणँद उदाबाई के भाभीके प्रति रहे हुए ईर्ष्या-डाह, क्रोध आदि हृदय के सूक्ष्म भाव अब शनैः-शनैः साकार रूप धारण करने लगे।

अब तक तो मीराँबाई का भक्ति-भाव निर्विघ्न चलता आया। परन्तु विक्रमादित्य के हाथ में शासन-सूत्र आने के बाद अब विघ्न-बाधाएँ मीरांबाई की उपासना में उपस्थित होने लगीं। कुछ तो अपनी अविचार दुर्बुद्धि के कारण और कुछ अपनी कुचक्री मित्र-मण्डली की बहकावट के कारण विक्रमादित्य को मीरांबाई का साधु-संतों के दर्शन-सत्संग करना भजन,गाना, तम्बूरा बजाना व ठाकुरजी के आगे नृत्य करना आदि अखरने लगा। साधु संतों से तो वह बहुत ही चिढ़ता था। गद्दी पर आते ही प्रथम ऊदाबाई की राय से उसने मीरांबाई के भजन-सत्संग-साधु-दर्शन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिये। साम, दामादि नीति से काम लेने का उसने निश्चय कर लिया। प्रथम दासियों को, पश्चात् ऊदाबाई को, मीराँबाई को समझाने के लिये भेजा कि कुल को कलंक लगाने वाले गाने-नाचने साधु-संगति आदि कार्यों को वह सर्वथा छोड़ दें। परन्तु मीरांबाई भला अपनी नित्य की भक्ति-साधना को कैसे छोड़ती। उसने अपने नित्य के कार्यक्रम में

बाई के लिये भीड़ पड़ने पर साकार हो स्वयं सेवा करने वाले भगवान ने मीरांबाई को किसी बात की कमी नहीं पड़ने दी। सातवें दिन द्वार खुलवाने पर राणा ने देखा, मीरांबाई पहले से भी अधिक तेजस्विनी दिखाई दी।

तब राणा ने मीरांबाई के स्थान पर चौकी व पहरे लगवा दिये और जिस प्रकार लंका में अशोक वाटिका में रखी हुई सीता को दुःखित व आतंकित कर देने के लिये रावण ने दुष्टा राक्षसियों को नियुक्त किया था त्यों उसने चंपा व चमेली नामक दो दासियों की अधीनता में और कुछ ऐसी कठोर हृदय की भयंकर रूप वाली दासियों को भी वहाँ नियुक्त कर दी। उन्हें यह भी आज्ञा दे दी गई कि मीरांबाई को अनेक उपाय द्वारा कष्ट दिया करें। परन्तु उन में त्रिजटा के समान इन दासियों में भी चंपा व चमेली नाम की दो दासियाँ थी जो पहले से ही कुछ भले स्वभाव की थीं और मीरांबाई के दर्शन-सहवास में आकर पूर्णरूप से साधू-स्वभाव वाली बन गई थीं; जिनके नियंत्रण में रहने वाली दुष्ट दासियाँ कुछ नहीं कर सकती थीं।

जब साधारण उपायों से काम नहीं चलता देखा तब दुष्ट राणा ने अपनी भाभी मीरांबाई को प्राणदण्ड देने का निश्चय किया। ऊदाबाई भी भाभी को किसी भी प्रकार झुकाना चाहती थीं, परन्तु जब वैसा नहीं कर सकी तब अन्त में सत्ता के कुटिल प्रयोग द्वारा उसे अब मारने के निश्चय पर तुल गई थी। राणा ने ऊदाबाई की व अपने बीजावर्गी वैश्य मंत्री की राय से दयाराम पंडा के साथ श्री द्वारकाधीश के चरणामृत के नाम से विष का प्याला मीरांबाई के पास भेजा। ऊदाबाई भी पीछे-पीछे हो ली।

पड़ गई। सारांश कि–'विषमप्य मृतायते क्वचित्' (रघु० सर्ग० ८ श्लो०४६)–के अनुसार प्रभु की इच्छा से मीरांबाई के लिये विष भी अमृत समान हो गया और उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

जब विष ले जाने वाले व्यक्ति ने मीरांबाई के विष-पान के पश्चात् खाली कटोरा ले जाकर राणा को घटी हुई घटना से परिचित किया तब क्रोधावेश में आकर उसने राजवैद्य को बुलवाया जिसने मीरांबाई के लिये विष प्रस्तुत किया था। राणा के पूछने पर उसने कहा कि विष साधारण नहीं था, घोर हलाहल था। उसे पी कर कोई भी प्राणी बच नहीं सकता, परन्तु जब उसने सुना कि विष पी लेने पर मीरांबाई का बाल भी बाँका नहीं हुआ तब उसे आश्चर्य हुआ। क्रोधित राणा ने उसे कटोरे की शेष एक दो बूँदें पीकर विष की तीव्रता का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करने को बाध्य किया। मृत्यु के भय से वह टालमटोल करने लगा तब राणा ने बलपूर्वक उसकी जिह्वा पर विष की बूँदें डलवाई और अल्पकाल में ही वैद्यराज के प्राण परलोक की ओर प्रयाण करने को उद्यत हो गये।

उड़ते-उड़ते ये समाचार नगर भर में फैल गये। प्रजा में हाहाकार मच गया। राजवैद्य के मृतवत् शरीर को उसकी स्त्री, माता आदि कुल की स्त्रियाँ कुछ भले मनुष्यों की राय से मीरांबाई के महल पर ले गये। सारी परिस्थिति को जान लेने पश्चात् मीरांबाई ने तंबूरा लेकर राग मल्हार छेड़ा कुछ विशेष प्रकार से स्वरों के आरोह-अवरोह लेते हुए, मधुर अलाप के साथ वह मल्हार में भगवद् गुणगान करने लगी। उस अपूर्व संगीत

चढ़, उसके गले में लिपट कर, फण उठा कर सिर पर डोलने लगा ; फिर हार के जैसा कंठ के आस-पास लपेटा लेकर देखते देखते ही रत्न हार बन गया।

अपने षडयंत्र में असफल होने से झुँझलाए हुए राणा ने वन में से एक व्याघ्र पकड़वा मंगाया और तीन दिन तक उसे भूखा रख कर तब कोट के अहाते के भीतर, एक ओर तो व्याघ्र का पिंजरा मँगवाया और दूसरी ओर मीरांबाई को बुलवाया। मीरांबाई उस घेरे में चली गई तब उस व्याघ्र को पिंजरे के बाहर खुला निकलवाया। क्षुधातुर व्याघ्र दहाड़ता हुआ 'छलांग मार कर मीराँ के निकट आया। मीरांबाई को इसकी कल्पना तक नहीं थी फिर भी धैर्य पूर्वक भगवद्-स्मरण करते हुए उसने कहा---अहो मेरे श्यामसुन्दर, आज क्या इस नरसिंह रूप में दासी को दर्शन देने पधारे हो नाथ ! इस प्रकार पूरे वेग से धंसकर जबड़ा फाड़ कर आता हुआ व्याघ्र मीरांबाई के निकट आकर शान्त हो गया। सिर नीचे झुका कर, पूछ पैरों में दबाता हुआ वह मीरांबाई के चरणों के निकट आकर पालतू श्वान के जैसे शान्ति से बैठ गया। तब मीरांबाई ने दासी को पुकार कर कहा—मेरे ठाकुरजी आज नरसिंह रूप में पधारे हैं, शीघ्र पूजा की सामग्री ले आओ। राणा और उसके कपटी साथी जो कोट के ऊपर से देख रहे थे, आश्चर्य विमूढ़ हो गये। मीरांबाई ने वनराज को कुंकुम तिलक किया और लाल कनेर के पुष्प चढ़ाये। तब तो राणा को पूरा विश्वास हुआ कि मीराँ अवश्य ही मंत्र-तंत्रादि में निपुण है। 'हारयो जुगारी बमणूं रमे' इस गुजराती कहावत के अनुसार राणा और दूसरे उपाय

यह सुन कर राणा की स्थिति कंस जैसी हो गई। कंस को जहाँ तहाँ अपना काल कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देता था। विक्रमादित्य को भी मीरांबाई अपनी महान सत्ता की अवरोधक और दुर्भेद्य किले जैसी अगम्य, अविचलित और अपने सामर्थ्य व मान का मर्दन करने वाली प्रतीत होने लगी। उसे कुल की मर्यादा मिट्टी में मिली सी दिखाई देने लगी। ज्यों प्रह्लाद को मारने के लिए प्रयोग पर प्रयोग किये गये पर वह प्रभु की कृपा से अभेद्य और निर्भय ही रहा—इसके विपरीत हिरण्यकशिपु की मनःस्थिति ही अधिकाधिक वैरभाव भरी, भयभीत, चञ्चल और क्रोधावेशयुक्त होती गई–त्यों आज विक्रमादित्य भी वैराग्नि की ज्वाला में जल रहा था। उसे नींद भी नहीं आती। उसका क्रोध पराकाष्ठा को पहुँच गया।

अन्त में राणा ने स्वयं मीरांबाई को मारने का निश्चय किया। वह योग्य अवसर की ताक में रहा। एक रात्रि को उसके गुप्तचर ने आकर उसे कहा कि मीरांबाई अपने कक्ष में किसी पुरुष से बातें कर रही है। यह सुन कर क्रोधान्ध हो राणा उसकी दृष्टि में कुल कलंकिनी मीरांबाई को मारने के लिये हाथ में खड्ग लेकर वहाँ गया। द्वार बन्द था। खोलने को कहा पर जब कोई उत्तर न मिला तब राणा ने लत्ता प्रहार द्वारा किवाड़ को तोड़ डाला और भीतर देखता है तो मीरांबाई के सिवाय और कोई नहीं। गर्ज कर राणा ने पूछा 'बोल तेरा वह जार कहाँ गया, उसे तूने कहाँ छिपा रखा है कुलटा!' परन्तु मीरांबाई तो अपनी ही धुन में थी। वह चौकन्नी होकर इधर-उधर देखती हुई बोली—वे कहाँ चले गये? अभी तो यहीं

मारूँ, इस विचार में पड़ता है, उतने तो दो की चार मीराँ हो गई। राणा ठिठक जाता है और फिर देखता है तो सहस्त्रों मीराँ ही मीराँ उसे अपने चारों ओर दिखाई देने लगीं। अनेकों मीराँयें हँसती हुईं नजर आने लगीं। राणा के हाथ से तलवार गिर पड़ी, वह सिर पर हाथ पटकने लगा और 'हाय पिशाचनी' कहकर वहाँ से पगला सा लड़खड़ाता हुआ भाग कर अपने महल में चला गया।

मेवाड़ त्याग—मेड़ता गमन व त्याग

कहते हैं कि मीराँबाई पर जब राणा का अत्याचार बढ़ने लगा तब उसने गो० तुलसीदासजी को अपनी परिस्थिति विदित कराते हुए उनसे अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में परामर्श माँगा, तब गोस्वामीजी ने "जाके प्रिय न राम वैदेही, सो त्यागिये कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही" यह पद तथा एक सवैया लिख भेजा। इस प्रकार देश त्याग करने का विचार मीराँबाई कर ही रही थी कि राणा ने भी, जो कुछ दिनों से चिन्ता और भय के मारे अस्वस्थ हो चला था, मीराँबाई के लिये आज्ञा प्रकाशित की कि मीराँबाई अविलम्ब मेवाड़ देश का त्याग करे। मीराँबाई ने भी इस भूमि में अन्न जल न लेने का निश्चय करके चित्तौड़ छोड़ा। चित्तौड़ वासियों को इससे बड़ा ही दुःख हुआ, परन्तु विवश थे। बहुत भारी संख्या में नगर के नर-नारी आबाल वृद्धादि आँसू बहाते हुए उसे पहुँचाने सीमा तक चले गये।

मेवाड़ छोड़कर मीराँबाई की इच्छा डाकोरजी जाने की थी, परन्तु राव वीरमदेव तथा जयमल का मेड़ते चलने के लिये

एक बार किसी साधु के मन में मीरांबाई के प्रति बुरा भाव आया। पूर्ण यौवनवती, अलौकिक रूप-लावण्य व गुणवती फिर साधु सन्तों की सेवा करने वाली, मीरांबाई से वह एकान्त में मिलना चाहता था। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये वह योग्य अवसर की ताक में रहता था। एक दिन अनुकूल समय देख-कर अकेली मीरांबाई जहाँ बैठी थीं, वहाँ जाकर उसने कहा कि श्रीकृष्ण ने मुझे स्वप्न में तुम्हारे लिये सन्देश कहलाया है कि, हे मेरी प्रेयसी, तुम्हारे भक्ति-प्रेम से मैं बहुत प्रसन्न हो गया हूँ और मेरी ओर से मेरे इस अन्तरङ्ग भक्त को तुम्हारे पास भेजता हूँ। इनकी शरीर सेवा द्वारा मनोकामना पूर्ण करने से अवश्य ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। मीरांबाई ने शान्ति से कहा—अच्छी बात है महाराज! प्रभु की दासी पर बड़ी कृपा है। आप स्नान, भोजनादि से निवृत्त हो जाइये बाद में जैसा आप कहेंगे वैसा किया जायगा।

स्नान, भोजनादि के पश्चात् मीरांबाई ने दासी को खुले चौक में पलंग बिछाने को कहा। तब उस शय्या पर बैठ मीरां-बाई ने उस साधु से कहा—पधारिये महाराज, और अपनी इच्छा पूर्ण कीजिये। उस साधु ने निकट जाकर मीरांबाई के कान में कहा—एकान्त में चलना चाहिये। यह सुनकर सहज सात्विक आवेश से पर शान्त भाव से मीरांबाई ने कहा—महात्माजी ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ कोई भी न हो अथवा पूर्णतया एकान्त हो। सूर्यादि देवतागण-धर्म और सर्व व्यापी परमात्मा सदा सर्वदा जीवों के प्रत्येक कार्य के साक्षी हैं। जब भगवान् ही की आज्ञा है तो छिपाव की क्या आवश्यकता है। यह सुनकर उप-

जगत् प्रसिद्ध सूर्यकुल की अपकीर्ति का साधन बनती जारही थी। यह तभी मिटेगा जब मीरांबाई पृथ्वी पर से ही उठ जायगी।

यह निश्चय कर राणा ने दूत के साथ मीरांबाई को पत्र लिख भेजा कि यदि हमारे कुल में तुम कलङ्क रूप बनना नहीं चाहती और मेरे ज्येष्ठ भ्राता भोजराज और पूज्य पिताजी की परलोक गत आत्मा को वास्तव में शान्ति देना चाहती हो तो नदी में डूब कर मर जाओ। पत्र पढ़कर मीरांबाई ने किसी को कुछ कहा नहीं और प्रवास में किसी अरण्य में जब इन यात्रियों का डेरा नदी के तट पर लगा था तब एक रात्रि में सब को सोते हुए छोड़कर वह एक निकट की ऊँची चट्टान पर चढ़ी। नीचे अथाह जल द्रुत वेग से वह रहा था। उसने चहुँ ओर झाँका और तब श्यामसुन्दर, श्रीकृष्ण, हे गिरधरगोपाल! यह नाम स्मरण करती हुई वह भयङ्कर प्रवाह में कूद पड़ी।

जब यह मूर्च्छावस्था से जागृत हुई उसे याद आया कि श्याम सुन्दर जल में खड़े थे और उन्होंने उसे अपने हाथों में लेकर किनारे उतार दिया था। वृन्दावन जाने का भी संकेत हुआ था। अपने प्रियतम के मधुर स्पर्श से वंचित होने से व्याकुल होकर उन्हें कुछ प्रार्थना करने लगी थी, भगवान् अन्तर्ध्यान होगये और वह विरह ताप से मूर्छित हो गिर पड़ी थी।

जागृत होते ही मीराँ ने देखा उसकी दासियाँ तथा कुछ साधु-सन्त उसे घेरे हुए बैठे हैं। मैं कहाँ हूँ ? उसने पूछा। तब दासी ने कहा कि रात्रि को सहसा मेरी आँखें खुल गईं और देखा तो आपकी शय्या खाली है। मैं चारों ओर ढूँढ़ने लगी त्यों ही दूर चट्टान पर आपको खड़े देखा तब आपको पुकारती

के और उनकी रास लीला के भी दर्शन हुए, यही नहीं नरसिंह मेहता के समान वह स्वयं भी उसमें सम्मिलित हुई हो ऐसा उसने अनुभव किया। वह कृत्यकृत्य हो गई, उसका जीवन कृतार्थ हो गया।

जीव गोस्वामी और मीरांबाई

वृन्दावन वास की अवधि में एक बार मीरांबाई ने सुना कि यहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु के शिष्य श्रीरूप और सनातन गोस्वामीजी के भतीजे श्रीजीव गोस्वामी रहते हैं। वे बड़े ही धुरन्धर पंडित और ज्ञानी हैं। यह सुनकर मीरांबाई उनके दर्शन को गई परन्तु उसे दर्शन नहीं हुए क्योंकि वे महात्मा पर्दे के भीतर थे। उनके शिष्य ने बाहर आकर कहा कि "आपको गोस्वामीजी के दर्शन नहीं हो सकेंगे क्योंकि स्वामीजी महाराज कभी प्रकृति रूप स्त्री मात्र का मुख नहीं देखते" यह सुनकर कुछ मुस्करा कर मीरांबाई ने निर्भीकता से उस शिष्य को सुना दिया कि—तुम्हारे गुरू महाराज को कह देना कि मैं समझती थी कि 'वासुदेवः पुमनेकः स्त्रीमयमितरज्जगत्' (श्री भागवत)। व्रज में तो वासुदेव, कृष्ण, ही एक मात्र पुरुष और शेष सब गोपियाँ हैं। परन्तु आश्चर्य है कि आज दूसरे भी कोई उनके पट्टीदार पुरुष प्रकट हुए हैं जो इस व्रज में स्त्री का मुँह नहीं देखना चाहते। ठीक है—गोस्वामीजी पुरुष हैं तो मैं भी दूसरे पुरुष से मिलना नहीं चाहती। पुरुषत्व के अभिमानी से भाषण भी करना मैं नहीं चाहती। यदि स्वरूप को पहचानते तो गोस्वामीजी कभी ऐसा नहीं कहते कि मैं पुरुष हूँ। जब तक पूर्ण ब्रह्म से भिन्नता है तब तक सबके सब स्त्री हैं।

श्रीद्वारिकावास

मार्ग में तीर्थ यात्रा, सन्त दर्शन व सत्संग करती हुई मीराँबाई श्री द्वारिकापुरी पहुँच गई।

उधर मीरांबाई के मेवाड़ देश छोड़ जाने के पश्चात् वहाँ की परिस्थिति सर्वथा विपरीत हो गई। राणा विक्रमादित्य को वनवीर (राणा संग्रामसिंह के बड़े भाई पृथ्वीराज की पासवान का पुत्र) ने मार डाला और वह स्वयं राणा बन बैठा और उदयसिंह (विक्रमादित्य के छोटे भाई) को भी मारने गया था तब पन्नाधाय ने उदयसिंह को गुप्तरूप से केलवाड़ा की ओर भिजवा दिया और उसके नाम से अपने पुत्र का बलिदान देकर उसकी रक्षा की। अवसर पाकर सब जागीरदारों को व सरदारों को एकत्रित कर उनकी सहायता से वनवीर को परास्त कर उदयसिंह चित्तौड़ के राज्यसिंहासन पर बैठा।

मीराँ के जाने से मानों भगवान् ही रूठ गये हों त्यों मेवाड़ में अशान्ति बढ़ती ही चली, लोगों को चैन नहीं था। व्याधियाँ भी फैलने लगीं। नये-नये उपद्रव होने लगे और प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। तब राणा उदयसिंह और प्रजाजनों ने मिलकर मीरांबाई को वापिस लौटा लाने का संकल्प किया। उन्हें यह निश्चय हो गया कि मीरांबाई को अपमान पूर्वक देश निकाला देने से ही देश की यह परिस्थिति हुई है। उन्होंने कुछ जागीरदार तथा पुरोहितादि ब्राह्मणों को मीरांबाई को वापस लौटा लाने के लिये भेज दिये।

मीरांबाई के पीहर मेड़ते में भी परिस्थिति परिवर्तित हो चुकी

में मेरे कर्त्तव्य के लिये मैं निज मंदिर में जाकर श्री द्वारिकाधीश की आज्ञा ले आती हूँ, तब तक आप लोग यहीं भजन करते रहें।

यह कहकर मीरांबाई निज द्वार के भीतर चली गई और द्वार बन्द कर दिया। भगवान् से प्रार्थना की—हे मेरे श्याम-सुन्दर! जीवन भर विरहाग्नि में दहकती रही अब तो नाथ पधार कर इस जन्म-जन्म की आपकी दासी को कण्ठ लगाओ प्यारे! अब क्यों देर हो रही है नाथ!

पश्चात् उसने अपने पैरों में घूँघरू बाँध लिये। हाथ में करताल ली और पद गाते हुए नृत्य करने लगी। उसके स्वरों में करुणा, प्रेम, शृङ्गार आदि भावों की झलक थी। उसके नृत्य में हृदय का उफान था। अन्तिम 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीजे हो' यह चरण उसने गाया तब उसके नेत्रों में प्रेमाश्रु आये, कण्ठ गद्‌गद् हो गया, नेत्रों में आतुरता और उसके रोम-रोम में दिव्यता छा गई। उसकी प्रिय मिल-नोत्कण्ठा चरम सीमा तक पहुँच गई। तब सहसा श्री द्वारिका-धीश की पाषाण-प्रतिमा चैतन्यमयी हो गई। साक्षात् श्री कृष्ण-चन्द्र प्रकट हो गये। उसी क्षण आपही दीपक प्रकट हो गये, शङ्ख ध्वनि तथा घड़ियाल व घंटानाद होने लगा। अंतरिक्ष से पुष्प-वृष्टि होने लगी। मीरांबाई को अपने प्यारे की बाँसुरी की मधुर तान सुनाई दी। वहाँ फैले हुए दिव्य प्रकाश में एक टक प्रभु को निहार रही थी कि भगवान् ने हाथ पसारे व साथ ही शब्द सुनाई दिये-आओ मेरी प्यारी मीराँ! दूसरे क्षण दौड़कर वह प्रभु के निकट पहुँच गई और श्यामसुन्दर ने उसे अपने हृदय से लगा लिया—अपने दृढ़ बाहुपाश में बाँध लिया। अपने

मीराँ को निज लीन किय,
नागर नन्दकिशोर ।
जग प्रतीत हित नाथ मुख,
रह्यो चूनरी छोर ॥

बोलो भक्त और भगवान् की जय।

———

गुजराती भाषा की एक कहावत है कि 'ज्यां न पहोंचे रवि त्यां पहोंचे कवि'। जहाँ सूर्य की गति नहीं वहाँ कवि की गति होती है अर्थात् पृथ्वीतल पर रहते हुए भी स्वर्गादि लोकों में भी कवि की गति है। स्थूल जगत में रहते हुए भी उसका सूक्ष्म सृष्टि से सम्बन्ध है। ऐसा व्यापक बुद्धिमान कवि, असाधारण भाव एवं कल्पना के पंख फैलाकर ऊँची उड़ानें भरता है।

कवि में अद्भुत सामर्थ्य होता है। वह भावनात्मक एवं शाब्दिक सृष्टि का निर्माता है। यदि वह भावुक हृदय, एवं भक्त-कवि होगा तो भगवान् को भी वश में कर लेता है।

प्राचीन कवियों की वन्दना करते हुए कवि भवभूति ने अपने उत्तररामचरित के प्रारम्भ में यह प्रार्थना की है:—

"विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।"

'अमृत स्वरूपा और आत्मा की कला ऐसी देवगिरा को हम पावें।'

अर्थात्—

कविता अमृत स्वरूप है, क्योंकि लौकिक जगत से परे किसी अलौकिक जगत में विचरता हुआ कवि, एक ऐसी अपूर्व भावना और कल्पनाओं की रस भरी व, चैतन्यमयी सृष्टि का निर्माण करता है कि जिसका संजीवनी के समान लोक मानस पर अमोघ प्रभाव पड़ता है।

कविता आत्मा की कला है क्योंकि इस नश्वर जगत के परे उस अविनाशी सत्ता का वह संकेत करती है और आत्मा परमात्मा संबन्धी धार्मिक भावों एवं तत्वों को हमें प्रदान करती है जिससे मानव-जीवन आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होता है।

राधाकृष्ण लीला का मधुर रस सर्व साधारण जनता को भी पिलाया।

मीरांबाई के पहले विद्वद्वर महाराणा कुंभाजी (मीराँ के श्वसुर-महाराणा संग्रामसिंह के पितामह) ने 'गीत गोविंद' पर 'रसिक प्रिया' नामक संस्कृत में टीका लिखी थी। सारांश यह है कि उस व्रजभावात्मक प्रेम की यहाँ तक पहुँची हुई सुधा लहरी ने मीराँ को भी दिव्य रस से सिञ्चित किया हो, इसमें संदेह नहीं। फिर वह तो पूर्व जन्म की गोपी-श्यामसुन्दर की जन्म-जन्म की दासी थी। उसके पदों में भी ये सब भाव व्यक्त हैं।

मीराँ सगुणोपासिनी थी। उसकी उपासना विष्णु के कृष्ण स्वरूप की थी। उसके नारी-हृदय में दाम्पत्य भाव था इसलिये कृष्णानुराग के आवेश में उसके पदों में दाम्पत्य-रति की ही विशेष रूप से अभिव्यक्ति हुई है। श्यामसुन्दर ही उसके परम प्रियतम-प्राणनाथ और स्वामी हैं और उसकी भाव सृष्टि में वही उनकी परम प्रियतमा, राधा अथवा गोपी है।

भले ही कहीं साहित्यिक दृष्टि से मीराँ की कविता बहुत ऊँची नहीं मानी जाती हो अथवा सूर वा तुलसी की समानता न कर सकती हो परन्तु उसके पदों में जो नारी-सुलभ कोमलता व हृदय की मीठी तथा सरस वेदना भरी है वह औरों में नहीं। हृदय से निःसृत उसकी सरल और सहज वाणी में ऐसा विलक्षण चमत्कार है कि सामान्य जन-मानस तक उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मीराँ के अतिरिक्त ऐसा कोई विरला ही भक्त-कवि होगा जिसके पद (वाणी) समस्त संसार के कोने कोने में गुंजित होते हों। मीराँ के पद आत्मानुभूतियों से परिपूर्ण होने

अथवा तर्क द्वारा समझना कैसे संभव हो सकता है। फिर भी येन केन प्रकारेण प्राणी जैसा भी उसका वर्णन स्वतन्त्रता पूर्वक करता जाता है। यह निर्गुणवाद ही रहस्यवाद है।

संत कबीरादि मध्यकालीन संतों की वाणी में अधिकतर इसी रहस्यवाद की झलक दिखाई देती है। मीराँ के पदों पर भी यह प्रभाव है। परन्तु उसका रहस्यवाद शुष्कता को लेकर नहीं अपितु मधुर रस से छलकता हुआ व्यक्त होता है जिसमें उसके प्यारे श्यामसुन्दर की माधुरी प्रतिबिम्बित हुई दिखाई पड़ती है।

मीरांबाई के काव्य में, गोपी व राधाभाव के उलाहना तथा व्यङ्ग, अद्भुत कल्पनाशक्ति, करुणा से हृदय को द्रवित कराने वाला प्रबल विरहभाव, हृदय में खलबली मचाने वाला भावना प्रधान लीला वर्णन तथा प्रभावोत्पादक उपदेश आदि विविध भाव प्रचुरता एवं भाव-नाविन्य दिखाई देता है।

मीराँ के पदों में शांत, करुणा, शृङ्गारादि रसों का समावेश है किंतु विरह (करुणा) रस की प्रधानता देखी जाती है। वास्तव में प्रेम का प्रधान अङ्ग विरह ही है। उसका सारा जीवन भी तो अपने प्रियतम श्री श्यामसुन्दर के प्रेम एवं विरह में ही तड़पते बीता है। उसके पदों में जो रस भरी–मीठी व्यथा है वह ऐसी अनूठी है मानों उसने अपना हृदय ही निकाल कर बाहर रख दिया हो। उसकी उपासना दाम्पत्य भाव की होने से पदों में भक्ति और शृङ्गार, दोनों का सम्मिश्रण तो स्वाभा–विक ही है किंतु उसका शृङ्गार लौकिक-सा दिखाई देने पर भी अलौकिक व पवित्र है। साथ ही साथ उसमें अनन्त, शाश्वत तथा निर्मल प्रेम की अनोखी झाँकी है। उसके शब्दों में मर्माहत करने की तथा उच्च प्रेरणात्मक शक्ति है।

मीराँ की उपासना

★

त्रिरूप भङ्ग पूर्वकं नित्य दास नित्य कान्ता भजनात्मकं
वा प्रेमैव कार्यम् प्रेमैव कार्यम् ॥ ना० भ० सू० ६६ ॥

तीन (स्वामी, सेवक और सेवा) रूपों को भङ्ग कर नित्य दास भक्ति से या नित्य कान्ता भक्ति से प्रेम ही करना चाहिये, प्रेम ही करना चाहिये ।

प्रेम एक परो धर्मः प्रेम एव परंतपः ।
प्रेम एव परं ज्ञानं प्रेम एव परंगतिः ॥

वैसे तो परमात्मा अनन्त है इसलिये उसकी प्राप्ति के साधन भी अनन्त हैं किन्तु ज्ञान, योग, कर्म एवं भक्ति आदि भिन्न साधन की दृष्टि से उपासना दो प्रकार की मानी जाती है, १—निराकार वा निर्गुण उपासना । २—साकार वा सगुण उपासना ।

भक्ति मार्ग-यह सगुण उपासना का साधन है ।

सगुण उपासना में भी अनेकानेक मत-मतान्तर तथा सम्प्रदाय हैं । भगवान् श्री विष्णु के राम व कृष्णादि अवतारों की उपासना वैष्णव धर्म की मानी जाती है । श्री कृष्ण को उपास्य मानने वालों में भी भिन्न-भिन्न भाव व सिद्धान्त हैं । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की बालस्वरूप की उपासना युक्त पुष्टि-मार्ग स्थापित किया । श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री राधाकृष्ण के दिव्य भावानुभूतियों के आनन्दावेश व विरहार्णव में डूबते उतराते, कृष्ण-भक्ति का व विशेष कर भगवन्नाम का संसार को दिव्य

इस प्रेम को पाकर प्रेमी इस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है।

दाम्पत्य वा सखी भाव में भी 'तत्सुख सुखित्व' की भावना ही श्रेष्ठ है क्योंकि आत्मसुखेच्छा से प्रियतम से प्रेम करना तथा स्वयं को व प्रियतम को भी सुखी बनाने के लिये प्रेम करना, यह कोई सर्वोत्तम भावना नहीं। इसलिये 'तत्सुखेच्छा' अर्थात् केवल प्रियतम के सुख के लिये ही, तन मन आदि सर्वस्व त्याग पूर्वक, उनसे प्रेम करने की भावना ही मधुर-रति में सर्वोत्कृष्ट है। यह मधुर-रति ही मीराँ की साधना है।

ज्यों मुसलमानों के सूफी-सम्प्रदाय में ईश्वर को माशूक (प्रेमिका) और अपने को आशक (प्रेमी) मान कर साधना की जाती है, त्यों ठीक इसके विपरीत मधुर-रति अथवा कान्ता-भाव में श्री कृष्ण को अपने प्रियतम और अपने को उनकी प्रेयसी सखी अथवा प्राणवल्लभा दासी मानकर उपासना की जाती है। भक्ति मार्ग का यह एक सुन्दर व सर्व-रस-परिपूर्ण श्रेष्ठ साधन है। वैसे नारी को तो इस कान्ताभाव से उपासना करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। पर कहीं कहीं पुरुष साधक भी इस भाव से भक्ति करते हैं, कोई प्रच्छन्न रूप से तो कोई स्त्रीवेश को अपना कर प्रकट सखी भाव से।

वास्तव में स्त्री-पुरुष का परस्पर का प्रेम-अनुराग, और सब आकर्षणों से अधिक तीव्र होता है। उसी भाव से प्रियतम से मिलने की जो आवेशात्मक भावना होती है वही मधुर-रति का रहस्य है। सांसारिक भाव स्थूल तक ही सीमित रहता है किंतु

६—प्रेमालाप में—पूर्व जन्म के बोल।

७—दर्शनानंद में—मारा ओलगिया घर आया।

८—व्रजभाव में—पिछले जनम का कौल, पूरब जनम की मैं हूँ गोपिका अध विच पड़ गयो झोल रे।

१४—जोगी में—पूर्व जनम का कौल, पूरब जनम का लेख।

इत्यादि······॥

प्रभु के प्रति पतिभाव के शब्द प्रयोग

१—विरह में—पिया बिन, हरि सेज सोधासी, प्यारो-कन्त, स्वामी म्हारा, नाथ मैं थारी।

२—स्वजीवन में—दुलहो श्री भगवान, गिरधरजी भरतार, वर पायो गिरधारी, मीराँ उनकी नार, गिरधर साँचा पति छै, गिरधर सेजाँ आया।

३—प्रार्थना-विनय में—प्रीतम प्यारा, थाँरी होय के······।

४—निश्चय में—वर वरिए साँवरो, पिव के पलंगा जा पौढ़ूँगी, अखंड वर ने वरी, वर पायो छे रूडो, श्यामसुन्दर भरतार, परणीशु प्रभुजी नी साथ, कृष्ण कंथ-भरतार।

६-प्रेमालाप में—छाने ये वर वरचो, छोटा कन्त मोहे दीना।

७—दर्शनानन्द में—साजन घर आया, मन अंछ्या वर पावण।

८—व्रजभाव में—वर पायो दीनानाथ, श्री कृष्ण मारो वर छै, गोविन्द वर पाया है, सुरता चाली रे विष्णु वर ने वरवा।

६—सत्संग-उपदेश में—पिया मुंडे बोलो, साँवरिया वरनी साथे।

१३-होरी में—जनम जनम की चेली आदि ।

१४-जोगी में—जनम जनम को साहिब मेरो, वाही सों लौं लागी ।

१५-मुरली में—मैं दासी तोरे जनम जनम की ।

इत्यादि……।

———

कई प्रधान तीर्थ स्थानों में मीरांबाई की स्मृति में मंदिर बने हैं और श्री कृष्ण की मूर्ति के साथ उनकी मूर्ति की भी पूजा होती है। विश्व की किसी भी भाषा का धार्मिक साहित्य ऐसा नहीं होगा जिसमें मीरांबाई की चर्चा न हुई हो। विद्वद्-समाज और हिन्दी साहित्य क्षेत्र में मीरांबाई के पदों और रचनाओं का बहुत आदर है। शास्त्रों का सार तथा ज्ञान, रहस्य भक्ति, प्रेम आदि भाव अपने सरल पदों में लाकर उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। सारे भारत में उनके संगीतमय पदों की रसभरी तरंगे लहराती हैं। भारत का क्वचित् ही कोई कोना बचा होगा जहाँ उनका कीर्ति-सौरभ नहीं पहुँच पाया हो। संत समाज और भक्त जनों की भजन मंडलियों में ढोलक, खंजरी और तम्बूरे के साथ बड़े ही प्रेम से उनके पद गाये जाते हैं और घर घर में महिलाओं के कोमल कंठ द्वारा उनका सुमधुर पद-संगीत सुनाई देता है। गुजरात में आश्विन नवरात्रि की शरद रात्रियों में महिला समाज द्वारा गरबा-उत्सव मनाकर श्री आदि शक्ति-देवी कालिका माता को रिझाने की जो सुन्दर, आकर्षक और मंगल धार्मिक प्रथा है उसमें भी मीरांबाई के पदों व गरबियों का अपूर्व स्थान है। उनकी गरबियों को तो वहाँ इतनी अधिक लोकमान्यता प्राप्त है कि उनके बिना उत्सव में पूरा रंग ही नहीं जम पाता। शूद्रादिकों के समाज में भी एकतारा व मंजिराओं के साथ उनके निर्गुण आदि भावों के पद बड़े ही चाव से गाये जाते हैं। सारांश यह है कि धनी-गरीब, गृहस्थी-त्यागी, नर नारी एवं आबाल वृद्ध सभी में मीरांबाई के पद अत्यन्त लोक प्रिय हुए हैं।

मन्दिर-मन्दिर में 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' छाप वाले पदों की, भक्ति और प्रेम भरी मीराँ की वाणी गूँजती है और जिह्वा-जिह्वा उनकी लीला-गुण-गान करती है। मीरांबाई के

जिसके नाम के पीछे मेवाड़ देश संसार में मीरांबाई के देश के नाम से प्रसिद्ध है, उस राजकुल रमणी रत्न मीरांबाई की प्रेम और भक्ति भरी अमरगाथा के अंश को पृथक् कर लेने पर तो वीर प्रसविनी मेवाड़ भूमि का इतिहास अधूरा और एकांगी रह ही जायगा। अपने अद्भुत पराक्रम से शत्रु के कलेजों का कँपाने वाले और राष्ट्र के लिये हँसते हँसते अपने को बलिवेदी पर चढ़ा देने वाले वीरों की तथा बड़े साहस और प्रसन्नता पूर्वक धधकती अग्नि ज्वालाओं में कूद कर जौहर करने वाली मेवाड़ी वीराङ्गनाओं की अपूर्व गाथाओं से भरे हुए, मेवाड़ के इतिहास में, देवी मीरांबाई का स्थान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजसत्ता द्वारा बार-बार प्राणघातक-हिंसात्मक प्रयोग किये जाने पर भी काया वाचा मनसा अहिंसात्मक भावों को अपना कर अपने सत्याग्रह से विचलित न होने वाली, तथा संसार की तमोगुणी व मृत्यु से भी अधिक त्रासदायक उग्र-दावाग्नि की भयंकर लपटों के बीच निर्भय और अडिग रहकर जीवन-यापन करने वाली मीरांबाई की दिव्यता उन वीरों तथा वीरांगनाओं से किसी प्रकार कम नहीं है।

मीरांबाई की प्रतिभा अद्भुत थी। वह पढ़ी लिखी थी। संस्कृत भाषा का उसे पर्याप्त ज्ञान था। गीता-भागवत का उसका अभ्यास अधिकार पूर्ण था एवं उसका संगीत शास्त्र का अभ्यास भी चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था। भिन्न-भिन्न देशों में प्रवास व तीर्थ-पर्यटन के काल में तथा अधिकतर भिन्न भाषा-भाषी साधु-सन्तों के सत्संग से उसकी गुजराती, हिन्दी एवं व्रज आदि की भाषाओं में भी पूरी गति थी।

मेवाड़ी अथवा राजस्थानी भाषा में सबसे अधिक पद होना तो स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त श्री द्वारिकापुरी जाते समय गुजरात में होते हुए स्थान-स्थान पर ठहरने व रहने से तत्प्रादेशिक प्रभाव के कारण बहुत से गुजराती भाषा के पद भी पाये जाते हैं। कई पद ब्रजभाषा व हिन्दी के भी हैं। कहीं किसी पद पर पूर्वी व पंजाबी भाषा की छाया भी देखी जाती है जो कि गाते-गाते शब्दों के घिसते जाने से गाने वाले की मातृ-भाषा में आपही ढल कर आई हुई प्रतीत होती है।

मीरांबाई की रचनाएँ

१ नरसीजी का माहेरा	२ गीत-गोविंद की टीका
३ राग-गोविंद	४ सोरठ के पद
५ राग-मल्हार	६ गरबी गीत
७ राग विहाग	८ फुटकर पद

उपर्युक्त रचनाएँ मीरांबाई की स्वकृत मानी जाती हैं परंतु सभी उपलब्ध नहीं। नरसीजी का माहेरा, सोरठ के पद, गरबी गीत व राग विहाग के एवं फुटकर पदों में से कुछ अंश पाया जाता है।

राम

महात्मा श्री रामानन्द के शिष्य कबीर, दादूदयाल व रैदास आदि संतों की निराकार-घट-घट व्यापी राम की उपासना के कारण उनकी वाणी में प्रचलित 'राम' आदि शब्दों का प्रभाव मीराँ के पदों पर भी पड़ा जिससे उसके पदों में कई स्थान पर 'राम' शब्द आया है—यथा—

हरिजना ने हरि मिले, हरिजन हरि ने ओलखे, मीराँ कूँ हरिजन मिल्या, हरिजन मिलावौरी, हरिजन धोबिया, टलशे हरिजनां नां अंतर ना उचाट, आदि आदि ।

मीराँ के पदों में उल्लिखित देवी-देवता, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवतानुत राम व कृष्ण के एवं प्राचीन, मध्यकालीन संतों तथा तीर्थ स्थानों के नाम व प्रसंगादि—

पौराणिक देवी-देवता व भक्तादि—सरस्वती, नारद, प्रह्लाद, अजामील, गणिका, ध्रुव, बलि, वामन, नरसिंह, मार्कण्डेय, सनकादि, शुकदेव, हरिश्चन्द्र, गजराज, विट्ठल, श्री अंबाजी आदि ।

रामायण—राम, सीता, भरत, अहिल्या, गिद्ध, शबरी, आदि ।

महाभारत—पाण्डु, अर्जुन, द्रोपदी, द्रोण, विदुर, भीष्म, भँवरी अंडा प्रसंग आदि ।

श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी—ऊखलबंधन, कालीय मर्दन, कुब्जा कंस, गोवर्धन धारण, राधा, पूतना, चन्द्रावली, सत्यभामा, रुक्मिणी, ललिता, सुदामा, शिशुपाल, रासलीला, चीरहरण, उद्धव-गोपी प्रसंगादि ।

प्राचीन भक्त—गोपीचन्द, भर्तृहरि, जयदेव, रंकाबंका, पुण्डरीक, बोडाणा ।

मध्यकालीन सन्त—कबीर, करमाबाई, नरसी भगत, कुँवरबाई, नामदेव, पीपा, रैदास, सदना, सेनभक्त, धनाभगत, श्री चैतन्य महाप्रभु, तुलसीदास आदि ।

तीर्थादि—गङ्गा, यमुना, जगन्नाथ, डाकोरादि ।

मीराँ के पदों में भिन्न प्रकार की लगी हुई छाप

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।।
मीराँ कहे हरि हरि अविनाशी ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी ।।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।।
बाई मीराँ कहे हरि हरि अविनाशी ।
बाई मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी ।।

दास मीराँ लाल गिरधर, दासी मीराँ शरण श्याम की, बाई मीराँ की विनती, मीराँ गिरधर, मीराँ कहे, मीराँ दासी श्याम की, मीराँ तो गिरधर के शरणे, बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला, मीराँ कूँ प्रभु गिरिधर मिलिया, मीराँ कहे मैं दासी रावरी, मीराँ के प्रभु रामजी, मीराँ ना स्वामी, मीराँ के आनन्द, आदि आदि ।

मीराँ की प्रेम-साधना (पद विभागों के क्रम से)

मीराँ का सारा जीवन अपने प्यारे श्यामसुन्दर के 'विरह' में बीता । अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पण करके, भक्ति और प्रेम मार्ग पर जब वह स्वतंत्रता पूर्वक विचरने लगी तब उसके 'स्वजीवन' की परिस्थिति उसकी साधना में बाधक हुई । उसने तब सच्चे हृदय से भगवान से 'प्रार्थना-विनय' की और उस भगवत्कृपा के विश्वास पर दृढ़ 'निश्चय' कर लिया और बाधक

शिरोमणि, सुन्दरवर, श्यामसुन्दर उस राधाभावमयी मीराँ को प्रेम का न्यारा ही रसास्वादन कराने के लिये 'जोगी' के भेष में उसके पास आये क्योंकि वह भी उनके पीछे सवस्व का त्याग कर जोगिन जो वन गई थी। इस प्रकार प्रेम रस की पराकाष्ठा में श्री राधाभाव में तद्रूप हो जाने पर उसे श्री वृन्दावन विहारी का 'मुरली' द्वारा मधुर मिलन का प्रेम सन्देश सुनाई दिया और वह तब अपने प्राणनाथ, श्यामसुन्दर-अपने आनन्द-स्वरूप में विलीन हो गई। श्यामसुन्दर को नाना प्रकार की रस-लीला अनुभव के जो उसके हृदय में 'प्रकीर्ण' भाव थे सभी इस अंतिम प्रय मिलन के आनन्द सुधा सिन्धु में डूब गये। भक्त और भगवान एकाकार हो गये।

कहीं-कहीं मीराँ के पद अथवा पदों के चरण, सन्त कबीर, सूरदास एवं चन्द्रसखी के पदों से व चरणों से मिलते जुलते दिखाई देते हैं।

भाग ज्यों पुनः द्विगुणित वेग से परस्पर में मिल जाने को धँसते हैं, तद्वत् प्रिय विरह में तड़पता हुआ जीव येन केन प्रकारेण अपने आनंदस्वरूप की प्राप्ति के लिये नाना चेष्टाएँ करता है। जिसने एक मात्र प्राणप्यारे भगवान की ही शरण ले ली है, उस विरही भक्त की छटपटाहट तो शनैः शनैः वृद्धि-गत होती हुई, उस सीमा तक पहुँच जाती है जब कि उसे अपनी देह की भी सुधि नहीं रह पाती और शरीर में भी विरह जन्य व्याधि विशेष के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

साहित्य में विरह भाव को व्यक्त करने वाला एक मात्र करुण रस है।

एको रसः करुण एव निमित्त भेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्!
आवर्त बुद्बुद तरंगमयान् विकारा
न्नम्भो यथासलिलमेवतु तत्समग्रम् ॥

एक ही करुण रस निमित्त भेद से विभक्त हुआ पृथक्-पृथक् परिणामों को प्राप्त करता है। वस्तुतः सभी रसों में वह एक ही करुण रस मौलिक है जैसे आवर्त, बुद्बुद और तरंग आदि रूपों को प्राप्त करने वाला जल सर्वत्र एक ही है।

इस रस मर्मज्ञ जनों की उक्ति के अनुसार साहित्य के सब रसों में एक मात्र करुण रस ही प्रधान माना जाता है। संस्कृत साहित्य में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्राप्यस्ति शकुन्तला।
तत्राप्यङ्कश्चतुर्थश्च तत्र श्लोकश्चतुष्टयम् ॥

अतएव यहाँ सर्वोत्तिम माने गए इन चार श्लोकों में केवल विरह भाव युक्त करुण रस ही ओत-प्रोत है।

प्रेम और विरह का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसने प्रेम के क्षेत्र में पैर रखा उसे विरह की अग्नि में जलना ही होगा। आत्यंतिक ममत्व ही प्रेम है। जिस पर प्रेम होता है वह अपना ही बना रहे हृदय की यही चाहना हुआ करती है। इस चाहना की पूर्ति तक व्याकुल होकर रोना, सिसकना और तड़पना ही एक मात्र विरही साधक की साधना होती है। अपने प्यारे से मिलन होना ही संयोग है और बिछड़ना ही वियोग है। वियोग की स्थिति ही विरह है।

श्री पातञ्जल योगसूत्र, श्री गीताजी, सांख्यसूत्र और श्रीभागवतादि शास्त्र पुराणों में मन को वश में करने के लिये 'अभ्यास' और 'वैराग्य' का साधन बताया है जो विरह की स्थिति में आप ही आप सध जाता है; क्योंकि जिसके चित्त में एक मात्र श्यामसुन्दर बस गये हैं उसे सांसारिक किसी वस्तु के प्रति न तो मोह रह पाता है न अपने प्यारे के सिवा अन्य किसी के प्रति आकर्षण ही। विरह भाव जैसे-जैसे बढ़ता जाता है त्यों मन का अहंकार नष्ट होता जाता है और इस प्रकार हृदय सर्वथा निष्कपट व सरल होकर भक्त अपना सर्वस्व अपने प्रियतम को समर्पण कर देता है। वह अपना सब कुछ देकर अपने प्यारे को सुखी देखना चाहता है। वह देता ही जाता है अथवा वह देना ही जानता है। लेना तो कभी चाहता ही नहीं। वह स्वयं ही उनका बन जाता है और तब उसके प्रियतम को भी उसका होना ही पड़ता है। इस प्रकार धीरे धीरे यह द्वैतभाव मिटता जाता है और अन्त में दोनों को एक हो जाना पड़ता है क्योंकि जब तक पृथकत्व है तब तक कदापि सुख-चैन से नहीं रहा जायगा। एक होकर ही विरह—साधना शेष होती है यथा—

प्रेम पाश जो बँध गये, फिर नहिं टूटत तार ।
तड़पत सिसकत है तऊँ, सुमिरत बारंबार ॥

विरह में दूर होते हुए भी आत्मिक दृष्टि से तो दोनों की एकता सधी हुई रहती है । उनका प्रेम तो अखंड होता है क्यों-कि दोनों के ही हृदय प्रेम-पाश में आबद्ध हो चुके हैं और घायल हैं ।

विरह किसी सच्चे प्रेमी के हृदय में ही प्रकट होता है अथवा यों कहा जाय कि प्रभु कृपा से ही किसी प्रेमी-भक्त विशेष पर यह उनकी देन है, तभी कहा है,—

जिस पर तुम हो रीझते, क्या देते जदुवीर ।
रोना धोना सिसकना, आहों की जागीर ॥

विरह में मधुर वेदना और मधुर स्मृति की एक ऐसी सृष्टि का निर्माण हुआ करता है कि जिसमें प्रेम का शुद्ध व वास्तविक स्वरूप झलकने लगता है और उस छटपटाहट में एक विलक्षण व अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव होता है । तड़पते व रोते हुए हृदय में भी एक सात्विक संतोष का भाव छाये रहता है क्योंकि जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता वह और कोई नहीं अपना ही है चाहे जितनी दूर ही क्यों न बसता हो । संक्षेप में यही कि विरह में ही प्रेम अधिकाधिक उज्ज्वल होता जाता है और विरह में ही प्रेम की रक्षा होती है ।

स्व० विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में एक विरहिणी के हृदयोद्गार देखिये—'Come to my heart and see His face in tears.' अर्थात् मेरे हृदय के निकट आकर आँसूओं में उसकी छवि देख लो ।

विरह बड़ो वैरी भयो, हिरदा धरे न धीर।
सुरत सनेही ना मिले, तब लगि मिटै न पीर॥
कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर चित्त।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत॥
(कबीर)

जब विरहा आया दई, कडुवे लागैं काम।
काया लागी काल ह्वै, मीठा लागा नाम॥
(दादू दयाल)

सुन्दर विरहिनि अधजरी, दुःख कहै मुख रोई।
जरि बरि के भसमी भई, धुवाँ न निकसै कोई॥
(सुन्दरदास)

बिरह अगिन तन तूल समीरा, स्वास जरइ छन माँह सरीरा।
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी, जरइन पाव देह विरहागी॥
(तुलसीदास)

'विरह' मीराँ की वाणी में

प्रेमतत्व का मूल आधार विरह है। बिना विरह के प्रेम, बिना प्राण के शरीर के समान शून्य है। विरह में ही प्रेम का वास्तविक रसास्वादन होता है।

विरह प्रायः तीन प्रकार का माना गया है:—१ भावी विरह, २—वर्तमान विरह, ३—भूत विरह।

(१) अपना प्रियतम भविष्य में अपने को छोड़कर चला जायगा इससे हृदय में जो एक प्रकार की व्यथा हुआ करती है यह भावी विरह। मिलनावस्था में भी भावी प्रिय-वियोग की आशंका बनी रहती है। जैसे जैसे दिन-रात्रि व घड़ी-पल व्यतीत होते हैं वैसे वैसे यह भाव तीव्र होता जाकर हृदय को रह रह कर बेचैन बना डालता है।

छूट जाता है फिर भी उस निराशा में भी प्रेमी आशा के झूले पर झूलने लगता है कि कभी तो वे आवेंगे ही। और कुछ नहीं तो दूर से ही कभी उनके दर्शन हो जाँय। इस परिस्थिति में न मरना होता है न जीना ही। इस प्रकार हृदय की व्यथा बढ़ते बढ़ते भिन्न-भिन्न अवस्था को प्राप्त होती जाती है। विरह की वे दस अवस्थाएँ इस प्रकार कही जाती हैं :—

चिन्तात्र जागरोद्वेगो तानवं मलिनाङ्गता।
प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युर्दशा दश॥
(उज्ज्वल नीलमणि)

१–चिन्ता, २–जागरण, ३–उद्वेग, ४–कृशता, ५–मलिनता, ६–प्रलाप ७–व्याधि, ८–उन्माद, ९–मूर्च्छा १०–मृत्यु।

मीरांबाई ने भी अपनी विरहावस्था की भिन्न मनोदशाओं का उल्लेख यत्र तत्र अपने विरह के पदों में किया है।

१–चिन्ता–निरन्तर अपने प्रियतम के ही विचार तथा प्रत्येक कार्य करते समय उन्हीं के संकल्प विकल्प चलते रहना अर्थात् मन को चिन्तन करने को अन्य कोई विषय ही नहीं मिलता हो उस विकलता भरी स्थिति को 'चिन्ता' कहते हैं। यथा—

(१) चित्त चढ़ी वह माधुरी मूरत उर बिच आन अड़ी।
आली री मेरे नैनन बान पड़ी॥

(९) तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, कर धर रही कपोला॥

(११) कहा करौं कित जाऊँ मेरी सजनी, लाग्यो है बिरह सतावना॥

(१४) तुम बिन रह्यो ई न जाय॥

चिन्तन करने से देह का दुर्बल हो जाना भी स्वाभाविक है यही 'कृशता' है। यथा—

(१५) यूं तन पल पल छीजै हो॥
(१६) खान पान मोहिं नेक न भावै॥
(३३) विरहन भूरै श्याम ने।
(३९) खान पान सुध बुध सब बिसरी
(७२) आँगलियारी मूँदड़ी (म्हारे) आवण लागी बाँहि॥

५-मलिनाङ्गता---तन, मन, प्राण और बाह्य शृङ्गारादि सब कुछ प्यारे के सेवा-सुख के लिये ही तो है। वे ही जब नहीं तब देह, वसन और केशादि की स्वच्छता की ओर ध्यान जा ही कैसे सकता है! इस अव्यवस्थितता का नाम ही 'मलिनाङ्गता' है। यथा--

(९) तुमरे कारण सब रंग त्यागा, काजल तिलक तमोला॥
(६८) रहूँगी बैरागण होय॥

६-प्रलाप---प्यारे के विरह में जो प्राणों को छटपटाहट होती है उसके बढ़ जाने से वाणी पर भी नियन्त्रण नहीं रह पाता और तब उस आवेश में भीतर के भाव असम्बद्ध व पागल की सी बातों के रूप में व्यक्त होते हैं, यही 'प्रलाप' है। यथा-

(४१) रैण यहीं रहजाओ चन्दाजी,के जा म्हारा पियाजी की बात॥
(६३) जोसीड़ा जोस जुओ ने········ ॥
(६१) जो मैं ऐसा जाणती,रे प्रीत किये दुख होय। नगर ढँढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय॥
(७२) काढ़ कलेजो मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय। ज्याँ देसाँ म्हारो पिय बसैरे वे देखै तू खाय॥

पर भी आशा-पूर्ति का कोई लक्षण नहीं तब शरीर में प्राणों का रहना असह्य हो जाता है। प्रिय-विरह-वेदना के आगे मृत्यु भी अधिक सुख कर होने लगती है, यही 'मृत्यु' अवस्था है यथा—

(१) कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवन मूल जड़ी ॥
(१२) तलफ तलफ जिव जाय हमारो। मरण जीवन उन हाथ ॥
(२३) तुम मिलिया बिन तरस तरस तन जाय ॥
(३५) मैं हरि बिन क्यों जिऊँरी माई ॥
(४१) कनक कटोरा में जहर जो भरीयो,तुम्हारे हाथ पिलाजाओ
(६०) ले कटारी कण्ठ चीरूँ करूँगी आपघात
(७७) करवत लूँ जाय कासी ॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
सब सुख होय स्याम घर आये ॥५॥

प्रार्थना ४

कभी म्हाँरी गली आव रे, जिया की तपत बुझाव रे
म्हाँरे मोहना प्यारे ॥०॥
तेरे साँवले वदन पर, कई कोट काम वारे।
तेरा खूबी के दरस पै, नैन तरसते म्हाँ रे ॥१॥
घायल फिरूँ तड़पती, पीड़ जाने नहिं कोई।
जिस लागी पीड़ प्रेम की, जिन लाई जाने सोई॥२॥
जैसे जल के सोखे, मीन क्या जिवें विचारे।
कृपा कीजे दरस दीजे, मीराँ नन्द के दुलारे ॥३॥

प्रार्थना ५

पिया अब घर आज्यो मेरे, तुम मोरे हूँ तोरे ॥०॥
मैं जन तेरा पंथ निहारूँ, मारग चितवत तोरे ॥१॥
अवध वदीती अजहुँ न आये, दुतियन सूँ नेह जोरे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु कबरे मिलोगे, दरसन बिन दिन दोरे ॥३॥

प्रार्थना ६

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्याँ सामा ॥०॥
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाउँ, सरैं मनोरथ कामा ॥१॥
तुम विच हम विच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा ॥२॥
मीराँ के मन और न माने, चाहे सुन्दर स्यामा ॥३॥

तीव्रता ७

परम सनेही राम की नित ओळूँ रे आवे।
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कछु न सुहावै ॥०॥

यो संसार विकार सागर बीच में घेरी ।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो बूड़त है बेरी ॥२॥
विरहणि पिव की बाट जोवै राखल्यौ नेरी ।
दासि मीराँ राम रटत है मैं सरण हूँ तेरी ॥३॥

तीव्रता ११

हे मेरो मन मोहना आयो नहीं सखी री ॥०॥
कैं कहुँ काज किया संतन का । कै कहुँ गैल भुलावना ॥१॥
कहा करौं कित जाउँ मेरी सजनी । लाग्यो है विरह सतावना ॥२॥
मीराँ दासी दरसण प्यासी । हरि चरणा चित लावना ॥३॥

तीव्रता १२

नींदड़ली नहिं आवै सारी रात, किस विधाँ होय परभात ॥०॥
चमक उठी सपने सुध भूली, चंद्रकला न सोहात ।
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ ॥१॥
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात ।
मीराँ कहै बीती सोई जानै, मरण जीवण उन हाथ ॥२॥

उत्कंठा १३

पिया बिनि रह्योई न जाइ ॥०॥
तन मन मेरो पिया पर वारूँ, बार बार बलि जाइ ॥१॥
निस दिन जोऊँ बाट पिया की, कबरे मिलोगे आइ ॥२॥
मीराँ के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाइ ॥३॥

तीव्रता १४

प्रभुजी थें कहाँ गया नेहड़ो लगाय ॥०॥
छोड़ गया अब कोन बिसासी, प्रेम की बाती बलाय ॥१॥

निरखण कूँ मोहि चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा ॥२॥
व्याकुल प्राण धरत नहीं धीरज, मिल तूँ मीत सबेरा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ताप तपन बहु तेरा ॥४॥

ज्ञान १६

पिया मोहि आरत तेरी हो ।
आरत तेरे नाम की मोहिं सांझ सवेरी हो ॥०॥
या तन को दिवला करूँ मनसा की बाती हो ।
तेल जलाऊँ प्रेम को बालूँ दिन राति हो ॥१॥
पटियाँ पारूँ गुरू ज्ञान की बुधि माँग सँवारूँ हो ।
पीया तेरे कारणे धन जोबन गारूँ हो ॥२॥
सेजड़िया बहु रंगिया चंगा फूल बिछाया हो ।
रैण गई तारा गिणत प्रभु अजहुँ न आया हो ॥३॥
आया सावण भादवा वर्षा ऋतु छाई हो ।
स्याम पधारया सेज में सूती सैन जगाई हो ॥४॥
तुम हो पूरे साइयाँ पूरा सुख दीजे हो ।
मीराँ व्याकुल बिरहणी अपनी कर लीजे हो ॥५॥

उत्कंठा २०

नैन ललचावत जिवरा उदासी ।
साँवल वन में बाजे साँवल की बाँसी ॥१॥
रैन में सैन में मोरा नैना न लागे ।
प्रीतम के स्वास आवे कुसुम-सुवासी ॥२॥

तीव्रता २१

तोसौं लाग्यौ नेह रे प्यारे नागर नँदकुमार ।
मुरली तेरी मन हरयो, बिसरयो घर-व्यौहार ॥०॥

या तन को दियना करों मनसा करों बाती हो।
तेल भरावों प्रेम का, बारों दिन राती हो ॥१॥
पाटी पारों ज्ञान की मति माँग सँवारों हो।
तेरे कारन साँवरे धन जोबन वारों हो ॥२॥
या सेजिया बहु रंग की बहु फूल बिछाये हो।
पंथ मैं जोहों स्याम का अजहूँ नहिं आये हो ॥३॥
सावन भादों ऊमड़ो बरषा रितु आई हो।
भौंह घटा घन घेरि के नैनन झरि लाई हो ॥४॥
मात पिता तुमको दियो तुम ही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को मन में नहिं आनों हो ॥५॥
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म को पूरन पद दीजै हो।
मीराँ व्याकुल बिरहनी अपनी करि लीजै हो ॥६॥

प्रार्थना २५

तुमरे कारण सब सुख छोड़्या अब मोहि क्यूँ तरसावौ हो।
बिरह-बिथा लागी उर अंतर सो तुम आय बुझावौ हो ॥१॥
अब छोड़त नहीं बणै, प्रभुजी हँस कर तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम-जनम की अँग सूं अंग लगावौ हो ॥२॥

प्रार्थना २६

मेरे घर आवो सुंदर श्याम ॥०॥
तुम आयाँ बिन सुख नहीं मेरे, पीरी परी जैसे पान ॥१॥
मेरे आसा और न स्वामी, एक तिहारो ध्यान ॥२॥
मीराँ के प्रभु वेग मिलो अब, राखोजी मेरो मान ॥३॥

विनय २७

गोविंद गाढ़ा छौ जी दिलरा मिंत ॥०॥
बाट निहारुँ, पंथ बुहारुँ, ज्यों सुख पावे चित्त ॥१॥

दिवस न भूख नींद नहिं रैना,
मुख सूँ कथत न आवे बैना ।
कहा कहूँ कछु कहत आवे,
मिल कर तपत बुझाय ॥२॥
क्यूँ तरसावो अंतरजामी,
आय मिलो किरपा कर स्वामी ।
मीराँ दासी जनम जनम की,
पड़ी तुम्हारे पाय ॥३॥

प्रतीक्षा ३१

माई री मोसूँ पिया विन रह्यो न जाय ॥०॥
तन मन मेरो पिया पर वारूँ, वार वार वलि जाय ॥१॥
निशदिन जोउँ वाट पिया की, कवरे मिलेगो आय ॥२॥
मीराँ के प्रभु आस तुम्हारी, लीज्यो कंठ लगाय ॥३॥

तीव्रता ३२

गोविंद आवो न सब सुखरासी, आवोजी मुक्त विलासी ।
अब की वेर प्रभु दरसण दीज्यो, सखियाँ करत मेरी हाँसी ॥०॥
सब सणगार सजे तन उपर, हरि विन लगत उदासी ।
जाँका दुख की जेही जाणें, औरों के मन हाँसी ॥१॥
आँबा की डाल कोयल एक बैठी, बोलत सबद उदासी ।
मेरा मन में ऐसी आवे, करवत लूँगी जाय कासी ॥२॥
उ दिन मोकूँ कैसो होयगा, हरि मेरी सेज सिधासी ।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, सुख की रैण विहासी ॥३॥

तीव्रता ३३

कोई कहियो रे विनति जाई कै । म्हारा प्राण पियारा नाथ ने ॥०॥
जा दिन के बिछुरे मन मोहन । कल न परत दिन रात ने ॥१॥

विनय ३६

श्याम विना उब गये दोनों द्दगरा ॥०॥

चार पहर वीती मानों चार युग वीत्या ।
घट गई रजनी होय गया फिगरा ॥१॥

आज ही तो श्याम म्हाँने सपना में मिलिया ।
खुल गया नैण ठरक गया कजरा ॥२॥

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
वेर वेर करूँ थाँ सूँ मुजरा ॥३॥

प्रेमालाप ३७

रह्यो नहीं जावें, साँवरो म्हाँने चिताँ वणो आवे रे ॥०॥

मीठां मीठां बोल, बोल मन मोह्या ।
पल-पल छिन-छिन चिताँ वणो आवे रे ॥१॥

मोहन वेण वजावे अधर पर ।
माधुरी मुरत विन और नहीं भावे रे ॥२॥

बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
आपको रूप प्रभु आप वतावो रे ॥३॥

व्याकुलता ३८

साँवरा जी से मिलणो किस विध होय ॥०॥

मनखा जनम पदारथ पायो,
भजन विना दियो खोय ।
आठ पहर धंधा में खोयो तीन पहर रह्यो सोय ॥१॥

चाँदणी रात चटक रह्या तारा रैण रही वड़ी दोय ।
जो हरि आवता जाणती सजनी देती मन्दर खोल ॥२॥

खोलूँगी चीर वधाउँगी जटा घर-घर अलख जगाय ।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरख निरख गुण गाय ॥३॥

बादल होय बुहा जाओ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
तन की तपन बुझा जाओ ॥४॥

प्रार्थना ४२

तुम आईयो कृपा निधान नाथ वेगही ।
नाथ वेग ही जी अब राखो बिरहण जल्दी ॥०॥
मेरे द्वार आगे आये प्रभु निकस क्यूँ गये ।
दीन के दयालजी कठोर क्यूँ भये ॥१॥
बिरहण तो भई है कारी नागनी डसी ।
मूरति महाराज की–म्हारा हिया में-वसी ॥२॥
दिवला मेरे हाथ लियां बाट जोवती ।
मेरे नाथ हू न आये सारी रैण रोवती ॥३॥
पिया मैं के दरश विना फिरूँ डोलती ।
मीराँ तो तिहारी प्रभु नाम बोलती ॥४॥

अन्तर्व्यथा ४३

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूँ लिख भेजूँ रे पाती ॥०॥
स्याम सनेसो कबहूँ न दीन्हों, जानि बूझ गुझ बाती ॥१॥
डगर बुहारूँ पंथ निहारूँ, रोई रोई अँखियाँ राती ॥२॥
रात दिवस मोहि कल न पड़त है हियो फटत मेरी छाती ॥३॥
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे पूर्व जनम के साथी ॥४॥

अन्तर्व्यथा ४४

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखि ही न जाई ॥०॥
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रहो घर्राई ॥१॥
बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहे झर्राई ॥२॥

आप न आवै लिख नहिं भेजै
बाण पड़ी ललचावन की ॥१॥
ए दोउ नैण कह्यो नहिं मानै
नदियाँ वहैं जैसे सावन की ॥२॥
कहा करूँ कछु नहिं वस मेरो
पाँख नहीं उड़ जावन की ॥३॥
मीराँ कहै प्रभु कब र मिलोगे
चेरी भइ हूँ तेरे दाँवन की ॥४॥

अन्तर्व्यथा ४८

पतिया ने कूण पतीजे । म्हारो अँसुवा सूँ अँचरो भीजे ॥०॥
झूठी पतिया लिख कर भेजे । क्या लीजे क्या दीजे ॥१॥
ऐसा है कोई वाँच सुणावे, म्हें वाँचूं तो तन छीजे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित दीजे ॥३॥

बारामासी ४९

किस विध वाँचूँ श्याम पतियाँ मोहन की ॥०॥
चार चार महिना साँवरा लग्यो ऊनाळो ।
अब ऋतु आई साँवरा पंखा ढोळन की ॥१॥
चार चार महिना साँवरा लग्यो चोमासो ।
अब ऋतु आई साँवरा वर्षा आवन की ॥२॥
पतियाँ वाँचत मेरी छतियाँ जलत है ।
नेण भरे अब नदियाँ सावन की ॥३॥
चार चार महिना साँवरा लग्यो सियाळो ।
अब ऋतु आई साँवरा दुपटा ओढ़न की ॥४॥

अब तो बेग दया कर प्रीतम, मैं छूँ थारी दासड़ियाँ ॥२॥
नैण दुखी दरसण कूँ तरसै, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
रात दिवस हिय आरत मेरो, कब हरि राखै पासड़ियाँ ॥३॥
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ।
मीराँ के प्रभु कब र मिलोगे, पूरो मन की आसड़ियाँ ॥४॥

प्रलाप ५३

जाओ हरि निरमोहिया जाणी थाँरी प्रीत ॥०॥
लगन लगी जद प्रीत और ही, अब कुछ अँवली रीत ॥१॥
इमरत पाइ के विष क्यूँ दीजै, कूँण गाँव की रीत ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत ॥३॥

तीव्रता ५४

मैं विरहणि बैठी जागूँ, जगत सब सोवैरी आली ॥०॥
विरहणि बैठी रंगमहल मैं, मोतियन की लड़ पोवै।
इक विरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै ॥१॥
तारा गिण गिण रैण विहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिलके विछुड़ न जावै ॥२॥

वैराग्य ५५

चालाँ वाही देस प्रीतम, चालाँ वाही देस ॥०॥
कहो कसूमल साड़ी रँगावाँ। कहो तो भगवाँ भेस ॥१॥
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ। कहो छिटकावाँ केस ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। सुणज्यो विड़द नरेस ॥३॥

प्रेमपंथ ५६

प्रीत नहीं कीजे,एजी हो प्रीत नहीं कीजे। विछरत नैण झरीजे॥०॥
पतिंग जो प्रीत करी दीपक सें। सनमुख देह जरीजे ॥१॥

नैण म्हारा उघड़ आया रही मन पछतात ॥२॥
रैण अँधेरी विरह वेरी, तारा गिणत निस जात।
ले कटारी कंठ चीरूँ, करूँगी अपघात ॥३॥
आवण आवण होय रह्यो रे नहिं आवण की वात।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे वाल ज्यूँ विललात ॥४॥

व्याकुलता ६१

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण विन मोय।
तुम होमेरे प्राणजी, कासूँ जीवण होय ॥०॥
धान न भावै नींद न, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणै कोय ॥१॥
दिवस तो खाय गमाईयो रे, रैंण गमाई सोय।
प्राण गमाया झूरताँ रे, नैंण गमाया रोय ॥२॥
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति कियाँ दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय ॥३॥
पंथ निहारूँ डगर वुहारूँ, उभी मारग जोय।
मीराँ के प्रभु कवरे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय ॥४॥

विरहालाप ६२ (गुज०)

त्रीज मां नाव्या फरीने, गोपीनो वा'लो त्रीज मां नाव्या फरीने ॥०॥
गामरे गोकुळीयुं मे'ली मथुरां पधारया वा'लो,
जइ वरया कुवजा नारी ने ॥१॥
सातरे दिवस नो हरि वायदो करी ने गया छो,
खट मास थया छे हरि ने ॥२॥
सातसे गोपीनी साथे रास रच्यो छे वा'ला,
उभा मुख मोरली धरीने ॥३॥

विठ्ठलराय जेदी वरवाने आव्या,
तेदीना विंटाणा छे वरमाळे रे ॥३॥
कागळीया नो जेदी कटको न होतो रे,
मसरे मोंघी रे जेदी लेखण न होती रे।
वाहला विदुर ते जइने एटलु कहेजो रे,
तमे एक वार मळवाने, वहेला आवो रे ॥४॥
मधुरी नाद नी मोरली रे वागे रे,
शुरतीया मां राधाजी जागे रे।
मीराँ नो स्वामी जेदी गीरधर मळशे,
तेदी दासीनां दुःखडां भागे रे ॥५॥

वियोग-व्यथा ६५ (गुज०)

अबोला सीद लो छो, मारा राज, प्राण जीवन प्रभु मारा ॥०॥
अमे तो तमारां तमे तो अमारा, टाळी दोष शीद दो छो रे।
अमे तो तमारी सेवा करीए, सुख लइने दुःख दो छो रे ॥१॥
जेणे पोतानी मासी मारी, तेनो शो विश्वास रे।
अमृत पाइने उछेर्यां वाहला,
विखडां घोळी घोळी शीद पाओ छो रे ॥२॥
ऊंडा कुवामां उतर्यां वाहला, वरत वाढी शुं जाओ छो रे।
मीराँ के प्रभु गीरधर नागर, चरण कमळ चित रोहो छो रे ॥३॥

विरहालाप ६६ (गुज०)

पिया कारण रे पीळी भइ रे, लोक जाणे घट रोग।
छप छपलां में कंइ करूं, मोइ पियु ने मिलन लियो जोग रे ॥०॥
नाडी वैद्य तेडाविया रे, पकड़ धंघोळे मोरी बांह।
एरे पीडा परखे नहि, मोरे करक काळजडानी मांह रे ॥१॥

स्वजीवन ६९

घड़ी नहीं विसरयो जाय, रटूँ हरिनाम ॥०॥
पाना से पीली पडी राणा लोग कहे पिंड रोग ।
घायल सूँ घुमतो फिरै खबर न जाणी कोय ॥१॥
वैद बुलायो चित्तौड़ से पकड़ बताओ बाँरी बाँय ।
तुम जाओ वीरा वैद का नाड़ी री गम नाँय ॥२॥
लच्मी नारायण देवरे बैठ्यो शिशोदिया रो साथ ।
मीराँ नाचे प्रेम से छोडी कुल की लाज ॥३॥

तीव्रता ७०

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री ॥०॥
तडफत-तडफत कळ न परत है, विरह बाण उर लागी री ।
निसदिन पंथ निहारूँ पिव को, पलक न पल भरि लागी री ॥१॥
पीव-पीव मैं रटूँ रातदिन, दूजी सुध बुध भागी री ।
विरह भुजँग मेरो डस्यो है कलेजो, लहर हळाहळ जागी री ॥२॥
मेरी आरति मेटि गोसांई, आय मिलौ मोहि सागी री ।
मीराँ व्याकुल अति उकळाणी, पिया की उमँग अति लागी री ॥३॥

उत्कंठा ७१

थे कहो ने जोशी म्हारे राम मिलण कद होशी ॥०॥
जो जोशी मोहे प्रभु मिले तो, हीरा जडावुँ तेरी पोथी ॥१॥
जो जोशी प्रभु ना मिले तो, जुठी पडे तेरी पोथी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राम मिले सुख होशी ॥३॥

तीव्रता ७२

नातो नाम को जी म्हाँसूँ तनक न तोड्यो जाय ॥०॥

वियोग ७४

किसने देखा कनैया प्यारा मुरली वाला ॥०॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावे ।
खाँदे कामलिया काला ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे ।
कुण्डल झलकत लाला ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
भक्तन के प्रतिपाला ॥३॥

वियोग ७५

कित गयो जादू करके वो पिया ॥०॥
नँद नँदन पिया कपट जो कीनो । निकल गयो छल करके ॥१॥
मोर मुकुट पीताँबर शोभे । कबु ना मिले अंग भरके ॥२॥
मीराँ दासी शरण जो आई । चरन कमल चित धरके ॥३॥

प्रार्थना ७६

थे म्हारी सुध ज्यूं जाणूं ज्यूं लीज्यौ ॥०॥
आप विना मोहि कछु न सुहावै, वेगो ही दरसण दीज्यो ॥१॥
मैं मंदभागण, करम अभागण, ओगण चित मत दीज्यो ॥२॥
विरह लगी पल छिन न लगत है, यों तन यूं ही छीज्यौ ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी देख्यां प्राण पतीज्यौ ॥४॥

तीव्रता ७७

अँखियाँ श्याम मिलन की प्यासी ॥०॥
आप तो जाय द्वारका छाये लोक करत मेरी हाँसी ॥१॥
आँब की डारी कोयल बोले बोलत सबद उदासी ॥२॥
मेरे तो मन में ऐसी आवत है करवत लूँ जाय कासी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की दासी ॥४॥

प्रार्थना ८१

तुम आवोजी प्रीतम मेरे, नित विरहिणि मारग हेरै ॥०॥
दुख मेटण सुख दाइक तुम हौ किरपा करि ल्यौ ने रे ॥१॥
बहुत दिनाँ की जोऊँ मारग अब क्यूँ करो रे अँधेरे ॥२॥
आरत अधिक कहूँ किस आगै आज्यौ मित सवेरे ॥३॥
मीर दासी तुम चरनन की हम तेरे तुम मेरे ॥४॥

व्याकुलता ८२

साजन, म्हारी सेझड़ली कब आवै हो।
हँसि हँसि बात करूँ हिड़दा की तब जिवड़ो जक पावै हो ॥०॥
पाचूँ इंद्री वसि नहिं मोरी घन ज्यूँ धीर धरावै हो।
कठिन विरह की पीड़ गुसाँईं मिलि करि तपत बुझावैं हो ॥१॥
या अरदास सुणो हरि मेरी विरहिणी पलो बिछावै हो।
तलफ तलफ नित करताँ पिय पिय अमी रस अंग न समावै हो ॥२॥
मीराँ लगनि लगी तुझ चरणाँ जग सूँ होई निरदावै हो।
ऐसी बोखद कर हरि हमसूँ विरहिणि विथा गुमावै हो ॥३॥

प्रार्थना ८३

म्हारा ओलगिया, घर आज्यो जी।
सुख दुख खोलि कहूँ अँतर की, बेगा बदन बताज्यो जी ॥०॥
च्यारि पहर च्यारूँ जुग बीत्या, नैणाँ नींद न आवै जी।
पूरण ब्रह्म अखँड अविनासी, तुम। बिन विरह सँतावै जी ॥१॥
नैणाँ नीर आभ ज्यूँ झरणा, ज्यूँ मेघा झड़ लाया जी।
रतवँती इत राम कँत बिन फिरत बदन बिलखाया जी ॥२॥
साधू सजन मिलैं सिर साटै तन मन करूँ बधाई जी।
जन मीराँ नैं मिलो कृपा करि जनमि जनमि मितराई जी ॥३॥

सब सखियाँ तो महेल के व्हार, में अभागण अचला डार ॥६॥
अब तो सखी री जेठ चलत लू ताती लिपात ।
कैसे चलेगो पियू मेरा वाट ।
या छोड़वा की नहीं है भेप, सर पर छूटा लाँवा केश ॥७॥
अब तो सखी री अषाड़ मास घन गरजत घोर ।
रटत विहंग पपैया टूकत मोर ।
सब सखियाँ तो गावे मँगलाचार, राधेजी ऊभा महेल के व्हार ॥८॥
अब तो सखी री सावण बूँदज वरसो मेह ।
हमारा पियाजी तो छाँड्यो खाँच्या नेह ।
अब तो वस्या री द्वारका में जाय, हरि बिन जीवड़ो अकारथ जाय ।९।
अब तो सखी री आयो री भाद्रवो गहर गँभीर ।
चट आये बिदरा उमँग आये मेह ।
चमके दामिनी डरावे जीव, कोई वतावो हमारा पीव ॥१०॥
अब तो सखी री आसोजाँ बूँद वरसत जोय ।
सीप समंदर मोती होय ।
राधेजी पहरया नथ के माँय, म्हाँसी अभागण और न कोय ॥११॥
अब तो सखी री कार्तक में हरि मलणा किया ।
आण मिल्या री हमारा पिया ।
मीराँ ने हरि मिलिया श्याम, उनके चरण मेरा जीवड़ा लोभान ॥१२

अन्तर्व्यथा ८६

श्याम बिन कौन पढ़े मोरी पाती ?
श्याम बिना मेरो घर अँधियारो, दीपक बुग गई बाती ॥०॥
अँसुअन नैनन ज्योति वहाई, कारी-धौरी एक बनाई ।
चिंता चाह लगन सब छूटी, पाथर भई मोरी छाती ॥१॥

सावण आवण कर गया, कर गया कोल अनेक ।
गिणतां गिणतां घिस गई मारी आंगलियां री रेख ।। आपरा. १।।
लांवा पाना आमली जी सांवरा, तीखा पान खजूर ।
जिण पर चढ़ कर देखती थी सांवरा, नीड़ा वसो एक दूर ।।२।।
हाथ चंटियों पग पावड़ी जी सांवरा, घूंघर वाला केश ।
इन गलियन होय नीसरयाजी, कर नटवा को भेप ।।३।।
विरह विथा को क्या कहूँ सजनी, व्याप रियो तन रोग ।
मीरां वाई के प्रभु गिरधर नागर, ये पूरवला संजोग ।।४।।

वारामासी ६०

मोरी नैया पड़ी मझधार पार अब कोन लगावेगो ।।०।।
चार चार महिना लग्यो उनालो गरमी की ऋतु आई ।
आप श्याम विना चँवर कोन ढुलावेगो ।।१।।
चार चार महिना लग्यो चोमासो वर्षा ऋतु आई ।
आप कृष्णाजी विना वंगळा कोन चुनावेगो ।।२।।
चार चार महीना लग्यो सियाळो शरदी की ऋतु आई ।
आप साँवरिया विना दुपट्टा कोन ओढावेगो ।।३।।
मीरां वाई के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ गुण गावेगे ।।४।।

विरहालाप ६१

सखी मोरी कोई तो मिलादो घनश्याम ।
सांवरा री ओंग्यूँ आवे रे कोई तो हरि मिला दो ।।०।।
मोहनी डार मेरो मन हर लीनो
मोहन की प्रीत मोसे सही न जावे री ।।१।।
द्वारका जाय विराज रहे तो पतियाँ वेग न पठावे री ।।२।।
श्यामसुंदर थारी कर कर ओंग्यूँ नैणाँ नीर भर आवे री ।।३।।

तारा तो अंगार भया शूलीसी तो सेज भई।
पिया को पलंग मानो आग ज्यूं जलत है ॥४॥
विरह सों जल रही हिय की सुधि न रही।
मीराँ प्रभु मिलन की आशा से जियत है ॥५॥

तीव्रता ६५

डारि गयो मनमोहन पासी ॥०॥
आबा की डालि कोइल इक बोलै,
मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी ॥१॥
विरह की मारी मैं बन बन डोलूँ,
प्रान तजूँ करवत ल्यूँ कासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥३॥

तीव्रता ६६

पपइया रे पिव की वाणि न बोल।
सुणि पावेली विरहणी रे थारी राळेली पाँख मरोड़ ॥०॥
चाँच कटाऊँ पपइया रे ऊपर कळो र लूण।
पिव मेरा मैं पीव की रे तू पिव कहै स कूण ॥१॥
थारा सबद सुहावणा रे जो पिव मेळा आज।
चाँच मंढाऊँ थारी सोवनी रे तू मेरे सिरताज ॥२॥
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ रे कागा तूँ ले जाय।
जाइ प्रीतमजी सूँ यूँ कहै रे थाँरि विरहण धान न खाय ॥३॥
मीराँ दासी व्याकुळी रे पिव-पिव करत बिहाय।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी तुम बिन रह्यौ न जाय ॥४॥

आऊँ-आऊँ कर गया साँवरा, कर गया कौल अनेक ।
गिणता-गिणता घस गई म्हारी, आँगळियाँ री रेख ॥१॥
मैं बैरागिण आदि की जी, थाँरे म्हारे कदको सनेस ।
बिन पाणी बिन साबुण साँवरा, होय गई धोय सपेद ॥२॥
जोगण होय जंगल सब हेरूँ, तेरा नाम न पाया भेस ।
तेरी सुरत के कारणे म्हें धर लिया भगवाँ भेस ॥३॥
मोर-मुगट पीतांबर सोहै घूँघरवाळा केस ।
मीराँ के प्रभु गिरधर मिलियाँ दूनो बढ़ै सनेस ॥४॥

तीव्रता १००

रे पपइया प्यारे कब को बैर चितारयो ॥०॥
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय-पिय करत पुकारयो ॥१॥
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़ो करवत सारयो ॥२॥
उठि बैठो वा बृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सारयो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित धारयो ॥४॥

अन्तर्व्यथा १०१

लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर ॥०॥
बिपति पड्याँ कोइ निकटि न आवै, सुख में सबको सीर ॥१॥
बाहरि घाव कछू नहिं दीसै, रोम रोम दी पीर ॥२॥
जन मीराँ गिरधर के ऊपर, सदकै करूँ सरीर ॥३॥

ज्ञान १०२

सासरियो सतलोक में पीहरियो साधां मांय ।
अमल गुलाली को चूड़लो पेरयो पियाजी थाँरे राज ॥०॥
हरि बिना रह्यो न जाय, गुरां बिना तरियो न जाय ।
म्हें छूँ री रामरूड़ी ॥१॥

प्रार्थना १०५

गोविन्दा ने आण मिलाज्यो जी ।
सैयां माँरी यतनि अरज पहुंचाज्यो जी ॥०॥
विनति तो कीजो म्हांरी पायन परिके,
सारी सुध जणाज्यो जी ॥१॥
विरह विथा की वेदन कीज्यो मारी,
तन की तपत बुझाज्यो जी ॥२॥
मीराँ हरि हित सुं हिय उमग्यो है,
मारी अरज मत विसराज्यो जी ॥३॥

तीव्रता १०६

पीया कूं बतादे मेरे । तेरा गुण मानूंगी ॥०॥
ऐसा है कोय आण मिलाये । तन मन धन कुरवानूं जी ॥१॥
रक्त रत्ति भर ना रय्यो मैं । पीरी भई जैसे पानूंजी ॥२॥
बिहा मोकूं आन सतावै । कोयल सबद सुहानूंजी ॥३॥
लाल विना व्याकुल भई मीराँ । प्रगट होत नहीं धानूंजी ॥४॥

विरहालाप १०७

पियाजी थे तो प्रेम कटारी मारी ॥०॥
जिनको पीव परदेस बसत है । सो क्यूँ सोवै नारी ॥१॥
मकन मिन नही भावत आँकुस दे दे हारी ॥२॥
जैसे भवंगत तजत कांचरी । सो गत भई है हमारी ॥३॥
विन दरसण कल नाहिं परत है । तुम हम दीये विसारी ॥४॥
मीराँ के प्रभू तुमारे मिलन कूँ चरण कँवल ।पर वारी ॥५॥

प्रतीक्षा १०८

प्रभु आयां रे बीते छ रंग भर रजनी श्रो रंग भर रजनी ॥०॥

नैन सलूने साँई थाँ देख्याँ सूँ जीज्ये हो ।
तन धन जोबन वारि कै नछ़रावल कीज्ये हो ॥१॥
आरत अपनी कारणें वाँके पाँई परीज्ये हो ।
चंदन केरां रूँख ज्यूँ चरणा लपटीज्ये हो ॥२॥
हाथ जोरि विनति करूँ मेरी अरज सुणीज्ये हो ।
मीराँ व्याकुल विरहणी जांकू दरसण दीज्ये हो ॥३॥

जोगनभाव ११२

करूणा सुणो स्याम मेरी । मैं तो होय रही चेरी तेरी ॥०॥
दरसण कारण भई बावरी विरह-विथा तन घेरी ।
तेरे कारण जोगण हूँगी दूँगी नग्र विच फेरी ॥
कुंज सब हेरी-हेरी ॥१॥
अंग भभूत गले मृगछाला यो तन भसम करूँ री ।
अजहुँ न मिल्या राम अविनासी बन-बन बीच फिरूँरी ॥
रोऊँ नित टेरी टेरी ॥२॥
जन मीराँ कूँ गिरधर मिलिया दुख मेटण सुख भेरी ।
रूम रूम साता भइ उर में मिट गई फेरा फेरी ॥
रहूँ चरननि तर चेरी ॥३॥

अंतर्व्यथा ११३

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर-नाजिर कदकी खड़ी॥०॥
साजनियाँ दुसमण होय बैठ्या, सबने लगूँ कड़ी ।
तुम बिन साजन कोई नहिं है, डिगी नाव मेरी समँद अड़ी ॥१॥
दिन नहिं चैन रैण नहिं निंदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी ।
बाण विरह का लाग्या हिये में, भूलूँ न एक घड़ी ॥२॥
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी ।
कहा बोझ मीराँ में कहिये, सौ पर एक धड़ी ॥३॥

किरपा करि मोहि दरसण दीज्यो, बीते दिवस घणां ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, थारो ही नांव भणां ॥५॥

प्रेम-रहस्य ११८

तुम देख्यां विनि कल न परत है, भली ए बुरी कोई लाख कहो जी ॥०॥
नेह को पैंडो बोहोत कठण है,
च्यारि कही दस और कहोजी ॥१॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,
प्रीत करी तौ बोल सहो जी ॥२॥

विरहालाप ११९

दासी म्हांरा मारूड़ा मारूजी से कहना ।
मोय नींद न आवे नैंना ॥०॥
जे मेरा गोविंद दूर बसत है, मोय सँदेशो देना ॥१॥
जे मेरा गोविंद गाली देवे, सनक सनक सुन लेना ॥
जे मेरा गोविंद बैन बजावे, प्रेम मगन होय कहना ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल चित देना ॥४॥

उत्कंठा १२०

दरस बिन दूखन लागे नैन ॥०॥
पिया मिलन की है मन मांही, कल न पड़त दिन रैन ॥१॥
कबहु मिलैंगे प्रीतम प्यारे, अधर धरे मृदु बैन ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिन देखे नहिं चैन ॥३॥

तीव्रता १२१

नींद नहिं आवैरी सारी रात ॥०॥
करवट लेकर सेज टटोलूं (रूँ) पिया नहीं मोरे साथ ॥१॥
सगली रैन मोये तड़फत बीती, सोच सोच जिया जात ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आन भयो परभात ॥३॥

विनय १२६

प्रीत मत तोड़ो गिरधरलाल ॥०॥
नदियां गहरी नाव पुरानी, अध विच में कांई छोड़ो ॥१॥
तुमही साहूकार तुमही बौहोरा, व्याज मूल मत जोड़ो ॥२॥
साँवरिया कै कारणै मैंने बाग लगायो, काची कलियाँ मत तोड़ो ।३।
साँवरिया कै कारणै मैं सेज बिछाई, सूनि सेज मत छोड़ो ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, इमरत में विप मत घोरो ॥५॥

प्रार्थना १२७

वैद बण आयजो स्वामी म्हारा, व्याकुल भयो है सरीर ॥०॥
मोर मुकुट कट काछनी रे वाला, केसर खोर चढायजो ।
शंख चक्र गदा पद्म विराजे, भुज भर अंग लिपटायजो ॥१॥
ज्यां श्री चरणाँ से म्हारो दुख जासी, चरण खोल जल पायजो ॥२॥
दरद दिवानी मीराँ वैद साँवलियो, सूतीनै आण जगायजो ।
मीराँ तो दासी थारी जनम जनम की, चरण कमल चित लायजो ।३।

तीव्रता १२८

मन हमारा बाँध्यो माई । कँवल नैन अपने गुन ॥०॥
तीखण तीर वेध शरीर दूरि गयो माई ।
लाग्यो तब जान्यों नहीं अब न सह्यो जाई ॥१॥
तंत मंत औपद करउ तऊ पीर न जाई ।
है कोऊ उपकार करे, कठिन दर्द री माई ॥२॥
निकट हो तुम दूरि नहीं, वेगि मिलो आई ।
मीराँ गिरधर स्वामी दयाल, तन की तपति बुझाई री माई ॥३॥

प्रेमलगन १२६

मैं थांरे गुण रीझी हो रसिक गोपाल ॥०॥
निस बासर मोय आस तिहारी, दरसन द्यो नंदलाल ॥१॥
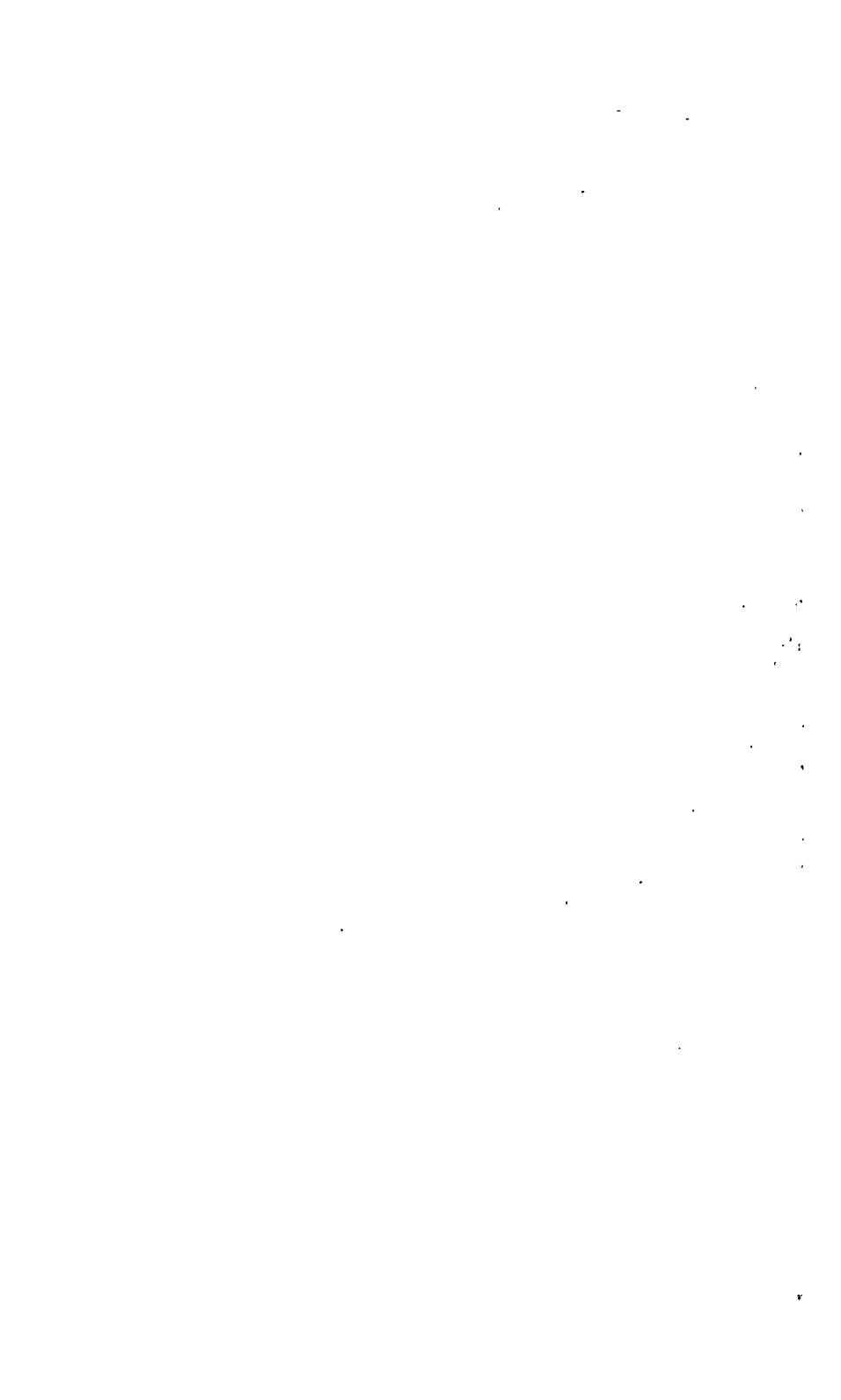
प्रेमलगन १३३

म्हारो मन मोहि लीनों माई हे जसोदा के नन्दन ॥०॥
तनक बाँसुरिया श्रवननि में धुनि परी अधिक दुख दंदन ॥१॥
कछु न रही सुधि बुधि मति सजनी, परी हौं प्रेमरस फंदन ॥२॥
आठ जाम मोहि कल न परत है, ज्यों भुजंग बिन चन्दन ॥३॥
भूली लाज काज सुनि सजनी, पर्यो अधिक रस फंदन ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, करि राखो भुज बंधन ॥५॥

विनय १३४

लाग रही औसेर कान्ह तोरी लाग रही औसेर ॥०॥
दरसण दीजे किरपा कीजे, कहाँ लगाई (एती) बेर ॥१॥
दिन नहिँ चैँन रैन नहिँ निद्रा, विरह विथा लई घेर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो म्हारी टेर ॥३॥

विरहालाप १३५

वै न मिले जिनकी हम दासी ॥०॥
पात पात वृन्दावन ढूंढ्यौ ढूँढि फिरी सगरी मैं कासी ॥१॥
कासी कौ लोग बड़ो बिसवासी मुख मैं राम बगल मैं फांसी ॥२॥
आधी कासी में बांमण बणियाँ आधी कासी बसें संन्यासी ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी हरि चरणां की रहौं मैं दासी ॥४॥

ज्ञान १३६

सखी तेंने नैना गमाय दिया रोय ॥०॥
बालापन की चटक चुँदरिया, दिन दिन मैली होय ॥१॥
बालपने लड़किन सँग खेली, रंग रूप दियो खोय ॥२॥
याही सोच मीराँ भई दिवानी, दरद न जानै कोय ॥३॥
लेनहार लेनकूं आये, लेचल लेचल होय ॥४॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, बैद साँवरिया होय ॥५॥

तीव्रता १४०

ऐसी ऐसी चांदनी में पिया घर नांई ॥०॥
चार पहर दिन सोवत बीत्या, तडपत रैन बिहाई ॥१॥
मैं सूती पिया अपने म्हैल में, सालूडा में आई सरदाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरप निरप गुण गाई ॥३॥

तीव्रता १४१

ओळूंडी लगाई गयो है ब्रज को बासी कब मिलि जासी हे ॥०॥
चंपेलेरी डाल कोयलिया बोलै हे, बोलत वचन उदासी हे ॥१॥
गोकुल ढूँढे वृन्दावन ढूंढ्यो, ढूंढी मथुरा कासी हे ॥२॥
रैणि दिवस मछली ज्यूं तलफां,तलफ तलफ जिवड़ो जासी हे ॥३॥
जै कोई प्रभुजी नै आंण मिलावै, छूटत प्राण बचासी हे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरिजी मिल्यां दुख जासी हे ॥५॥

प्रेमोत्कंठा १४२

ओळूं थारी आवै हो महाराजा अविनासी हे म्हांनै
कब दरस दिखासी ॥०॥
विरह वियोगन वन वन डोलूं, करवत ल्यूँगी कासी ॥१॥
निसदिन ऊभी पंथ निहारूं, कब मोहि धीर बंधासी ॥२॥
कृपा करो म्हारै भवन पधारो, नहिं यो जिवड़ो जासी ॥३॥
मैं मंदभागण काहे को सरजी, पिया मोसूं रहत उदासी ॥४॥
तुम हो हमारे अंतरजामी, मैं (थारा) चरणां री दासी ॥५॥
मीराँ तो कुछ जाणत नांही, पकड़ी टेक निभासी ॥६॥

तीव्रता १४३

तैं दरद नहिं जान्यूं, सुनि रे वैद अनारी ॥०॥
तू जा वैद घर आपणें रे, तुझे खबर मोरी नांहीं ।
मोरे दरद को तू मरम न जाणें, करक कलेजा रै मांहीं ॥१॥

आत्मकथा १४६ (गुज०)

लावो लावो कागळीओ दोत, के लखीए हरी ने रे।
तेमा शीओ हमारो वांक, के नाव्या फरीने रे ॥०॥
वहाला अमृत भोजनीआ आज, जमाड्या अमने रे।
हवे वीखडां घोळी मा पाओ, घटे नही तमने रे ॥१॥
वहाला प्रेम पछेडो आज ओढाढ्यो अमने रे।
हवे दईने पाछो न लीओ, घटे नही तमने रे ॥२॥
व्हाला कुंजगलनमां रास रमाड़्या अमने रे।
हवे तजीने चाल्या मा जाओ, घटे नहीं तमने रे ॥३॥
वहाला भले मळ्या भगवान, के दर्शन दीधां रे।
एम बोल्या मीरांबाई, के प्रेमरस पीधां रे ॥४॥

विरहालाप १४७ (गुज०)

क्यारे मळसे कान्ह, जोशीडा जोश जुवो ने ॥०॥
देह तो वहाला दुरबळ थई छे, जेवा पाकेल पान ॥१॥
सुख तो वहाला सरसव जेटलुं, दुःख तो दरीया समान ॥२॥
सेजलडी वहाला सुनी रे लागे, रजनी युग समान ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ मां ध्यान ॥४॥

रुचिवैचित्र्य १४८

कोण जाणे पराये मनकी, हांरे कोण जाणे पराये मन की ॥०॥
चोर रैन अंधीयारी चहावे, आस करत पर धन की ॥१॥
साधु रैन चांदनी चहावे, टेर करत भजन की रे ॥२॥
हीरा की पारख जवेरी जाने, मोट सहत शीर घन की ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, घर तजी भई मैं वन की रे ॥४॥

साहिब सूं मन माहिलो, दुख टेर सुनाऊँ हो ॥२॥
वा विरियां कब होवसी, कोई कहे सँदेशा हो ।
मीराँ कहे इस बात का मोहिं, खरा अँदेशा हो ॥३॥

प्रेम-व्याधि १५३ (गुज०)

मारे मन वीठल रहो रे वशी मारे मन वीठल रहो रे वशी ॥०॥
कांहांनुडो कालो नाग छे रे, मारे काळजडेरे डशी ॥१॥
ओशडीआं अळगा करो रे, मुने शीदने पाओ छो घशी ॥२॥
ओ पेला दुरीजन लोकडाँ रे, मारी वात न जांणे कशी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तारा चरण कमल ने धशी ॥४॥

प्रेम-व्याधि १५४ (गुज०)

कमलनयन आपने । गुन मन हमारूँ बांध्युँ ॥०॥
मोहनलाल मुख विशाल नयण बाण साध्युँ ॥१॥
तीर तीखा वेध्यु शरीर, माई ।
लागति नही जान्युं, अब न सह्यु जाई ॥२॥
तंत मंत ऊषध करूं तुहि पीर जाई ।
हि कोऊ उपगार कारन कठिन दुर दुमाई ॥३॥
कठिनहि पण दुख नाही बिगि मिलु आई ।
मीराँ प्रभु गिरधर मिलि तन की ताप बुझाई ॥४॥

प्रलाप १५५

नींद तोहि बेचो री आली । जो कोई गाहक होय ॥०॥
पसे सेर जो टके पसेरी, रूपये के मन दोय ॥१॥
आयेरी सजनी फिर गये अंगना, मैं बैरन रही सोय । २॥
सोवत सोवत सब दिन खोये, दियो जमानो खोय ॥३॥
हे निद्रा तू वा घर जा री, रामभक्त ना होय ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राखोंगी नैन समोय ॥५।

सुण सुण री मेरी ब्रगड़ पडोसण, जे कोई श्याम मिलावे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मोहन मोहन भावे।
कदे घर आवे री आवे ॥३॥

तीव्रता   १६२

डार गयो रे गले मोहन फाँसी ॥०॥
ऊँचीसी अटाली पर मेहुँडा वरसत, बूँद लगी जसी तीर की गाँसी।१
आँवुवा की डाली पर कोयल बोलत, बोलत वचन उदासी ॥२॥
आपन ज्याकर द्वारका छाये, म्हारो तो मरनो भयो थारी भई हाँसी।३
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, थे तो मारा ठाकुर मैं तो थारी दासी४

घायल फिरूँ दरश की, पीर जाने नहिं कोई ।
मोहे लागी चोट प्रेम की, जिन लागी जानै सोई ॥३॥
जैसे जल के सोख हुए, मीन क्या जीवैं विचारे ।
कृपा कीजो दरशन दीजो, मीराँ माधो नन्द दुलारे ॥४॥

५—जन=दासी । मारग चितवत=प्रतीक्षा करती हूँ । वदीती =बीत गई । दुतियन सूँ =औरों से । नेह जोरे=प्रेम जोड़ा । दोरे= कष्ट दायक ।

६—आस्याँ=आवेंगी । सामा=सन्मुख । सरैं=पूर्ण होते हैं । घामा=उष्णता, प्रकाश ।

७—ओळूँ=याद । जिवड़ो=प्राण । उकळावै=विकल, बेचैन है । वरण्यूँ न जावै=वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

८—जीवड़ो·········डारूँगी=प्राणों को न्यौछावर कर दूँगी । डार=त्याग दी । वार=वारि, जल ।

९—मीठां बोलां=मधुर बातें करेंगे । कदकी=कभी की । उभी= खड़ी । रहेला=रहेगा । मोय=मुझे । हेला=पुकार । घुंडी=ग्रन्थी, रहस्य । तन······न्यौछावर=सर्व प्रकार से आत्मसमर्पण करती हूँ । तुमरे·········त्याग्या=तुम्हारे विना सब शृँगार-बनाव त्याग दिये । कर·········कपोला=बाट देखती देखती हार गई ।

पाठान्तरः—प्रथम चरण पूर्वार्द्ध—

आवो निसंक संक नहीं कीजे, हिलमिल के रँग बोलां ।
(अन्तिम) मीराँ प्रभु गिरधर बिन देख्याँ, छिन माँसाँ छिन तोलाँ ॥

अधिक चरणः—

श्यामसुन्दर मोहे दरशण दीज्यो, चन्द्रमुखी के ढोला ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, वंशी अधर धरोला ।
साँझ पड़्यां गउवन के पीछे, ठमके पाँव धरोला ॥

१०—आदि······फेरी=निरन्तर तुम्हारे ही नाम की माला हृदय में फेरा करती हूँ । आरति=तीव्रोत्कण्ठा, लगन । बेरी=बेड़ा,

२१—पारधि=व्याध । वेधि·······आय=आकर बींध डालता है। मधुप=भ्रमर। मरम=मर्म। सुभाव=स्वभाव। जैसे······ रंग=जिस प्रकार जल और रंग मिलने पर एक रूप हो जाते हैं।

विशेष:—एक बार प्रभु की अलौकिक रूप-सुधा को चख लेने के पश्चात् उनके विरह में प्रेमी की अन्तःसृष्टि में जो उफान वा विलक्षण छटपटाहट होती है उसके भुक्त भोगी सभी अनन्य प्रेमी भक्त वही अपना स्वानुभव, स्वरचित पद-काव्यादि रचनाओं में करते आये हैं। महाराष्ट्र के संत तुकाराम ने इस पद के दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध के "पानी पीर न जानई ज्यों, मीन तड़फ मरि जाय"-इस भाव को अपने मराठी अभंग में 'जीवना वेगळी मासोळी, तैसा तुका तळ मळी' (अर्थात् जल से पृथक् की गई मछली के समान तुकाराम तड़फ रहा है) इन शब्दों द्वारा दरसाया है इसी प्रकार अपने प्रीतम की रूप-माधुरी का एक बार आस्वादन कर लेने के पश्चात् पुनः उसके लिये तरसती हुई श्री युगल प्रियाजी भी इसी पद के तीसरे चरण के पूर्वार्द्ध के भाव में ही पुकार उठती है—'सीखी कहाँ निठुरता एती, दीपक पीर न लावै। गिरि गिरि मरत पतंग जोति में, ऐसेहु खेल सुहावै।

पद—३५-५० को भी विचारिये।

२२—राती=लाल,। कुलरा न्याती=पारिवारिक स्वजन। यो मन·········समझाती मत्त गजराज के समान मेरा मन बड़ा ही विषयाभिमुख एवं चंचल है परन्तु सद्गुरू का कृपा हस्त अपने सिर पर पाकर, उसी अंकुश द्वारा ही उसे समझा कर ठिकाने लाती हूँ।

पाठान्तर:—

६ वीं पंक्ति में 'हरामी' के स्थान पर 'कुचाली'।

विशेष:—संसार में भगवद् प्राप्ति के जो भी साधन हैं वास्तव में वे सब चित्त के स्थिर करने के ही साधन हैं।'चित्त की स्थिरता' और 'भगवद् साक्षात्कार' ये दोनों एक ही स्थिति के भिन्न शब्द-प्रयोग हैं। श्री पातंजल योग सूत्र के सू० २ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' और सू० ३ 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' में इसका पूरा रहस्य समाया है। सर्वत्र व्यापी परमात्मा को

'अभ्यास और वैराग्य' के साधन को ग्रहण करती है। 'तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यासः' योग सूत्र–समाधिपाद सू० १३ के अनुसार अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये यत्न करना ही अभ्यास है और,—'द्रष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्' समाधिपाद सू० १५ के अनुसार जिसकी भुक्त और योग्य विषयां में वितृष्णा अर्थात् अनासक्ति हो गई उस पुरुष की वासनाओं के वशीकार का नाम 'वैराग्य' है। स्त्री, अन्न, पानादि को विषय कहते हैं। वे सब भुक्त होने के पश्चात भी पुनः पुनः भोग की वासनाओं को उत्पन्न करते हैं। यही दृष्ट विषय वासना है। अनुश्रविक विषय वे हैं जिनका अभी तक भोग नहीं हुआ परन्तु कालान्तर में भोग होने की संभावना है–स्वर्ग सुखादि– उन पर भी तीव्र वासना हुआ करती है। इन सब वासनाओं के वशीभूत न होकर वासनाओं को अपने वशीभूत कर लेने का ही नाम वैराग्य है। सन्त तुकाराम ने अपने एक मराठी अभंग में प्रभु से वर मांगते हुए गाया है:—

'हें चिदान देगा देवा, तुझा विसर न व्हावा।
गुण गाईन आवडीं, हें चि माझी सर्व जोडीं॥
न लगें मुक्ति, धन, सम्पदा, संत संग देईं सदा।
तुका म्हणें गर्भवासीं, सुखें घालावें आम्हांसीं॥

'हे प्रभो, मुझे यही वरदान दो कि तुम्हारा कभी विस्मरण न हो, प्रेम से तुम्हारे गुणगान किया करूँ, धन और संपदादि वैभव मुझे नहीं चाहिये, बस सर्वदा संतों का संग हुआ करे। तुका कहता है कि इतना देकर फिर भले ही सुख से मुझे किसी भी जीव-योनि में जन्म मिले।' अब मीरांबाई की साधना देखिये! तुकाराम के जैसे उसे भी मुक्ति का कोई विशेष मोह नहीं। उसने श्रीकृष्ण ही को जो जन्म-मरण का साथी मान लिया फिर उसे भव-व्याधि का भय ही क्यों! 'थांने नहि विसरूँ दिन राती' का तात्पर्य वह प्रभु का रात्रि दिन में कभी भी विस्मरण नहीं होने देती अर्थात् उसके हृदय में अपने प्रियतम का अखंड स्मरण बना रहता है। 'ऊँचो चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ' से यह भाव व्यक्त होता है कि स्वीकृत भक्ति पथ में क्रम, क्रम से प्रगति करती हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती जा रही है जैसा कि मीरांबाई ने कहा है:—

पाठान्तर:—

म्हारा पुरब जनमरा साथी, थाँसे नहिं भूलौं दिनराती ॥०॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, जाणे तो मकनो हाथी ।
सत गुरू हस्त धर्यो सिर उपर, अंकुश दे दे चलाती ॥३॥
मीरांबाई के साँवरो गिरधर, सुण लीज्यो म्हारी वाती ।
हाथी जोड़ कर म्हें करूँ विनती, भौ भौ की म्हें दासी ॥४॥

अधिक चरण:—

यो संसार हाट को मेलो, सांझ पड़्या उठ जासी ।
घेलो राणाजी मान्यो नहीं रे, अमरापुर ले जाती ॥

२४—गुरू......भागी हो=गुरू प्रताप से भगवदानुभव पाकर दुर्मति नष्ट हो गई। दियना=दीपक। या तन को.........राती हो= प्रेम रूप तेल से भरे इस तन रूप दीपक में मनकी वत्ती वनाकर उसे रात्रि दिन जलाती हूँ। अर्थात् काया, वाचा, मनसा भगवत्प्रेम में निरन्तर लवलीन रहती हूँ। पाटी पारों=केश सँवारूँ। पाटी......वारां हो= ज्ञान के मर्म को और सात्विक भावों को ग्रहण कर उन पर मनन और निदिध्यासन करती हुई अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पण कर देती हूँ।

विशेष:—यह निर्गुणी भाव का पद है। सत्‌गुरू की कृपा से नर जन्म को सार्थक करने के लिये आवश्यक कर्त्तव्य-ज्ञान के उदय होने पर उस पथ पर अग्रसर होने वाले साधक को किस प्रकार अत्यन्त कठिन विरहावस्था का अनुभव करना पड़ता है, इसमें वही भाव प्रदर्शित किये हैं। विरहाग्नि में शरीर का क्षीण होना, मन छीजा करना एवं निद्रा का छूट जाना पद के प्रथम चरण में बताया है। दूसरे में तड़फते हुए मन को ज्ञान द्वारा धैर्य देने और प्रभु को आत्मसमर्पण करने का भाव है। तीसरे में प्रभु के स्वागत में तत्पर साधक दर्शनोत्कंठा की सीमा पर पहुँच जाता है। चौथे में असह्य प्रतीक्षा में निरन्तर आँसू की झड़ी लगी रहने की स्थिति है। पाँचवा चरण अनन्यता का सूचक है एवं छठवें में प्रभु पद की प्राप्ति के लिये प्रार्थना अथवा एक बार अपने प्रियतम में मिलकर सदा के लिये वियोग-व्यथा से मुक्त हो जाने के लिये विरही हृदय की पुकार है।

युगों से पृथक् हुई मीराँ को लाकर प्रभु ने अपने निज धाम में स्थान दिया।

पाठान्तर:—

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरू दिया बताय।
जुगन जुगन से बिछड़ी मीराँ, घर लीन्हों मैं पाय ॥४॥
(लीन्हीं कंठ लगाय)

भावार्थ:—गली तो········कैसे जाय=प्रभु से-प्रियतम से मिलने की तीव्रोत्कंठा होने पर भी बीच में अनेकानेक बाधायें हैं जिनमें ४ प्रधान है। बाधायें क्या हैं, प्रभु के पादपद्मों तक पहुँचने के अथवा मानव जीवन की कृतार्थता के लिये जो ४ प्रकार के साधन प्राप्त होने चाहिये वे सुलभ नहीं हो पा रहे हैं इसलिये बाधायें। सांसारिक मायाजाल और मोहादिक प्रपंच के कारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ४ पुरुपार्थ नहीं सध पाते, ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग में से किसी मार्ग का अवलंबन नहीं हो पाता, विवेक, वैराग्य, षड्सम्पति और मुमुक्षुता ज्ञान के इस साधन चतुष्टय को धारण करने की क्षमता नहीं और प्रेमा-भक्ति के ४ मुख्य अंग—नाम, रूप, लीला व धाम की साधना भी नहीं बन पड़ती, तब प्रभु की प्राप्ति कैसे सम्भव हो और परमार्थ पथ पर किस प्रकार प्रगति हो! इन्हीं भावों को मीरांबाई ने बड़ी ही रहस्यमयी और सरस पद्धति से इस पद में व्यक्त किया है। जीव जाकर हरि से कैसे प्राप्त हो जब कि, (१) बीच की राह निष्कंटक और सरल नहीं (२) प्रियतम का रंगमहल समतल भूमि पर बना हुआ नहीं और न सुगम ही है, (३) मार्ग में स्थान स्थान पर पेहरे और लुटेरों के कारण मार्गाव-रोध का भय है, (४) प्रियतम का स्थान अत्यधिक दूर है। ये चारों बातें प्रतिकूल होने से प्रिय मिलन के कार्य में रुकावट उपस्थित करती हैं। ऊंची नीची········डिग जाय=प्रथम बाधा राह की, जोकि इस प्रकार फिसलने जैसी बनी है कि पैर टिक ही नहीं पाता बड़ी सावधानी से पैर रखने पर भी बार बार खिसकता जाता है अर्थात् लोभ, मोह, तृष्णादि बाह्य सांसारिक प्रलोभन इस प्रकार मायिक और प्रभावशाली हैं कि मन को बार बार चंचल और विचलित कर देते हैं। ऊँचा

के द्वार रुद्ध पाकर व्याकुल होकर वह पुकार उठता है—'गलितो ....जाय'। योग साधन के अभ्यासी को सर्वप्रथम यम-नियम सम्पन्न होना चाहिये। यम-नियम का पालन न करने वाले को त्रिकाल में भी योग की प्राप्ति नहीं हो पाती। सर्वदा व सर्वत्र किसी के भी द्वारा अविच्छिन्न रूप से इनका पालन किये जाने पर ये महाव्रत कहलाते हैं। सभी संप्रदायों में इनका महत्व माना है। यहाँ तक महिमा है कि सम्पूर्ण योग को न साधकर केवल यम-नियम का ही पूर्ण रूप से आचरण किया जाय तव भी मानव-जीवन संसार में महान आदर्शभूत होता हुआ कृतकृत्य हो जाता है। इनके साधन के समय में आने वाली वाधाओं से वचने के लिये उपर्युक्त सू० ३३ और ३४ में वड़ी ही मार्मिक युक्ति वताई है। इन्हीं सव वातों की ओर लक्ष्य करके ही प्रथम चरण में कहा गया है:—उँची नीची........डिग जाय। स्थान्युपनिमन्त्रणे संङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्॥ यो० सू० विभूति० सू० ५१ के अनुसार साधन काल में क्रमशः पांचभौतिक, पंच तन्मात्रिक, पञ्चभाव और तीन गुण सम्वन्धी विषयों का अर्थात् इन चार स्थानां का और वहाँ के देवताओं का साक्षात्कार होता है, इन्हें स्थानियां का उपनिमंत्रण कहते हैं। चाहे किसी का साक्षात्कार हो उस समय उसके संग का आनन्द लेना ठीक नहीं क्योंकि इससे पुनवरि अनिष्ट की सम्भावना होती है। चरम लक्ष्य तक पहुँचने पर्यंत यदि उत्तरोत्तर गुण-वितृष्णा (वैराग्य) होती गई तो कुल वासनाओं के शेष हो जाने से वह विराम-प्रत्यय, निवृत्तिमार्ग कहलाता है-(समाधि-सू० १८) परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका, विषयों के साक्षात्कार में योगी यदि आसक्त हो गया तो 'भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्' (यो० सू० समाधि १६) के अनुसार उसका भव-प्रत्यय अर्थात् संसारासक्ति-कारक प्रवृत्ति मार्ग होता है। इन्हीं सव भावों को लेकर मीरांबाई ने दूसरे चरण में गाया है, उचा नीचा........झकोला खाय।

"व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या विरतिभ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥३०॥"

रोग, चित्त की अकर्मण्यता, सन्देह, असावधानता, जड़ता, विषय वासना, भ्रमदृष्टि, साधन में सिद्धि न होना और चित्त की अस्थिरता—ये सव चित्त को विक्षिप्त करने वाले अन्तराय हैं।

तड़पती है, मेरी भी वही स्थिति हो रही है। महाराष्ट्र के भक्त कवि संत नामदेव के उपरोक्त अभंग में मीराँ जैसी ही भाव तीव्रता की अनुभूति व्यक्त होती है।

मो विरहिन की बात हेली विरहिन होर जानि है।
या तनकूं विरहा लगोरी हेली ज्यूं घुन लागो काठ।
निसदिन खाये जातु है, देखूँ हरि की वाट ॥

(महात्मा चरणदास)

उपर्युक्त चरण के साथ मीराँ के इस पद का (प्रथम चरण-उत्तरार्द्ध) कैसा चमत्कारिक भावसाम्य ही नहीं अपितु शब्द साम्य भी है सो देखने योग्य है।

श्री नारदभक्ति सूत्र में प्रेम रूपा भक्ति का लक्षण नारद मत से यह बताया है कि:—नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुल तेति [नारद भक्ति सूत्र १९]। 'देवर्षि नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ासा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ही भक्ति है।' मीराँ के 'मैं हरिबिन क्यों जीयूंरी माय।' इस सारे पद में यही भाव झलक रहा है। वास्तव में सुंदरातिसुंदर और मधुरातिमधुर उन प्यारे श्यामसुन्दर की अपूर्व प्रभामयी और सुधामयी छटाके अनुपम दर्शन हो जायँ तो फिर संसार में और ऐसी आनंदमयी कौन स्थिति है जो उसका विस्मरण करा सके। जिसने एक वार भी उनकी वाँकी छटा का—उस दिव्य-रूप-सुधा का आस्वादन कर लिया क्या उसका फिर कभी सांसारिक वस्तु में चित्त लग सकता है!

मीराँ के पद २१ और ५०,(इसी विभाग में) को भी विचारिये।

३९—पाठभेद:—टेर-हरिमन वज्र कियो री सजनी।

४१—विशेष:—विरही जनों की सृष्टि सर्वथा न्यारी ही हुआ करती है। प्रियतम के विरह में उन्हें सभी वातें विपरीत हो जाती हैं, यहाँ तक कि शीतल, कोमल और सुधामयी रश्मियों युक्त चन्द्रमा भी उन पर अग्नि वर्षा करता सा उन्हें प्रतीत होता है। साहित्यिक संसार में सुधाकर का बहुत अधिक महत्व है। इस पद की विशेपता यह है कि

४३—जानि·····वाती=बीती बात को—किसी रहस्य को लेकर ही उन्होंने मौन धारण कर रखा है ।

४४–पद पाठान्तरः—

पतियां में कैसे लखुं । लिख्यौ री न जाय ॥०॥
कलम भरत मेरो कर कंपत है । नैन रहै झड़ लाय ॥१॥
बात कहूँ तो कहत न आवे । जीव रयों डर राय ॥२॥
विपत हमारी देख तुम चाले । हरी यो हरिजी सूं जाय ॥३॥
मीराँ के प्रभु सुख के सागर । चरण की कवल रखाय ॥४॥

अन्य पाठान्तरः—

कैसे लिखूँ में सजनी, पतियां लिखी न जाय ॥०॥
कलम भरत मेरो कर कंपत है, शब्द से हिरदो भराय ॥१॥
बात कहुं तो मोरी जिव्हा चलत ना, नैणा से आंसु व्हाय ॥२॥
किस विध सुमरूं ध्यान धरूं में, कंपे मोरी काय ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, ये दुःख ना बिसराय ॥४॥

४५–पिव·····बिहाइ=प्रिय प्रतीक्षा में ज्यों त्यों कर काल व्यतीत करती है ।

विशेषः—इधर मीराँ कौए के साथ पत्रिका भेजती है उधर विद्यापति की गोपी भी अपनी पत्रिका किसी के साथ भेजने को व्याकुल है:—

के पतिआ लए जाएत रे मोरा पियतम पासे
हिय नहिं सहए असह दुख रे भेल साओन मास ॥

४६—तोड़े=तोलता है, जाँचता है । बालूडारी=बालक की । चेजे लागे=चुगने लग जाते हैं । टाँडा=बालध–व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों आदि पशुओं का समूह ।

भावार्थः—संसार के प्राणी दिन भर के परिश्रम के पश्चात् जब रात्रि को सो जाते हैं तब विरहिणी ही एकमात्र प्रिय चिन्तन में बैठी बैठी जगा करती है । इसके अतिरिक्त वैसे तो प्रजा रञ्जन की चिन्ता में राजा, बार बार रोते हुए नन्हें बच्चों को सम्हालने वाली माता, एकान्त

४८—पतीजे=विश्वास करेगा। अंचरो=आँचल, पल्ला। क्या ······दीजे=ऐसी मिथ्या बात में क्या धरा है।

४९—ऊनालो=ग्रीष्म ऋतु। ढोलन की=झलने की। पतियाँ··· सावन की=पत्र पढ़ते समय, उसमें प्रियतम के आगमन के समाचार न पाकर, विरहाग्नि तीव्र हो उठी और नेत्रों से श्रावण की भरी नदियों के समान अश्रु धारा वह रही हैं। सियालो=शीत काल।

भावार्थः—मीरांबाई ने इस पद में पूर्वानुभूत गोपी भाव व्यक्त किया है। बृन्दावन को शीघ्र लौटनें का वचन देकर जब से श्रीकृष्ण मथुरा पधार गये हैं तब से गोप ललनायें उनके विरह में दिन गिन रही हैं। प्रतीक्षा करते करते ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा और तत्पश्चात् शरद आदि ऋतु परंपरा का कोई अन्त नहीं आता है। बीत रही अवधि में जबकि ऋतु विशेष के अनुकूल विविध प्रकार से उनकी सेवा करने के भाव हृदय में उमड़ उमड़ कर आते हैं तब उस परिस्थिति में, उनकी ओर से आई हुई पत्रिका, जिसमें कि उनके पुनरागमन का कोई सन्देश नहीं, गोप सुन्दरी उसे धैर्य पूर्वक पढ़ने का साहस ही कैसे कर सकती है!

५०—कान······होजाई=जैसे घुन खाई हुई वन में पड़ी लकड़ी को अग्नि सहज ही जला डालती है, वैसे ही सुदीर्घावधि से प्रिय विरह में छीज छीज कर अत्यन्त क्षीण हुई काया, प्रभु के दर्शन विना अब तो शीघ्र ही भस्म होना चाहती है। पद–२१ और ३५ को भी विचारिये।

५२—उमावो=उमंग, उत्कंठा। नाभि न·········साँसड़ियाँ= हृदय में श्वास नहीं ठहर पाता। आरत=तीव्र उत्कंठा। आँटड़ियाँ= आँट, उपेक्षा।

५३—पाठभेदः—(टेर) जाओ हरि निरमोहडारे। चरण–१, 'अब······रीत' के स्थान पर 'अब क्यों भये नचीत।'

५६—**विशेषः**—ब्रजभाव के परम रसिक महाकवि सन्त सूरदास भी प्रेमपथ पर चलते हुए यही अनुभव पाकर अपने तड़फते हुए हृदय से गा उठते हैं:—

प्रीति करि काहु सुख न लह्यो ॥०॥
प्रीति पतंग करी दीपक सों। आपै प्राण दह्यो ॥१॥

तो फिर उसे, सूर्यास्त के समय कमल के मूँदे जाने की भी कोई सुधि नहीं रहती। कमल में बन्द हो जाने पर उसमें छिद्र करके बाहर निकलना भी इसलिये वह नहीं चाहता कि कहीं अपने प्रेम पात्र को तनिक भी व्यथा न हो। अन्त में किसी जल विहार करने वाले गजराज के द्वारा नष्ट हो जाता है।

जायसी ने भी यही कह दिया है:—प्रेम-पंथ जो पहुँचे पारा।
बहुरि न मिलै आइ एहि छारा॥

प्रेम-प्राप्ति का मूल्य बताते हुए महात्मा कबीर कहते हैं:—

प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे, सीस देई ले जाय॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं हम नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

वास्तव में इस प्रेम-गली में दो के लिये अवकाश ही नहीं। 'ध्याने ध्याने तद्रूपता' अथवा 'कीट-भृंग' न्याय से अन्त में अपने प्रियतम में मिलकर एकाकार होकर ही प्रेमी की साधना शेष होती है।

प्रेम मार्ग की सूक्ष्मता और दुर्गमता की ओर संकेत करते हुए भक्त कवि बोधाजी ने क्या ही सरस और सारगर्भित विवेचन किया है:—

अति छीन मृनाल के तारहु तें, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई-बेह तें द्वार सँकीन, तहाँ परतीतिं कौ टाँडो लदावनो है॥
कवि 'बोधा' अनी घनीनेज हु तें, चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पै धावनो है॥

देवर्षि नारद रचित 'भक्ति सूत्र' में 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' इस ५१ वें सूत्र से लेकर ५५ वें सूत्र तक 'प्रेम' का जो स्वरूप बताया है वह भी बड़ा ही मननीय है।

५७—करवत=पूर्व काल में काशी में करवत लेने से (करवत द्वारा मस्तक कटवाने से) मुक्ति मिलने की प्राचीन काल से मान्यता चली आती थी।

से मोरा बिहि विघटाओल,

निन्द ओ हेराएल रे ॥ (विद्यापति)

६१—आवड़े=चैन पड़ता। ढँढोरा फेरती=डुग्गी पिटवाती।

विशेषः—प्रियतम के बिना विरहिणी के अन्तस्तल में रह रह कर ऐसी कसक उठा करती है कि उसे किसी भी स्थिति में चैन नहीं पड़ता। न खाना भाता है न नींद ही आती है। निरन्तर प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा में व्याकुल हो झुर झुर कर, रो रोकर जब तन, मन, प्राण और नेत्र क्षीण हो जाते हैं तब उस असह्य अन्तर्व्यथा की परिस्थिति में, प्रीति करके आपत्ति मोल लेने के लिये हृदय में मधुर आत्म-ग्लानि युक्त निराशात्मक भाव हठात् कभी उदय हो जाय तो कोई आश्चर्य जनक नहीं है।

विचारिए:—

सोच फिकर सें भइ मैं बावरीं नैन गमाया साधां जोय जोय।
कहा तो करूँ रे मेरा पियु नहिं पाया, नयन गमाया साधां रोय रोय।

(कबीर)

६२—नाव्या फरीने=फिर से नहीं लौटे। मे'ली=छोड़कर। जई=जाकर।

६४—पातळिया=प्रीतम। वहेला=शीघ्र। जइ ने = जाकर। नाभि ······रचीलारे=कुंडलिनी शक्ति के जागृत होने के बाद प्राण शक्ति जब धीरे धीरे भृकुटी चक्र में जाकर ठहरती है तब नाना प्रकार के विचित्र दृश्य दिखाई देते हैं। सुखमना=सुषुम्ना। एनी=उसकी सुखमना······रासधारी=प्राण शक्ति सुषुम्ना में स्थिर होने के बाद ही हृदय के भीतर परमात्मा का व उनकी दिव्य लीलाओं का अनुभव होता है। घरेणुं=आभूषण। अवर=अन्य। मामेरां पूर्या=माहेरा किया। छाब······आवो रे=सामग्री लेकर शीघ्र पधार गये। साव= शुद्ध। शीवडावुं=सिलाऊँ। विंटाणा छे वरमाळे=वरमालाओं से लिपटे गये। कागळीयानो······न होती रे=उस दिन (उस समय में) कागद, स्याही और लेखिनी आदि लेखन सामग्री दुर्लभ थी। एटलुं= इतना। मधुरी······जागेरे=मधुर मुरली ध्वनि को सुनती हुई श्री राधा

श्री युगल प्रियाजी भी अत्यन्त विरहाकुल होकर इसी स्वर में पुकार उठती है :—

नयननि नींद हिरानी,
व्याकुल व्हे सुध बुध सब भूली, हरी विरह की आग में।
जुगल प्रिया हरि सुध हू न लीन्हीं, कहा लिखी या भाग में ॥

७०—सागी=साक्षात्।

७१—पाठ भेद :—

तुम कहो ने जोशी मोहे राम मिलन कब होशी ॥०॥
(नया चरण)
पिया मिलन बिन झुरी झुरी, दुःख चिता करी शोषी ॥

७२—बाबल=पिता अथवा कहीं ताऊ भी। छीजिया=क्षीण हो गया। करक=हड्डियाँ। गळ आहि=गले में आकर। आँगळियाँरी=अंगुलियों की। मूदड़ी=अँगुठी। साम्हले=सुनेगी। खिण=क्षण। ज्याँ देसाँ=जिस देश में।

भावार्थ:—माँस.........बाँहि=श्यामसुन्दर के आत्यन्तिक विरह में अन्नादि के प्रति सर्वथा अभाव हो जाने के कारण काया ऐसी क्षीण-कंकाल (हड्डियों का ढाँचा) हो गई कि अंगुली में पहनी अंगुठी हाथ में आने लगी। काढ़.........खाय=विरहाग्नि में जलते हुए मेरे कलेजे को, हे काग ! प्रियतम के समक्ष ले जाना और उनको मेरा हृदय बताकर भले ही खा जाना।

विशेष:—इस पद के चरण १ व २ से तुलना करिये:—

पिय कारन पियरी भई हो लोग कहैं तन रोग।
छह छह लांघन मैं कियो रे पिया मिलन के जोग ॥
कबीरा वैद बुलाइया, पकरि कै देखी बाहँ।
वैद न वेदन—जानइ, करक—करेजे माहँ ॥
(कबीर)

७३ भावार्थ:—योग साधन में सुषुम्ना नाड़ी का बहुत अधिक महत्व

धना भक्त भी यही कहते हैं:—'राम बाण वाग्यां होय ते जाणे।'

प्रेम से घायल हृदय घायल की गति को जान तो सकता है, परन्तु न तो वह अपने न अन्य किसी घायल के हृदय की परिस्थिति को समझ सकता है।

पूछा जो मैंने दर्दे मुहब्बत से 'मीर' को।
रख हाथ उसने दिल पै टुक इक रो दिया॥

प्रेम की कसक कोई कहने-सुनने की वस्तु नहीं। 'मूकास्वादनवत्' (नारद भक्ति सूत्र ५२) इसकी स्थिति है।

प्रेम घाव दुख जानन कोई। जेहि लागे जानै पै सोई॥
(जायसी)

उपचार के लिये घायल मीराँ वन वनमें ढूँढती फिरती है पर,

प्रेम वान जेहि लागिया, औषध लगत न ताहि।
सिसकि-सिसकि मरि-मरि जियै, उठै कराहि कराहि॥
(कबीर)

न उसे औषधि ही मिलती है और न कोई ऐसे वैद्य ही प्राप्त होते हैं जो उसका ठीक ठीक उपचार कर सके। भव-व्याधिग्रस्त संसारी जनों के पास प्रेम-व्याधि की औषधि हो ही कैसे सकती है। मीराँ का उपचार तो 'मीराँ की प्रभु पीड़ मिटै जब वैद्य साँवरियो होय' एक मात्र श्यामसुन्दर ही कर सकते हैं। वे ही सच्चे वैद्य हैं। वे ही प्रियतम साक्षात् आकर जब दर्शन दें तभी उसकी व्याधि समूल मिट जाती है।

७६—देख्यां········पतीज्यौ=दर्शन होने पर ही प्राणों को शान्ति होगी।

पाठभेद:—

थे मेरी सुध ज्यूं जाणौं ज्यूं लीज्यौ ॥०॥
बिरह लगी मोय कछु न सुहावे। तन धन यूं ही छीज्यौ ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी। मिल बिछड़ न जिन कीज्यौ ॥४॥

······विचारी=दोनों ओर से जलने वाले दीपक के समान व्याकुल विरहिणी के तन और मन दोनों ही जलते हैं।

८२—पांचूँ······धरावै हों=विरह के कारण पाँचों इन्द्रियाँ मेरे वश में नहीं अर्थात् नेत्र उनकी मधुरी छवी के दर्शन करने, कान उनके कण्ठ और मुरली स्वर को सुनने, जिह्वा उनसे प्रेम वार्ता करने, प्रेम-सुधा पीने और अंग अंग उनके दिव्य स्पर्श को पाने-उनसे लिपटने को अत्यन्तातुर हो रहे हैं परन्तु वर्षा काल में नव जलधर को देख कर वर्षा की आशा के समान ज्यों त्यों धैर्य धारण करते हैं। अरदास=माँग, विनती। तलफ······समावै हो=प्रियतम के बिना तड़पते हुए प्राणों की 'पिया पिया' की पुकार में-उस प्रिय स्मरण में ही एक ऐसा सुधामय-आनन्दयुक्त आस्वाद है कि हृदय में निरन्तर रटन लगी रहने पर भी तृप्ति ही नहीं हो पाती और अधीरता बढ़ती जाती है। निरदायै=निर्द्वन्द विथा=व्यथा। ऐसी······गुमावै हो=हे प्रभो हमें ऐसी औषधि प्रदान करो कि सारी विरह-व्यथा मिट जायँ।

८३—ओलगिया=दूर के प्रवासी। आभ=अभ्र, बादल। णाँ-नीर······लायाजी=बादल में जल के समान नेत्रों में जल भरा हुआ है और वर्षा की झड़ी के समान झरना लग रहा है अर्थात् अहर्निश अश्रुधारा बह रही है। रतवँती········बिलखायाजी=अपने स्वामी की अनुपस्थिति में ज्यों ऋतुमती नारी हृदय-व्यथा के कारण मलिन-मुख-कांति लिये फिरती है।

८४—अलीसुत=भँवरा। जल सुत सूँ=कमल से।

भावार्थ के लिये देखो पद-५६।

८५—अगम=गहन, (विरह के कारण) कठिन। अगण=अगण्य (प्रियतम के बिना दीर्घावधि के बीत जाने से अब दिन वा मास गिनने में कोई रस नहीं)। अगहन=मार्गशीर्ष। शी=शीत। जाड़ो=शीत, ठंड। केसू विशेष=वसंतोत्सव में श्याम उपस्थित हो तभी विशेषता है। लोभान=लुभाता है। ताती=गरम। चलत······लिपात=अत्यन्त गरम लू प्रसर रही है। टूकत=कुहकता है। खाँच्या नेह=प्रेम खींच लिया। अकारथ=व्यर्थ।

९५—पाठभेद:—

विरह दुखारी मैं तो वन वन दोडी ॥
प्राण तजूँगी लूंगी करवत कासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
हरि चरणा की दासी ॥३॥

९७—पेस = समर्पण । वदीती = बीत गई । पंडर = श्वेत ।

पाठान्तर:—(टेर) कह ज्यो म्हारा रमइयाने आज्यो म्हारे देश ॥
अंतिम चरण में—मीराँ के ··· मिलोगे, मटगो मनको कलेश ॥४॥

९८—कुरळहे = कूकते हैं । दूरी जिन मेलै हो = (नदियाँ भी अपने प्रियतम सागर से मिलने दौड़ती हैं तो) मुझे ही दूर मत रखना अर्थात् प्रिय-मिलन से वंचित मत रखना । झेलती = ग्रहण करती है । पाला = हिम । फागाँ = होली के गीत । बणराय = वृक्ष, लकड़ी । ऊपजी = तीव्र उत्कंठा) जगी । फूलवै = प्रफुल्लित होते हैं । काग ····· गया = शकुन के लिये काग उड़ाते उड़ाते दिन बीत गये ।

९९—होय ········ सपेद = (विरह में) अंग कान्ति फीकी पड़ गई ।

१००—कब को ········ चितारयो = किस वैर का बदला लिया । दाध्या = जले हुए । लूण = लवण ।

१०१—लागी ········ जाणै = जिसे लगी है वही जानता है । सीर = साझा, भाग । सदकै = समर्पण ।

विशेष:—इस पद में कहीं कहीं पंजाबी भाषा का प्रभाव दीख पड़ता है ।

१०२—गुलाली को चूड़लो = (कृष्ण) अनुराग की चूड़ी, प्रेम कंकण । सांचरया = विचरने निकले । सामां = सन्मुख । हळ ········ मेळ = (आशा भरा सन्देश पाकर) चहूँ ओर उमंग भरा वातावरण होगया, तन-मन में प्रसन्नता की लहरें उठ रही हैं । म्हांने ····· वलमाय = (और सब चले गये पर) अपनी हंस गति के कारण विलम्ब हो गया, मेरे मानस हंस ने मुझे (प्रियतम के रहस्यमय सन्देशानुसार प्रियानुसन्धान के लिये प्रेरणा करा कर) विलमा दिया, (प्रियतम की ओर से सन्देश

मीराँ दासी जनम जनम की हरजी से आन पड़ी ।
दे दर्शन मेरा प्राण बचाओ धन हो मेवाड़ा ठाकुर आज का घड़ी ॥४॥

११४—प्रोईने = परोवीने, पोकर, लगाकर ।

११५—सीस········न्यारा = शरीर के कर्मों में विसंगतता आ गई, देह वश में नहीं ।

११६—वंध्या=वँधा है । संध्या = सन्धा है । अजासूत········संध्या = ज्यों व्याघ्रों के वीच में वँधे हुए अजासुत अर्थात् वकरे की अथवा स्वाति विन्दु के विना, प्राणों पर शर सन्धानवत् पपीहे की जो स्थिति होती है वैसी प्रियतम के विना विरहणी की । भई········पान रे हरदी = प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा में निराश होकर विरहिणी पीले सूखे पत्ते के समान अथवा हल्दीवत् फीकी-कान्ति हीन हो गई । पैंडो=मार्ग ।

११८ च्यारि········कहोजी = चार (वातें) सुनादी तो दस और सुनाओ ।

११६-मारूडा-मारूजी = प्रियतम पति । सनक सनक = शान्ति पूर्वक भीतर समाते हुए । वैन = वेणु ।

१२१—करवट = एक ओर से दूसरी ओर मुड़ कर लेटना । आन········परभात = (आये तव) प्रभात हो गया ।

१२३—विशेष:—श्री कृष्णचन्द्र भगवान् के व्रज-त्याग के पश्चात् उनके विरह में चराचर सृष्टि के तड़पने का इस पद में वड़ा ही करुण वर्णन है ।

१२४—खुमार = (प्रेम का नशा) । अमल········मोकूँ = विना नशा किये ही नशा चढ़ गया । इचरज = आश्चर्य । या तनकी········तार = इस देह रूपी वीणा में नाड़ियों के तार वाँध कर उसे वजाऊँ (प्रियतम को रिझाने के लिये) । समझ वूझ········रिझवार = विचार पूर्वक किये गये किसी भी उपाय से प्यारे मिल जायँ तभी रिझने वाले (प्रियतम) वास्तव में रिझ गये ऐसा जाना जायगा ।

१२५—प्यारी = प्रियाजी, श्रीराधिकाजी । मांझल = मध्य । गात = अंग । मींडत = मलकर, मींजते हुए ।

१२६—वोहोरा = ऋणदाता ।

"तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्" (योगसूत्र समाधि सू० २) के अनुसार द्रष्टा अपनी स्वरूप-स्थिति-आनन्द स्वरूप को प्राप्त होता है।

१५६—बोलात·········पास=विरहावस्था में कोयल का कुहुकना भी गलफाँस के जैसे प्रतीत होता है। जीवन=जल-स्वाति बिन्दु। कुरनां=टिटिहरी के, कुररी के। ईंडा=अण्डे। मेले=रखती है। जैसे·········पास=जिस प्रकार पिव पिव बोलने वाले चातक को स्वाति जलबिन्दु के लिये प्यास लगी रहती है, और ऊँचे उड़ती हुई टिटहरी का मन ज्यों सागर तट पर रक्खे हुए अण्डों में लगा रहता है विरहिणी मीराँ कहती है कि त्यों मेरा तन मन एक मात्र प्रियतम श्यामसुन्दर में ही लगा रहता है।

१६०—अलप तलप=स्मृति में तरस तरस कर। बार·········भावे=प्रति दिन विविध रसोई बना करती है पर अन्न पर तनिक भी रुचि नहीं रहती है। सेज·········आवे=प्रियतम श्यामसुन्दर के बिना सूनी शय्या पर नेत्रों में निद्रा नहीं आती है।

१६१—वगड़ पड़ोसण=निकट की पड़ोसिन। कदे=कब।

प्रथम चरण पर विचारिये:—

सून सेज हिय सालिए रे,
पिया बिनु घर मोयँ आजि॥
(विद्यापति)

१६२—मेहुँडा=मेह, वर्षा। बूँद·········गाँसी=विरह के कारण वर्षा की बूँदें तीर की धार ज्यूँ प्रतीत होती है।

से गिरधर की प्रतिमा लेने की हठ, विवाह के अस्वीकार करने पर माता द्वारा किये गये ममता भरे आग्रह का बड़ी ही समझ एवं ज्ञान की बातों द्वारा नम्र विरोध, सुसराल जाते समय अपने गिरधरगोपाल को भी साथ ले जाने का आग्रह, सुसराल में कुलदेवी पूजन का विरोध, नणंद के उपालम्भ, उलाहनों एवं व्यंग वचनों पर उसकी निर्भीक-स्पष्टोक्ति इत्यादि सामान्य प्रसंगों के अतिरिक्त उसके जीवन का सबसे अधिक संघर्ष का प्रसंग राणा विक्रमादित्य के साथ का था। विक्रमादित्य, राणा संग्रामसिंह का छोटा कुँवर और उदयसिंह (जिसके विश्व प्रसिद्ध राणा प्रताप हुये) का बड़ा भाई था, दोनों ही हाड़ी राणी कमवती के पुत्र थे। मीराँ के पदों में यत्र-तत्र किये गये 'राणा' नाम के प्रयोग पर आज भी बहुत अधिक लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि मीराँ ने अपने पति राणा का विरोध किया था और उसके पति राणा ने ही मीराँ को विषादि द्वारा मारने का प्रयत्न किया था परन्तु वास्तव में यह बात नहीं। यह तो इतिहास प्रसिद्ध है कि मीराँ के पति भोजराज महाराणा संग्राम सिंह के ज्येष्ठ पुत्र और युवराज थे। पिता के पश्चात् उन्हीं का पद 'महाराणा' का और मीरांबाई का 'महाराणी' का था परन्तु पिता के पूर्व कुमारावस्था में ही भोजराज परलोकवासी हो गये। वे राजगद्दी पर तो आये ही नहीं और 'राणा' यह पद तो राजसिंहासनारूढ़ होने वाले को ही प्राप्त होता है। भोजराज के पश्चात् उनसे छोटा कुँवर रत्नसिंह गद्दी पर आया पर ४ वर्ष तक ही वह राज्य कर पाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुंवर विक्रमादित्य 'राणा' बना। इसी राणा विक्रमादित्य ने

अवसर की ताक में रहती थी वह विक्रमादित्य के राणा बनने के पश्चात् उस दुर्लभ अवसर के प्राप्त होने पर भला उसे कैसे खोती! वह राणा को बहका कर उससे बराबर अपना मन चाहा करवा कर छोड़ती थी। किन्तु मीरांबाई पर किये गये विष-प्रयोग के प्रसङ्ग पर प्रभु भक्ति के आश्चर्यजनक प्रभाव से वह अपने किसी पूर्व पुण्य के संस्कार से पश्चात्ताप पूर्वक जब तक अपनी भाभी की शरण में नहीं गई तब तक उसकी यही करतूतें निरन्तर जारी रहीं।

इस विभाग के संवादयुक्त पदों पर विचार करने पर नणंद भाभी की उक्त परिस्थिति सम्यक् रूप से समझ में आ जाती है। इससे भली भाँति यह सिद्ध हो जाता है कि मीराँजी के जीवन में जो राणा व उसके परस्पर में विरोध का अत्यन्त कटु प्रसंग उपस्थित हुआ जिसके कारण मीरांबाई को मेवाड़ छोड़ना पड़ा उसका मूल कारण राणा विक्रमादित्य के अविचार, मन की चंचलता, ना समझी, अदूरदर्शिता और कुसंगति इत्यादि अवगुण ही थे न कि मीरांबाई का धर्म के विपरीत आचरण अथवा लोक मर्यादा का त्याग।

यह बड़े ही दुःख का विषय है कि इसी भ्रम के कारण कुछ लोगों में तथा तब से लेकर वर्तमान युग के राजकुल प्रधान पुरुषों में भी मीराँ जी के प्रति गहरी उदासीनता, मूकरोष और उस समस्त विश्व की अमर विभूति के प्रति अपने परमावश्यक कर्त्तव्य की ओर उपेक्षा एवं निष्कर्मण्यता के भाव रहते आये हैं। परन्तु उपर्युक्त वस्तु-स्थिति निदर्शन को विचार पूर्वक समझ लेने के पश्चात् तो अवश्य ही उक्त भ्रम का निराकरण हो जाना चाहिये।

संघर्ष के मूल में जिस पक्ष में न्याय, धर्म, लोकहितकारिणी भावना एवं महान् पवित्र उद्देश्य हो वही पुण्यमय सत्याग्रह "यतो धर्मस्ततोजयः" इस न्याय से अन्त में सफल होकर ही रहता है।

संघर्ष के २ प्रकार हैं:—हिंसामय और अहिंसामय। जिसमें शारीरिक शक्ति, सत्ता, मनुष्य और शस्त्रबल से प्रतिगामी तत्वों से जूझना होता है वह हिंसामय और जिसमें बुद्धि, युक्ति, दृढ़ता विवेक, आत्मबल, त्याग, संयम और शांति आदि सात्विक गुणों का अवलम्ब लेकर अन्याय पक्ष के सन्मुख अडिग रह कर जो सत्याग्रह किया जाता है वह अहिंसामय संघर्ष है।

साधु-संत, त्यागी-विरागी, यती-सती, योगी-मुनि, सिद्ध-महात्मा, ज्ञानी-विवेकी, भक्त-तपस्वी एवं आत्मोन्नति के इच्छुक श्रद्धावान् व मुमुक्षु साधकों के लिए तो प्रलोभक एवं बाधक तत्वों के प्रतिकार के लिये आवश्यकता पड़ने पर अहिंसामय सत्याग्रह का प्रयोग ही एक मात्र हितकर एवं प्रशस्त साधन है।

मीरांबाई ने भी यही सत्याग्रह किया। अपने सिद्धान्तों की रक्षा करती हुई राणा की महान्—सत्ता के सन्मुख वह अकेली अबला अटल रही और अन्त में विजयिनी हुई, यही नहीं अपनी अनन्य श्रद्धा और प्रेम-भक्ति के प्रभाव के कारण विश्व के समस्त साधु-जगत में वंद्य और शिरोमणि सिद्ध हुई।

पौराणिक काल से लेकर वर्तमान युग पर्यंत के संत-महात्मा एवं मनस्वियों के जीवन-चरित्रों का अवलोकन करने पर भली-भाँति विदित हो जाता है कि अपने लक्ष्य के अवरोधक प्रबल तत्वों की उपेक्षा करते हुये अथवा परम दृढ़ता पूर्वक सत्याग्रह से

कलियुग में भी भक्त प्रहलाद का स्मरण दिलाने वाली सन्त मीरांबाई, गुरु गोविन्दसिंह के दोनों पुत्र, वीर हकीकतराय आदि ऐसे अनेकों महापुरुष हो गये जिन्होंने अपने प्राणों की चिन्ता न करके अपने प्रण अथवा सत्याग्रह को अन्त तक धैर्य पूवक निभाते हुए अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

सन्त महात्माओं के वचन भी जीवन में उपर्युक्त विषम परिस्थिति के प्राप्त होने पर इसी प्रकार अपने वास्तविक कर्त्तव्य की ओर निर्देश करते हैं, जैसेः—

"जाके प्रिय न राम वैदेही,
सो त्यागिए कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
गुरू बलि तज्यो, कंत ब्रज वनितन, भये सब मङ्गलकारी॥
—गो० तुलसीदास

नारायण नुं नामज लेतां वारे तेने तजिए रे।
घर तजिए ने कुटुंब तजिए तजिए मा ने बाप रे॥
आदि आदि —नरसिंह मेहता

आर्य चाणक्य भी अपनी नीति में यही कहते हैं:—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्॥

कुल के हित के लिये अपना हित छोड़ दे, कुल का हित ग्राम के हित के लिये छोड़ दे, ग्राम का हित देश के हित के लिये छोड़ दे, किन्तु आत्मा के हित के लिये तो सारी पृथ्वी ही छोड़ दे। अस्तु।

अपने जीवन संबन्धी प्रसंगों को लेकर मीरांबाई ने जो भी पद बनाये वे सब इस 'स्वजीवन' विभाग में दिये गये हैं।

४१, ४२, ४८, ५०, ५५, ७३ में भगवान गिरधर गोपाल के ही उसके पति होने का वर्णन उल्लेख है।

व्यर्थ लोक निन्दा कोई भगवद्-मार्ग में बाधक नहीं अपितु साधक के लिये जीवन कसौटी है और किस प्रकार जीवन कसौटी है और किस प्रकार वह शुद्ध स्वर्ण की भाँति भक्त को अधिकाधिक उज्ज्वल बनाती है, यह भाव पद ६४ और ७१ से प्रकट होता है।

पद सं० ११, १३, १७, ३६, ४७ और ७५ ये ६ ज्ञान के पद हैं। जिन पर भावार्थ में प्रकाश डाला गया है।

पद ५१ एवं ५२ में मीरांबाई की दासी मिथुला का उल्लेख है। शेष पदों में अधिकतर राणा द्वारा मीरांबाई पर किये गये अत्याचार-विष, साँप एवं शूली की सेज का भेजा जाना, राणा खड्ग से स्वयं मीरांबाई का वध करने का प्रयत्न करना, किस प्रकार विवश होकर मीरांबाई का मेवाड़ त्याग करना, भक्ति के प्रभाव से किस प्रकार एक की अनेक मीराँ हो जाना और उपर्युक्त सङ्कटों में से उसकी प्रभु द्वारा रक्षा होकर सत्य के प्रभाव से किस कार अधिक देदीप्यमान दिखाई देना तथा राणा के रूठने पर केवल मेवाड़ राज्य से ही निर्वासित होने का परन्तु प्रभु के रूठने पर त्रिलोक में भी कहीं ठौर न होने का निर्भयता पूर्वक स्पष्ट रूप से राणा को उत्तर देना इत्यादि इत्यादि प्रसंग एवं भावों का वर्णन है।

इस विभाग के पदों में मीराँ के जीवन सम्बन्धित व्यक्ति, स्थान परिस्थिति ेचक नामोल्लेख इस प्रकार है:—

यही उसका ध्येय है। इसी लक्ष्य प्राप्ति की साधना में,–(७) 'शील सन्तोष सिणगार' व ओढ़ी चूनर प्रेम की।।' यही शृङ्गार उसे स्वीकार है। (९) साधू माता पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी।। उसका परिवार है, यही नहीं वह तो-(९) संता हाथ विकानी।। इसी कारण सांसारिक सम्बन्ध उसे–(५) नातो सागो परिवारो सारो, मन लगे मानो काल।। जैसे प्रतीत होते हैं।

(१८) उसके हिरदे लिख्यो हरिनाम। जो उसके—सतगुरु दियो बताय।। उसने–(२७) पिया पियाला नाम का, और न रंग सोहाय। क्योंकि–काचो रंग उड़ जाय।।

इसी नाम के प्रभाव से वह (१८) राती माती प्रेम की, रहती है। उसके स्वीकृत पथ से किसी स्वार्थ अथवा किसी के तनिक भी अहित की कदापि संभावना नहीं–(२) चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज।

वह सांसारिक वैभव को त्याग देती है–(७) राजपाट भोगो तुम्हीं हमें न तासूं काम। (२) राज करे वाँने करणे दीज्यो, मैं भगतांरी दास।

वह बाधक तत्त्वों को ठुकरा देती है–(३०) लोक लाज कुल काण जगत की, दई बहाय जस पाणी। (६४) निन्दा म्हांरी भलाई करो नै, सोनैं काट न लागै। (२) पुन्न के मारग चालतां, झख मारो संसार।

राणा को भी वह निर्भिक उत्तर सुना देती है–(३३) सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी। (७३) राणाजी कोण विचारो। एवं (७३) थाँरी मारी ना मरूँ, म्हारो राखण वालो और।।

लाजै पीहर सासरो, माई तणो मोसाल ।
सबही लाजै मेड़तियाजी, थासूँ बुरा ॥
चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज ।
पुन्न के मारग चालतां, झख मारो संसार ॥६॥
नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पियाजी री साथ ।
मीराँ ने गोविन्द मिल्या जी, गुरू मिलिया रैदास ॥७॥

माँ-बेटी ३

तू मत बरजे माइड़ी, साधां दरसण जाती ।
राम नाम हिरदे बसे, माहिले मन माती ॥
माता:—माई कहै सुन धीहड़ी, कहै गुण फूली ।
लोक सोवै सुख नींदड़ी, थूँ क्यूँ रैणज भूली ॥०॥
मीराँ:—गेली दुनियाँ बावली, ज्याँकूँ राम न भावै ।
ज्याँके हिरदे हरि बसे, त्याँ कूँ नींद न आवे ॥१॥
चौबास्याँ की बावड़ी, ज्याँ कूँ नीर न पीजे ।
हरि नाले अमृत झरे, ज्याँ की आस करीजे ॥२॥
रूप सुरङ्गा रामजी, मुख निरखत लीजे ।
मीराँ व्याकुल बिरहिणी, अपणी कर लीजे ॥३॥

माँ-बेटी ४

माई म्हाँने सुपने में, परण गया जगदीश ।
सोती को सुपने आवीयाजी, सुपनो बिस्वाबीस ॥०॥
माता:—गैली दीखे मीराँ बावली, सुपनो आल जंजाल ।
मीराँ:—माई म्हाने सुपने में, परण गया गोपाल ॥१॥
राती पीली चुनड़ी ओढ़ी, मेंहदी हाथ रसाल ।

छापा तिलक गल हार उतारो, पहिरो हार हजारी ॥१॥
रतन जड़ित पहिरो आभूषण भोगो भोग अपारी ।
मीराँजी थे चलो महल में थाने सोगन म्हारी ॥२॥
भाव भगत भूषण तजे शील सन्तोष सिणगार ।
ओढ़ी चूनर प्रेम की, गिरधरजी भरतार ॥३॥
उदां बाई मन समझ, जावो अपणे धाम ।
राजपाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूं काम ॥४॥

नणंद-भाभी ८

थाँने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी ॥०॥
राणे रोस कियो थाँ ऊपर, साधों में मत जारी ।
कुल को दाग लगै छै भाभी, निंदा हो रही भारी ॥१॥
साधां रे सँग बन बन भटको, लाज गमाई सारी ।
बड़ा घरा थे जनम लियो छै, नाचो दे दे तारी ॥२॥
बर पायो हिंदवाणे सूरज, थे कांई मन धारी ।
मीराँ गिरधर साध सँग तज, चलो हमारी लारी ॥३॥

नणंद-भाभी ९

मीराँ बात नहीं जग छानी,
उदा बाई समझो सुघर सयानी ॥०॥
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी ।
सन्त चरण की सरण रैन दिन, सत्य कहत हूँ बानी ॥१॥
राणा ने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, संतां हाथ बिकानी ॥२॥

भक्ति-चमत्कार १०

विष अमृत कर डारो मेड़तणी ।
काठ की कंठी छोड़ दो मीराँ पहिरो मोतीड़ारो हारो ।
साधां री संगत छोड़ दो मीराँ आधो राज तुम्हारो ॥१॥

कर सुमरन बाई मीराँ फेरन लागी, होगयो महल उजासी ॥२॥
ना जाउँ पीहर सासरेजी, जाय बसूँगी में काशी ।
इन राणाजी को मुख नहीं देखूँ, सीसोद्या पसताशी ॥३॥
मीराँ दासी रावळीजी, श्याम बड़ा विश्वासी ।
मीराँ ने गिरधर मिलिया, कट गई जम की फाँसी ॥४॥

ज्ञान १३ (गुज०)

राम रमकडुं जडियुं रे, राणाजी, मने राम रमकडुं जडियुं ॥०॥
रुमझुम करतुं मारे मंदिरे पधार्युं,
नहि कोइने हाथे चडियुं रे ॥१॥
मोटा मोटा मुनिजन मथी मथी थाक्या,
कोइ एक विरला ने हाथे चडियुं रे ॥२॥
सुन शिखर ना रे घाटथी उपर,
अगम अगोचर नाम पडियुं रे ॥३॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
मारूं मन शामळियाशुं जडियुं रे ॥४॥

स्वजन-विरोध १४ (गुज०)

जेने मारा प्रभुजी नी भक्ति ना भावे रे,
तेने घेर शीद जईए ।
जेने घेर संत पाहुणो ना आवे रे,
तेने घेर शीद जइए ॥०॥
ससरो अमारो अग्निनो भडको, सासु सदानी सूळी रे
एनी प्रत्ये मारूं कांई ना चाले रे, एने आंगणीए नाखुं पूळी रे ॥१॥
जेठाणी अमारी भमरा नुं जाळुं, देराणी तो दिलमां दाजी रे ।
नानी नणंद तो मों मचकोडे, ते भायगे अमारे कर्मे पाजी रे ॥२॥

ज्ञान १७

गगन मंडल म्हारो सासरो ॥०॥
ब्रह्माजी म्हारे विष्णुजी दादा
आज म्हें तो जन्म से पाइ है म्हारी मांय ॥१॥
महादेवजी काका सब विधि बांका,
आज म्हाने दरसन की अभिलाशा हे म्हारी मांय ॥२॥
सनकादिक भाई, कमी काहे की नाहीं,
आज म्हाने ज्ञान की चूनड ओढ़ाई म्हारी मांय ॥३॥
नामदेव कबीर दोनो बड ज्ञानी,
आज म्हाने बृहस्पति चँवरी रचाई हे म्हारी मांय ॥४॥
करमा तो फूलां मंगल गावे,
आज वो तो सबरी सेवरो गुंथ लाई हे म्हारी मांय ॥५॥
आनन्द मंगल गावे सदा सुख पावे,
मीरांबाई परण पधारयां हे म्हारी मांय ॥६॥

राणा विरोध १८

अब नहिं बिसरूँ, म्हाँरे हिरदे लिख्यो हरि नाम ।
म्हाँ रे सतगुरू दियो बताय, अब नहिं बिसरूँ रे ॥०॥
मीराँ बैठी महल में रे, ऊठत बैठत राम ।
सेवा करस्याँ साध की, म्हाँरे और न दूजो काम ॥१॥
राणाजी बतलाइया, कइ देणो जवाब ।
पण लागो हरिनाम सूँ, म्हाँरे दिन दिन दूनो लाभ ॥२॥
सीप भरयो पाणी पिवे रे, टाँक भरयो अन्न खाय ।
बतलायाँ बोली नहीं रे, राणोजी गया रिसाय ॥३॥

अनड़ धणी को सरणो लीनो, हाथ सुमिरनी धारी।
जोग लियो जब क्या दिलगीरी, गुरू पाया निज भारी ॥२॥
साधू संगत महँ दिल राजी, भई कुटुँब सूँ न्यारी।
क्रोड़ बार समझावो मोकूँ, चालूँगी बुद्ध हमारी ॥३॥
रतन जड़ित की टोपी सिर पै, हार कंठ को भारी।
चरण घूँघरू घमस पड़त है, म्हें कराँ स्याम सूँ यारी ॥४॥
लाज सरम सबही मैं डारी, यौ तन चरण अधारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, झक मारो संसारी ॥५॥

प्रवास २०

इण सखरियाँ री पाळ मीरांबाई साँपड़े ॥०॥
साँपड़ किया असनान सूरज सामी जप करे।
होय विरंगी नार डगराँ बिच क्यूँ खड़ी ॥१॥
काँई थारो पीहर दूर घराँ सासू लड़ी।
चल्यो जा रे असल गुँवार तनै मेरी के पड़ी ॥२॥
गुरू म्हारा दीनदयाल हीराँ रा पारखी।
दियो म्हाने ग्यान बताय, संगत कर साधरी ॥३॥
इण सखरिया रा हंस, सुरँग थारी पाँखड़ी।
राम मिलन कद होय फड़ोके म्हाँरी आँख री ॥४॥
राम गये बनवास को, सब रँग ले गये।
ले गये म्हाँरी काया को सिंगार, तुलसी की माला दे गये ॥५॥
खोई कुळ की लाज मुकुंद थाँरे कारणे।
बेग ही लीज्यो सम्हाल मीराँ पड़ी बारणे ॥६॥

निश्चय २१

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची रे ॥०॥
मैं तो मेरे नारायण की आपही हो गई दासी रे ॥१॥

बाई ऊदाँ चढ़ चौवारा झाँक,
साधाँ को मण्डल लागो सुहावणो ॥४॥
भाभी मीराँ लाजे गढ़ चीतौड़,
राणोजी लाजै गढ़ रा राजवी ।
बाई ऊदाँ तारचो तारचो चीतौड़,
राणाजी तारचा गढ़ का राजवी ॥५॥
भाभी मीराँ लाजे लाजे थारा मायड़ बाप,
पीहर लाजे जी थारो मेड़तो ।
बाई ऊदाँ तारचा म्हे तो मायड़ बाप,
पीहर तारचो जी मेड़तो ॥६॥
भाभी मीराँ राणाजी कियो छै थांपर कोप,
रतन कचोले विष घोलियो ।
बाई ऊदाँ घोल्यो तो घोळण द्यो,
कर चरणामृत वाही म्हे पीवस्याँ ॥७॥
भाभी मीराँ देखतड़ां ही मर जाय,
यो विष कहिये बासक नाग को ।
बाई ऊदाँ नहीं म्हारे माय न बाप,
अमर डाली धरती झेलिया ॥८॥
भाभी मीराँ राणाजी उभा छे थारे द्वार,
पोथी मांगे छे थाँरा ज्ञान की ।
बाई ऊदाँ पोथी म्हारी खांडा की धार,
ज्ञान निभावन राणो है नहीं ॥९॥
भाभी मीराँ राणाजी रो वचन न लोप,
उन रूठयां भीड़ी कोउ नहीं ।

खंभ फाड़ हिरनाकुश मारयो, नरसिंह रूप धरैया ॥१॥
विप्र सुदामा कबसे मित्र, इक चटसार पढ़ैया ।
मुट्ठी तीन तन्दुल की खाकर, तीन लोक बकसैया ॥२॥
खेलत गेंद घिरी यमुना में, वा में कूद पड़ैया ।
पैठ पताल काली नाग नाथ्यो, फण पर निरत करैया ॥३॥
राणाजी विष रा प्याला भेज्या, मीराँजी के तैंयां ।
कर चरणामृत मीराँ पीगई, हो गई चन्द्रकलैया ॥४॥
बनी बनी के सब कोई साथी, तात मात सुत भैया ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित दैया ॥५॥

अनन्य-प्रेम २७

यो तो रँग धत्ताँ लग्यो ए माय ॥०॥
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई घूम घुमाय ।
यो तो अमल म्हारो कबहु न उतरे, कोटि करो न उपाय ॥१॥
साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार ।
हँस-हँस मीराँ कंठ लगावे, यो तो म्हारो नौसरहार ॥२॥
विष को प्यालो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय ।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविंद रा गाय ॥३॥
पिया प्याला नाम का रे, और न रँग सोहाय ।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रँग उड़ जाय ॥४॥

राणा-मीराँ २८

राणा जी थे क्याँने राखो म्हाँसूँ वैर ॥०॥
थे तो राणाजी म्हाँने इसड़ा लागो, ज्यों ब्रच्छन में कैर ॥१॥
महल अटारी हम सब त्याग्या, त्याग्यो थाँरो बसनो सहर ॥२॥
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवीं चादर पहर ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरत कर दियो जहर ॥४॥

निश्चय ३१

राम तने रँग राची, राणा मैं तो साँवलिया रँग राची, रे ॥०॥
ताल पखावज मिरदँग बाजा, साधों आगे नाची, रे ॥१॥
कोई कहे मीराँ भई बावरी, कोई कहे मदमाती, रे ॥२॥
विष का प्याला राणा भेज्या, अमृत कर आरोगी, रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम की दासी, रे ॥४॥

निश्चय ३२

राणाजी हूं अब न रहूँगी तोरी हटकी ॥०॥
साध संग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की ॥१॥
पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी ।
सतगुरू मुकर दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी ॥२॥
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ी करकी पटकी ।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घटकी ॥३॥
महल किला राणा मोहिं न चाये, सारी रेसम पटकी ।
हुई दिवानी मीराँ डोलै, केस लटा सब छिटकी ॥४॥

निश्चय ३३

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी ।
म्हे तो गुण गोविंद का गास्याँ हो माई ॥०॥
राणोजी रूठ्यो वाँरो देस रखासी,
हरि रूठ्याँ किठे जास्याँ हो माई ॥१॥
लोक लाज की काण न मानाँ,
निरभै निसाण घुरास्यां हो माई ॥२॥
राम नाम की झाझ चलास्यां,
भौ सागर तर जास्यां हो माई ॥३॥

विष का प्याला भेजिया दो मीराँ के हाथ ।
कर चरणामृत पी गई राखण वाळा रघुनाथ ॥५॥
चार जणां ने भेजिया जावो मीराँ के पास ।
मर गई होवे तो जळा दीज्यो नीतर दीज्यो समँद में डार ॥६॥
साँप टिपारो मोकल्यो दो मीराँ के हाथ ।
खोल टिपारो देखिया हो गया नोसरहार ॥७॥
साध हमारा शिर धणी मैं साधण की सेव ।
ये साधू मारे रूम रूम में रम रया ज्यूं बादल बिच मेव ॥८॥
ऊँचा हर का गोखड़ा नीचा सांवरिया का मेल ।
बाई मीराँ के गिरधर नागर चालूं सांवरिया थारी लेर ॥९॥

ज्ञान ३६

मोहन लागत प्यारा राणाजी, मोहन लागत प्यारा ॥०॥
जिनकी कला से हालत चालत, बोलत प्राण आधारा ।
नेन की कला मां सब जुग भूल्यो, एही पुरुष हे न्यारा ॥१॥
तुमही जुठे ने अमही जुठे,
जुठे जुठे सब संसारा ।
स्त्री पुरुष के संबंध जुठे,
तो फुटया हइया तुमारा ॥२॥
तुमही कहो अरधंगा हमारी,
हमकु लगायो कारा ।
कोटी ब्रह्मांड मां व्यापी रह्यों हे,
सो निज वर हमारा ॥३॥
सालु पीतांबर मोतन की माळा,
लेई अगन में डारा ।

भगवत रो तू राख भरोसो त्रिविध-ताप मिटाई ने रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर रा गुण चित्त चरणों में लाई ने रे ॥४॥

निश्चय ४०

कांई थारो लागै छै गोपाल ॥०॥ (मीराँ थारे)
गढ़ से तो मीरांबाई ऊतरयाजी, हाथ मगद को थाल ।
औरां के तो ऊन धन लक्ष्मी, आप फिरो कंगाल ॥१॥
ऊँचा राणाजी रा गोखड़ाजी, नीची मीरांबाई री साल ।
रमतां तो पायो मीराँ काँकरो, कोई सेवा सालिगराम ॥२॥
जहर पियाला राणाजी भेजियाजी द्यो मीरा ने जाय ।
कर चरणामृत मीराँ पी गई, कोई आप जानो रघुनाथ ॥३॥
साँप टिपारा राणाजी भेज्या, कोई द्यो मीराँ ने जाय ।
कर खँगवालो मीरांबाई पहरियो, कोई होगयो नोसरहार ॥४॥
काढ़ कटारो राणाजी बैठिया, ल्यो मीराँ ने मार ।
इत मारां उत दोष लगे, कोई छत्री धरम घट जाय ॥५॥
सांडचा सांडिया पलाणज्यो म्हे चालां सो सो कोस ।
राणाजी का देश में कोई, जल पीवा को दोस ॥६॥
सांडचो फिर कर देखियोजी, दीखै मीरांबाई रो देश ।
मीराँ गिरधर के रँग राची, रंच न रह्यो कलेस ॥७॥

उत्कंठा ४१

गिरधर आवणां हे, ऊदांबाई सेजडली सँवार ॥०॥
आवणरी विरियाँ भई जी, अब महलां ढोल्यो ढ़ार ॥१॥
अतर सुगंध मिलाय के जी, घी भर दिवला वार ॥२॥
जाई जूही केतकी जी, चंपा कली सुधार ॥३॥
पलकाँ सूं करां पाँवडाजी, अँचलां सूँ मगभार ॥४॥
गिरधर म्हारो परम सनेही, मीराँ उनकी नार ॥५॥

दृढ़ता ४६

तुलसाँ की माला हिवड़ै लागीजी (मेवाड़ा राणा)
रामतणाँ गुण गास्यां ॥०॥
लिख पत्तर राणूँ मीराँ ने भेज्यो,
संग साधाँ से पिसतास्यो जी ॥१॥
लिखरे पत्तर मीराँ राणाजी ने भेज्यो,
साधूडाँ रे संग सुख पास्यांजी ॥२॥
विषरा पियाला राणाजी भेज्या,
पिवतां पिवतां म्हांने आवै हांसीसी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि चरणां में चित लास्यांजी ॥४॥

ज्ञान ४७

तेरा मेरा जियडा, एक कैसे होय, राम ॥०॥
हमने कहा सुरझावन राणां, तुम जाते उरझाय, राम ।
हमने कहा निरमोहित रहना, तुम तो जात मोहाय, राम ॥१॥
तेल जले तो जलती है वाती, दिवरा झलमल सोय, राम ।
जल गया तेलरु बुझ गई वाती, लच्चर लच्चर होय, राम ॥२॥
हमने कहा आंखिन का देखा, तुम कानों सुनि सोय, राम ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, होनहार सो होय, राम ॥३॥

अनन्य प्रेम ४८

विक्याजी हरि प्यारीजी रे हाथ विक्या ॥०॥
कृपा करोजी म्हे सोही सिर धारां, सोभा देखि छक्या ॥२॥
जा दिन ते मेरी लगन लगी है, औरन द्वार थक्या ॥२॥
अनुरागी मन मस्त है राणाजी, गरुड के अगड जुरया ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणां चित्त टक्या ॥४॥

स्वजन आदेश ५३

मेड़तियारा कागद आया, बाई मीराँ ने जा खीज्योजी ॥०॥
बोहत भांति से लिख्या ओलमा, कुलकै दाग मत दीज्योजी ॥१॥
साधां को सँग परो निवारो, वेद साख सुण लीज्यो जी ॥२॥
मीराँ प्रभु को संग छांड़यो, पति आज्ञा में रीज्यो जी ॥३॥

विनय ५४

म्हारा नटनागर गोपाललाल बिन कारज कौन सुधारे ॥०॥
घूम रह्यो दुरयोधन राजा, जैसे गज मतवारो ।
सिंह होय कर हस्ती मारे, बड़ो भरोसो थारो ॥१॥
मीराँ ने राणाजी बरजे, मतना जन्म बिडारे ।
ये संगत साधां की सीख्या, मत आवो महल हमारे ॥२॥
म्हे संगत साधां की सीख्या, थारे कछुयन सारे ।
तन में रीस भई राणाँ के, ऊठ खड्ग ले मारे ॥३॥
प्याला में विष घोल राणाँजी, मन में कपट विचारे ।
अमृत करके मीराँ पीगई, जहर साँवरो झारे ॥४॥
जब जब भीड़ परी भक्तन पर, आपहि कृष्ण पधारे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि भक्ताँ ने त्यारे ॥५॥

निश्चय ५५

राणाँजी म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारो, हो राणाजी
म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारो ॥०॥
व्यापक होय रह्यो घट घट में, है सबही से न्यारो ।
अन्तर घट की सबही जाणे, सबही को सरजण हारो ॥१॥
आपतो भेज्या विषरा प्याला, दे मीराँ ने मारो ।
कर चरणामृत पीगई जी, गिरधर संकट टारो ॥२॥

छापा तिलक बनाये छवि सों । माला हात रही (रे) ॥३॥
दोउ कुल छाँड भई वैरागण । हरि सों टेर दई (रे) ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । गोविन्द सरण भई(रे) ॥५॥

प्रेम-रहस्य ६०

अरी एरी ऊदाँ लागी का नाम न लेय ॥०॥
जल से प्रीत करी मछली ने, बिछुरत प्राण तजे ॥१॥
मृगों की प्रीत लगी नादों से, सनमुख सेल सहे ॥२॥
दीपक से प्रीत लगी पतँग की, वार कर जिया दे ॥३॥
मीराँ की प्रीति लगी है सन्तों से, गुरू चरणाँ चित दे ॥४॥

निश्चय ६१

अरे राणाँ पहली क्यों ना बरजी लागी गिरधरिया से प्रीत ॥०॥
मारो चाहे छाँडो राणा, नहिं रहूँ मैं बरजी ।
सुगना साहिब सुमरतां रे, मैं थारे कोठे खटकी ॥१॥
राणाजी भेज्यो विषरो प्यालो, कर चरणामृत गटकी ।
दीनबंधु साँवरियो है रे, जाणत है घट घट की ॥२॥
म्हारा हिरदा मांय बसी है, लटकन मोर मुकट की ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मैं हूँ नागर नट की ॥३॥

द्वारिका महिमा ६२

दीज्यो म्हांनैं द्वारका को वास, रूडा रणछोड़जी हो ॥०॥
सुथान बासो नाम हरि को, झालरिये झणकार ।
सकल तीरथ गोमती रे वाला, साँवरियो सिरदार ॥१॥
पपैया नैं मेघ प्यारो, मांछली मथ नीर ।
म्हांनैं तो गिरधर हि प्यारो, छाँड्यो जगत सूं सीर ॥२॥
तजियो पीहर सासरो, तजियो सह उपहास ।
राणाजी रो बास तजियो, राखो रावल बास ॥३॥

झैर पियालो राणांजी भेज्यो, द्यो मीराँ ने प्याय (हाथ)।
कर चिरणामृत पीगई मीराँ, थे जाणों दीनाँनाथ ॥३॥
साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, दीज्यो मीराँ ने जार।
कर खँगवालो पहरियो कोई, होगयो नोसरहार ॥४॥
राणाँजी कागद भेजियो कोई, द्यो मीराँ नै जाय।
साधाँ की संगत छोड़द्यो मीराँ, वैठो राण्याँ रै माय ॥५॥
काढ़ कटारो राणाजी भेज्यो, दूजी भेजी तरवार।
एक मीराँ की दो कराँ कोई, दो को होगई च्यार ॥६॥
राणों मीराँ सें यों कहेजी, कस्यो थारो भगवान।
राजपाट सब छोडस्याँ कोई, म्हे भी भजाँ भगवान ॥७॥
कच्चो रँग उड जाय छैजी, पक्को रँग नहिं जाय।
मीराँ कै रँग गोपाल को जी, अब छूटण को नांय ॥८॥

निश्चय ६६

राणाँजी हो जाति रो कारण म्हारे को नहीं,
लागो म्हारो हरि भगताँ सूँ हेत ॥०॥
विदुर कुलां घरि जनमिया, ज्यांकै पावणां हुआ गोपाल।
बंदि छुड़ाई वसुदेव की, कंस कियो खोकाळ ॥१॥
पाँचूँ पाण्ड्र छटी द्रोपदी, ज्याँकी न्यारी न्यारी जात।
सहस अठ्यासी मुनि आविया, ज्याँकी पण राखी रघुनाथ ॥२॥
वनमें हुती स्योरी भीलणी, ज्याँका आरोग्या ठाकुर बोर।
ऊँच नीँच हरि नां गिणै, ऐसी म्हारा हरिभगतां री कोर ॥३॥
येक वेल दोय तूँवड़ा, ज्याँहूँ की न्यारी न्यारी जात।
येक तूँबो जंतर चढ़ै, दूजो हरिभगतां कै हाथ ॥४॥
संख समदाँ नीपजै, ज्याँहूँ की न्यारी न्यारी जात।
एक संख सेवा चढ़ै, दूजो भोपड़लां के हाथ ॥५॥

इक कुल लाजै आपणौ, दूजौ राय राठौड़ ।
तीजो लाजै मेड़तो. चौथो गढ़ चित्तौड़ ॥२॥
इक कुल राणा त्यारूँ आपणौं, दूजो राइ राठोड़ ।
तीजो त्यारूं राणा मेड़तो, चौथो गढ़ चित्तौड़ ॥३॥
बागां तो बोली कोइली, गिर पर बोल्याजी मोर ।
मीराँ नै सतगुरू मिल्या, नागर नन्दकिसोर ॥४॥

निश्चय ६६ (गुज०)

काया कारण भेख लीधा, राणाजी मैं तो काया कारण भेख लीधा ०
रमता ने भमतां जोगी, आव्या आंगणीये मारे,
दासी जाणी ने दर्शन दीधां ॥१॥
गिरधरलाल विना, घडीये न गोठे राणा,
हरिरस घोळी घोळी पीधां ॥२॥
मोहने मोहन कर्या, कारमां अतिशे राणा,
कंथा प्हेरीने नेडा कीधां ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला,
जंगळ मां जईने डेरा दीधां ॥४॥

निश्चय ७०

कायकुं राखो वेर राणाजो मोसुं, कायकुं राखो वेर ॥०॥
छोडुं राणाजी तेरो राज रावरो, छोडुं सारो शहेर ॥१॥
विखना प्याला पीवने भेज्या, अमृत होगयो झेर ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, सब संतन की मेहेर ॥३॥

निश्चय ७१

म्हे तो करस्यांजी प्रीत लगाय संगत साधां री ॥०॥
हरिजन हरि तो एक हेरे फूल बास दो नांय ।
अरस परस ऐसे मिले जैसे घिरत दूध के मांय ॥१॥

धना भगत को खेत निपांओ, नामदेव छांन छवाई ।
दाश कबीर के बेल ही लाए, नरशींह को कारज शारो ॥२॥
जेर को पालो भेजो राणाजी, लो मीराँ ने मारो ।
मीराँ ए चरणोदक काढ्यो, शाहेब शंकट टालो ॥३॥
ढोल वजाह शाधन संग राची, शब जुग लागत कारो ।
पकडी टेक छोड़ु नही कबहु, लोक दुनी जख मारो ॥४॥
जनम जनम को पति परमेश्वर, राणाजी कोण बीचारो ।
मीराँ तो गिरधर के शरणे, जीवणप्राण आधारो ॥५॥

भक्ति-प्रभाव ७४

हरि रा मंदर मांहे-प्रभु का मंदिर मांहे, नाच्या हो मीरांबाई,
भक्ति करे गिरधर री ॥०॥
सांप टपारा राणाजी ने मेल्या, हो गया मोतियारा हार रे ॥१॥
झेर रा प्याला राणाजी ने मेल्या, कर चरणामृत पीगया ॥२॥
शूळां री सेजां राणाजी ने मेली, फूल गुलाब रा होगया ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारिया ॥४॥

ज्ञान ७५

दाझेल दीलना राणा छै अमे दुखिया भाई ॥०॥
छै दुखिया रे अमे नथी सुखिया ।
शामळो मळे तो अमे थईए सुखिया ॥१॥
संसार सागर राणा महाजल भरियो ।
भाई थोडा थोडा जल ना अमे छे मछिया ॥२॥
चुन चुन कलियुं राणा सेज बिछावो ।
जई सेज पलंग पर तमे सुखिया ॥३॥

निश्चय ७८

राणांजी गिरधर रा गुण गास्याँ ॥०॥
गुरू-परताप साधरी संगति सहजै ही तिर जास्याँ ॥१॥
म्हारै तो पण चरणामृत रो निति उठि देवल जास्याँ ॥२॥
कथा कीरतण सुण निसि वासर महाप्रसाद ले प्यास्याँ ॥३॥
सुनि सुनि वचन साध रा मुप रा निरत कराँ और नाचाँ ॥४॥
प्रेम प्रतीति जाप निसि वासर वहुरि न भौ जल आस्याँ ॥५॥
लोक वेद री काणि न मानूँ राम तणै रँग राचाँ ॥६॥
नाँव अमोलिक इमरित रूपी सिर कै साटै ल्यास्याँ ॥७॥
उमहड़ माड्यौ म्हारै ऊपर विष रो प्यालो प्यास्याँ ॥८॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर पीवत मन न डुलास्याँ ॥९॥

भक्त-वत्सलता ७९

राणाजी वो गिरधर मित्र हमारै ।
साँच झूठ को न्यारो छाँणै, नहीं और कै सारै ॥०॥
साधाँ की रक्षा कै कारण, जनम करम कौं धारै ।
दुष्ट जीवाँ को दंड कै करता, संता कौं निस तारै ॥१॥
मिरतक जीव वैकुंठ पठावै, जीवत नरक मैं डारै ।
अकरण करण अगाध अगोचर, निगम नेति कहि हारै ॥२॥
जप तप तीरथ दान व्रतादिक, लोक वेद कै वारै ।
जो कोइ आइ रहै सरणागत, ताकूँ वेगि उधारै ॥३॥
अजामेलि से पतित आदि से, जन के संकट टारे ।
जन मीराँ वाही के सरणैं, भगति न विरद लजारे ॥४॥

आत्म-कथन ८०

राणाजी मैं तो गिरधर के मन भाई,
सीसोद्या मैं तो गिरधर के मन भाई ॥०॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि

१—गुँजारी=गले का आभूषण। नेवर=पैरों का आभूषण। साधन के=साधुओं के। ढिग=संग, साथ। कुल कूँ.........गारी=कुल को कलंक लगाती हो। माय मोसाली=पीहर व नाना का घर।

२—आण=शपथ। अन=अन्य। भेव=भेद। मारगी=ठगना, लूटना। अकाज=अहित।

३—माहिले=भीतर से। धीहड़ी=वेटी। गेली=पगली। चौवास्याँ की........करीजे=वर्षा ऋतु के क्षुद्र जलाशयों का जल न पीकर अखण्ड वहने वाले झरने का जल पीना उचित है अर्थात् संसार के विषयों में आसक्त न होकर हरिनामामृत का पान करना चाहिए। रूप सुरङ्गा=मन मोहन।

४—विश्वावीस=निश्चित रूप से। आल जंजाल=मिथ्या, मृग मरीचिकावत्।

पाठान्तरः—

प्यारे चरण की सेव चहतहुँ, ना चाहुँ धन माल ॥१॥

६—वाजीतर=वाद्य। आणी आणी वाटे=इस इस मार्ग से। तेणीने वाटे=उस मार्ग से।

८—लारी=साथ।

१०—लाजेलो=लजेगा। लागेलो कालो=कलङ्क लगेगा। ओई.........निस्तारो=उन्हीं के द्वारा मेरा कल्याण-उद्धार होगा। सैंस=सहस्र।

११—थाणां=स्थान। घुड़लाँ की घूमर=अश्वों का समूह।

१२—कर चरणामृत........चन्द्रकला सी=चरणामृत समझ कर विषपान करने के पश्चात् मीरांवाई की मुखकान्ति प्रतिक्षण चन्द्रकला की भाँति वढ़ती ही गई।

१३—रमकडु=खिलौना। नहि........वडियु रे=जिसका किसी लौकिक मानव द्वारा निर्माण नहीं हुआ। मथी मथी थाक्या=

देखो मीराँ डीगी पतली नार मनडाँ में आमण धोवणां।
कांइ थांका पति वनवास कांई जी दुख दूबळा ॥
चल्यो जारे मुरख गँवार पराईया जीव की तुझे क्या पड़ी।
साँवरा गया वनवास वैरागण हर की ले खड़ी ॥
आप प्रभु दीन के दयाल हीरां केरा पारखु।
दरसण दो भगवान चरणों में आय गई।
थोड़ी थोड़ी करूँ जी परणाम घणो कर मानज्यो।
साधां में मारो जी पीयर संता में आसरो।
उड़जा उजड़ा सरवरियारा हंस सुरंग थारी पांखड़ी।
कदि आवे श्री भगवान फड़के म्हारी आँखड़ी।
द्वारकारो नाथ झुके म्हारी आँखड़ी।
मतकर बंदा का यारो अभिमान जोवन धन पामणा।
अन धन रा कर लीजो दान वैकुंठां थारे वासना ॥

और पद-पाठान्तरः—
मीराँ गूंथायो फूला शीश सोना रे छोगे राखड़ी।
म्हारा हिरदा में हरि रो ध्यान ओरा रे म्हारे आखड़ी
फूलाँ भरी रे चंगेड़ ऊपर धरूं आरसी
प्रभुजी गया वनवास लिखूं दोये फारसी
पकड़ अंबुला केरि डार जंगल विच क्यूं खड़ी
....
प्रभुजी गया वनवास थने कइ कह गया
छतियाँ वजर रखाय जंझीरा जड़ गया
प्रभुजी गया वनवास थने कह दे गया
काजल तिलक तमोल सारोइ सुख ले गया

२३—गाल=कलंक। ओलमा=उलाहना। वासोवस्यां का=निकट वसने के कारण। वाई ऊदाँ नहीं म्हारे........ मेलिया—

राणाजी रूसे तो म्हाँरो देसड़लो रख लेस्याँ मा ।

ओ हरि रूस्याँ मर जास्याँ ए माय ॥ राणाजी ॥१॥

गोपी चंदन गंगा गोली ।

घस घस अंग लगास्याँ ए माय ॥२॥

धोलां वस्त्र हाथ करतालाँ ।

पग घुँघरू घमकास्याँ ए माय ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,

हरि चरणन चित्त लगास्याँ ए माय ॥४॥

३८—विख··· ·· लहरी=विष का प्याला तो मैंने पिया और उसका प्रभाव तुम पर पड़ा।

३९—परमोदे=सन्तुष्ट रखना। मंडी में=कुटी में। भंडारो=भण्डारा, किसी मृत संत साधु के पीछे किया जाने वाला भोज। उगाइने=इकत्रित करके। त्रिविध ताप=तीन प्रकार के ताप—दुःख, १ आधिदैविक, २ आधिभौतिक, ३ आध्यात्मिक।

४०—मगद=मिष्ट खाद्य पदार्थ—विशेष। ऊन=अन्न। साल=बरामदा। रमतां·········सालिगराम=खेलते हुए जो कंकर मिला उसी को शालिग्राम मानकर सेवा की। खंगवाला=खुंगाला, गले में पहिनने का आभूषण विशेष। इत·········वट जाय=विष और नाग से भी जब मीराँ नहीं मरी तब शस्त्र द्वारा स्वयं उसे मारने को उद्यत हुए उस अविचारी राणा को, पहले मन में हठात् क्षणिक यह विचार उत्पन्न होता है कि मीराँ को इस प्रकार मारने से कहीं क्षात्रधर्म में कलंक तो नहीं लग जायगा। सांड्या=सांड वाला। सांडिया=ऊँट। पलाण्यो=काठी कसो। सांड्या·········दोष=राजा भी यदि अन्यायी और अनीतिमान हो तो उसे और उसके देश को त्याग देने के कर्त्तव्य की ओर लक्ष्य करके मीरांबाई ने इस चरण में भाव व्यक्त किया है। रंच=तनिक। सांड्यो·········कलेस=मेवाड़ त्याग करते समय मीरांबाई के साथ सांड़ वाले ने जब पीछे मुड़कर देखा तो मीरांबाई का देश-मेवाड़ दृष्टिगत हुआ। स्वदेश को छोड़ने पर उसके हृदय में कुछ

कृपा.........धाराँ=मीरांबाई प्रभु से प्रार्थना करती है कि आप हम पर भी कृपा करें, हमें आपकी आज्ञा सिरोधार्य है। और न......... थक्या=(आपकी अलौकिक कमनीय कांति के दर्शन के पश्चात्) कोई भी देवी-देवता की ओर मन लगता ही नहीं। अनुरागी......... जुरया=हे राणा जी ! मेरा मन भगवद् प्रेमासक्त हो मतवाला हो रहा है और निरन्तर गरुड़ारूढ़ भगवान से जुड़ा हुआ है।

विशेष:—इस पद में मीरांबाई के अनन्य प्रेम के भाव व्यक्त हैं। 'हरि प्यारीजी रे हाथ बिक्या' अर्थात् भगवान राधा के वश में हो गये। इसका तात्पर्य यही है कि भगवान परंपरा से अनन्य प्रेमी भक्तों के आधीन होते आये हैं, यथा 'अहं भक्त पराधीन अस्वतंत्र इव द्विज' आदि—
(श्रीमद् भागवत ६ स्कन्ध अ ५०)

५०—कांई.........जंजाल=प्रभु को छोड़कर दूसरों के साथ क्या फेरे लिये जायँ, वे सब तो उपाधि—प्रपंच रूप हैं। हाल=अभी।

अधिक चरण:—

भाई मैं तो स्पना में परनी गोपाल ॥०॥
हाथी भी लायो, घोड़ा भी लायो, और लायो सुखपाल ॥१॥

५१—मिथुला=मीरांबाई की दासी का नाम। त्यारी=तैयारी, व्यवस्था। सौंज=साज, उपकरण।

५३—ओलमा=उलाहना।

५४—सिंह.........मारो=कोई कुटिलमति सत्ता के मद में मदोन्मत्त हाथी जैसा मदान्ध हो जाता है, उसका आप (भगवान) सिंह होकर संहार करते हो। बिडारे=गँवाओ, नष्ट करो।

६१—कोठे=महल में। थारे.........खटकी=तेरे लिए बाधक रूप हुई, तुझे असह्य हो पड़ी। गटकी=पी गई।

६२—सुथान.....सिरदार=जो भगवान का पुण्यधाम है जहाँ झालर आदि वाद्यों के साथ भगवन्नाम का कीर्तन-घोष होता है, जहाँ श्यामसुन्दर स्वयं द्वारिकानाथ है जिसके कारण वहाँ की गोमती

६६—कोर=मंडली, पंक्ति। भोपड़लां=भूत-प्रेत झाड़ने वाले, ओझा। मतो=मत। उपाइयौ=निश्चय किया। मुलक्यां=व्यंग पूर्वक, मंद हंसी। कोग=उत्साह।

विशेष:—यह पद मीरांबाई और राणा के परस्पर के प्रश्नोत्तर के रूप में है। राणा को समझाते हुए मीरांबाई ने इस पद में बताया है कि हरि भक्ति में जाति की कोई प्रधानता नहीं है और इसी की कई दृष्टांत देकर पुष्टि की है।

भावार्थ:—राणाँजी·········हेत=हे राणाजी, भगवान की भक्ति में जाति को अधिक महत्व देना उचित नहीं। मेरी तो हरि-भक्तों में ही श्रद्धा और उन्हीं के सत्संग में रुचि है भले ही किसी जाति के हों। विदुर··········खोकाल=विदुरजी कोई उच्चकुल में नहीं जन्मे थे फिर भी केवल भगवद् प्रेम के ही प्रभाव से श्रीकृष्ण भगवान ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया और वसुदेव को बंधन से मुक्त करने वाले भगवान ने उच्चकुल में जन्म लेने वाले भी दुष्ट मामा कंस का संहार किया। पाँचूँ······रघुनाथ=पाँचों पाण्डव और द्रौपदी ये छठों भिन्न २ देवताओं के वरदान से उत्पन्न हुए थे और भिन्न २ स्वभाव के थे परन्तु एक मात्र उनके प्रेम ही के वशीभूत हो श्रीकृष्ण भगवान ने उनके वनवास के समय में अकस्मात् आने वाले दुर्वासादि ऋषि मुनियों को भोजनादि से तृप्त कराकर उनकी लाज रखी।

वन में·········कोर=भक्त वत्सल भगवान प्रेम भावना के भूखे हैं, वे केवल जातिमात्र से ऊँच नीच का भेद नहीं देखते। इसीलिये उन्होंने हीन जाति वाली वनवासिनी शवरी भिल्लनी के वेर प्रेम पूर्वक पाये। एक·····हाथ=एक ही वेलि के दो तूँवे होने पर भी उन्हें पृथक्-पृथक् कार्य में लिया जाता है। एक तूँवा तंवूरे के रूप में वेश्यादि हीन वृत्ति वालों के भी काम आता है जब कि दूसरा कमंडलु के रूप में संतों के काम आता है। सारांश कि संगीत जैसे सरस कार्य में उपयोग होने पर भी भक्ति हीन होने से उस तूंवे का कोई महत्व नहीं जबकि दूसरे के केवल साधु-संतों के जलपात्र जैसे साधारण कार्य में आने पर भी उस तूंवे का महत्व वढ़ जाता है। भगवान भी ठीक इसी प्रकार भक्ति को ही महत्व देते हैं।

पाठान्तरः—

म्हूँ गिरधर की गिरधर म्हारो,
राणाजी कौन है विचारो ।

७५—भावार्थः—दाभेल·········थई ए सुखिया=विराहाग्नि में दग्ध हुए हृदय वाली हम दुःखिनी हैं, श्यामसुन्दर के मिलने पर ही हम सुखी होंगी।

संसार·········मछिया=संसार रूप सागर में अगाध जल भरा है अर्थात् मिथ्या प्रपंच एवं मोह मायादि युक्त संसार सागर के अगाध खारे जल से जीव को कभी शांति और सुख प्राप्त नहीं होता, इसके विपरीत हम उस प्रभु-प्रेम और भगवद्भावरूप अल्प जल के जीव रूप मीन हैं कि जिसमें गोते लगाने पर ही वास्तव में शांति और आनन्द की प्राप्ति होती है।

चुन·········सुखिया=पुष्प शय्या पर सोते हुए अनेकानेक वैभवों को भोगते हुए तुम अपने को सुखी मानते हो।

परदेशी·········रतियां=जो निरन्तर दृष्टिगोचर नहीं हैं उन परदेशी प्रभु से प्रेम करने पर विरह में रो रो कर नेत्र लाल हो जाते हैं।

जन्म············लखियां='हानि–लाभ, जीवन–मरण, यश-अपयश विधि हाथ' (गो० तुलसीदास)। इसलिये सब कुछ भगवान की इच्छा पर छोड़कर, उनका स्मरण करते हुए अपना कर्त्तव्य किये जाओ।

७८—साधरा·········नाचाँ=संतों के मुख के (वचन सुन सुन कर) नृत्य करूंगी। प्रेम··· ·····आस्याँ=रात्रि-दिन अखंड जप, विश्वास व प्रेम पूर्वक करने से भव कूप में नहीं गिरूँगी।

७९—न्यारो छांणै=निर्णय-न्याय करने वाले। निसतारै=उबारते हैं। अकरण·········हारे=कर्त्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ उस निरंजन परमात्मा का पार न पाकर वेद भी 'नेति' कह उठते हैं।

८०—राणा·········परणाई=अर्थात् राणा संग्रामसिंह के युवराज भोजराज को।

———

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'
'तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत'
तथा 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्या जी मां नमस्कुरु'
(गीता अ० १८ श्लो० ६६, ६२, ६५)

भगवान के आदेशानुसार उक्त स्थिति को प्राप्त होना ही प्रार्थना का वास्तविक अर्थ है।

'प्रार्थना' साधन का कोई अन्त नहीं। वह तो जीवन का अंग बन कर स्वाभाविक हो जाती है।

परमात्मा आनंदस्वरूप है। वह परम दयामय है परंतु आवश्यकता है पूर्ण विश्वास की। भवतापतप्त जीव प्रार्थना रूप सुधा के झरने की शीतल जलधारा को पाकर ही शांति को प्राप्त होता है। सांसारिक सुख वास्तव में मृगमरीचिकावत् है। इससे त्राण पाने के लिये एक मात्र प्रार्थना ही सरल, सुगम एवं अमोघ साधन है। अंग्रेजी में एक कहावत भी है कि 'Prayer can move mountain' सारांश यह कि अति असंभव दीखने वाला कार्य भी प्रार्थना के बल पर सिद्ध होता है। जीवन में अनेकानेक संकटों-विषम प्रसंगों के उपस्थित होने पर, धैर्य व सान्त्वना देकर मन को विवेक की ओर मोड़ कर एक मात्र प्रार्थना ही उसकी बागडोर सम्हाले रहती है।

साधारण जीव प्रार्थना द्वारा धन, बल, सत्ता आदि सांसारिक नाशवान भोग्य विषयों की ईच्छा करते हैं परन्तु विचारवान, आत्मविषयक प्रेम, भक्ति, ज्ञानादि सात्विक व दैवी संपदा के भावों की कामना करते हैं। धीरे धीरे उनकी यह वृत्ति भी प्रभु-ईच्छा में लय हो जाती है।

है। उसे कोई ईश्वर तो कोई प्रकृति, कोई भगवान तो कोई राम वा कृष्ण, कोई शिव तो कोई शक्ति और कोई रहीम, ईसा तो कोई बुद्ध वा महावीर कहते हैं। वास्तव में चराचर सृष्टि के लिये वही एक मात्र परमात्मा है, नामों में भले ही भेद हो। उसकी प्रार्थना चाहे कोई सगुण अथवा निर्गुण भाव से करे या संगीत के साथ कीर्तन द्वारा अथवा अन्तःकरण पूर्वक (मानसिक) स्मरण द्वारा, पर वह होनी चाहिये हृदय से।

प्रार्थना अकेले अथवा सामूहिक तथा धार्मिक स्थान अथवा घर वा वन में भी की जा सकती है। कैसी भी प्रार्थना हो, अंत में सब 'यथा गच्छति सागरे' तथा 'सर्व देव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति।' के अनुसार एक मात्र उसी परमात्मा को प्राप्त होती है।

महात्मा गांधीजी का प्रार्थना पर पूर्ण विश्वास था। प्रातः सायं नित्य दोनों समय प्रार्थना का कार्यक्रम उनके जीवनक्रम में अंतिम क्षण तक अनिवार्य रूप से होता रहा।

बहुत से पाश्चात्य विद्वान भी प्रार्थना में बहुत श्रद्धा रखते हैं। कहीं कहीं, युद्ध-विजय की कामना से अथवा रोग-शांति आदि हेतु से भी सामूहिक प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना नित्य की जानी चाहिए। प्रार्थना के फलस्वरूप अभीप्सित फल प्राप्ति करने वालों के अनेकों दृष्टांत शास्त्रों में भरे पड़े हैं तथा आज भी नित्य व्यवहार में इसका अनुभव श्रद्धावान् हृदय को मिल सकता है।

ग्रन्थारम्भ में भी प्रभु से प्रार्थना-विनय गद्य अथवा पद्य द्वारा करने की प्रथा है। आज भी उन संत महात्माओं के प्रार्थना

'भगवन् ! पूर्व कर्मानुसार जो होता है उसे होने दो, मेरी तो इतनी ही प्रार्थना है कि जन्मजन्मान्तर में आपके युगल चरण कमलों में मेरी निश्चल भक्ति हो ।'

'हें चि दान देगा देवा तुझा विसर न व्हावा ।
गुण गाईन आवडीं हें चि माझी सर्व जोडीं ॥
न लगे मुक्ति धन संपदा संत संग देईं सदा ।
'तुका'म्हणे गर्भवासी सुखे घालावे आम्हांसी ॥ तुकाराम ॥

प्रभो ! मुझे यही वर दो कि कभी मुझे तुम्हारा विस्मरण न हो, प्रेम से तुम्हारे गुण गाया करूँ, मुझे मुक्ति, धन, वैभव की चाह नहीं, केवल संतों का सत्संग हुआ करें बस, 'तुका' कहता है कि फिर सुख से भले ही कहीं भी जन्म दे दो ।

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशी ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधा तृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥

'हे करुणामयी दुर्गे ! जब कभी संकट पड़ने पर ही मैं तुम्हें याद करता हूँ (सुख के समय में नहीं) इसे मेरा शठपना मत समझ लेना, क्योंकि क्षुधा-तृषा से व्याकुल होकर ही जीव रूप बालक माता को याद करते हैं । अस्तु ।

मीरांबाई के प्रार्थना-विनय के सब पद इस विभाग में दिये हैं ।

इस विभाग के १३, १६, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ४२, ४५, ६६, ६८, १००, १०१, १०२, १०५, १०६, १०८, १०९ और ११४ ये १९ पद गुजराती भाषा के हैं ।

रहियो। (१०७) प्रीत करी तो पार निभाज्यो, मत करो लोक हसाई।

भगवान को रिझाने के लिये बाह्य साधनों का कोई महत्त्व नहीं। अनन्य निष्ठा और हृदय के सच्चे प्रेम भाव से ही वे भक्त के वश में होते आये हैं। इस भक्ति योग के सिद्धान्त के प्रति अटल विश्वास रखती हुई वह घोष करती है,--(६२) भावना को भूखो साँवरो म्हारो। (७२) साँचो प्रेम प्रीत को नातो, ताही तैं तुम रीझो।

इस प्रकार प्रभु के समर्थ आधार को पाकर पूर्ण आत्म-विश्वास पूर्वक वह अपने देवर राणा विक्रमादित्य के अत्याचार को चुनौति के रूप से स्पष्ट सुना देती है,—(६१) जाकूं राखै राम गुँसाई, तो मारनहारो कुण हो।

भीड पडने पर भक्त की पुकार सुनकर भगवान कृपा कर उसे सङ्कट मुक्त करते हैं, इस पर बहुत से पदों में भक्तों के दृष्टान्त देकर मीरांबाई अपना भी वही अनुभव व्यक्त करती है परन्तु उसके हृदय की तो एक मात्र यही कामना है कि-(११) मीराँ को प्रभु साँची दासी बनाओ। (१३) सेवा करूँ दिन रातड़ी।

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए भी सब कुछ प्रभु की इच्छा पर छोड़कर सन्तोष पूर्वक अपना निष्कामभाव व्यक्त करते हुए मीरांबाई गा उठती है,-(१०) मैं तो तेरी सरण परी रे, रामा ज्यूँ जाणे त्यूँ तार। (१४) चरण लगाबो थाँरी मरजी। (२३) मन माने जब तार।

प्रार्थना की यही विशेषता है, यही रहस्य है।

अनन्यता ४

म्हारे घर आओ प्रीतम प्यारा।
तुम बिन सब जग खारा ॥०॥
तन मन धन सब भेंट धरूंगी, भजन करूँगी तुम्हारा ॥१॥
तुम गुणवन्त सुसाहिब कहिये, मोमें औगुण सारा ॥२॥
मैं निगुणी कछु गुण नहिं जानूँ, तुम छो बगसण हारा ॥३॥
सेज सँवारी आप नहीं आये, कबको करूंजी विचारा ॥४॥
मीराँ कहै प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन नैण दुखारा ॥५॥

अनन्यता ५

छोड़ मत जाज्योजी महाराज ॥०॥
मैं अबला बल नायँ गुसाईं तुम ही मेरे सिरताज ॥१॥
मैं गुणहीन गुण नायँ गुसाईं तुम समरथ महाराज ॥२॥
थाँरी होय के किणरे जाउँ तुम ही हिवड़ा रो साज ॥३॥
मीराँ के प्रभु और न कोई राखो अब के लाज ॥४॥

आत्म-निवेदन ६

प्रभुजी मैं अरज करूँ छू मेरो बेड़ो लगाज्यो पार ॥०॥
इण भव में मैं दुख बहु पायो संसा-सोग-निवार ॥१॥
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख भार ॥२॥
यो संसार सब बह्यो जात है लख चौरासी री धार ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर आवागमन निवार ॥४॥

विरह ७

म्हारी सुध ज्यूँ जाणो ज्यूँ लीजो ॥०॥
पल पल ऊभी पंथ निहारूँ, दरसन म्हाने दीजो ॥१॥
मैं तो हूँ बहु औगुणवाली, औगुण सब हर लीजो ॥२॥
मैं तो दासी थाँरे चरण कँमल की, मिल बिछुड़न मत कीजो॥३॥

विकलता ११

मीराँ को प्रभु साँची दासी बनाओ।
झूँठे धँधों से मेरा फन्दा छुड़ाओ ॥०॥
लुटे हि लेत विवेक का डेरा।
बुधि बल यदपि करूँ बहुतेरा ॥१॥
हाय! हाय! नहिं कछु बस मेरा।
मरत हूँ विवस प्रभु धाओ सवेरा॥
धर्म उपदेश नित प्रति सुनती हूँ।
मन कुचाल से भी डरती हूँ ॥२॥
सदा साधु सेवा करती हूँ।
सुमिरण ध्यान में चित्त धरती हूँ॥
भक्ति मारग दासी को दिखलाओ।
मीराँ को प्रभु साँची दासी बनाओ ॥३॥

प्रेमालाप १२

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हारा वाला गिरधारी।
पूर्व जनम की प्रीति हमारी, अब नहिं जात निवारी ॥०॥
सुंदर वदन जोवते सजनी, प्रीति भई छे भारी।
म्हारे घरे पधारो गिरधर, मंगल गावै नारी ॥१॥
मोती चौक पूराऊँ वाल्हा, तन मन तोपर वारी।
म्हारो सगपण तोसूँ साँवलिया, जग सूँ नहिं विचारी ॥२॥
मीराँ कहे गोपिन को वाल्हो, हमसूँ भयो ब्रह्मचारी।
चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी ॥३॥

सेवाभाव १३ (गुज०)

अरज करे छे मीराँ रांकड़ी (लाड़ली), उभी उभी अरज करे छे।

लोक न धीजै (म्हारो) मन न पतीजै ।

मुखड़ा रा सबद सुणाज्यो जी ॥२॥

मैं तो दासी जनम जनम की ।

म्हारे आँगण रमता आज्यो जी ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।

बेड़ो पार लगाज्यो जी ॥४॥

प्रेमभाव १६

नेह लागी मने तारी कानाजी (अल्याजी)

नेह लागी मने तारी ॥०॥

काम काज मूक्युँ न धामज मूक्युँ ।

मन मां चाहुं छुं मोरारी ॥१॥

खभे छे कामळी ने हाथमां छे वांसळी ।

गोकुल मां गायो चारी ॥२॥

सोल सहस्र गोपिओ ने तमे वरिया ।

तोय तमे बाल ब्रह्मचारी ॥३॥

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।

चरण कमळ वलिहारी ॥४॥

अनन्यता १७

तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ॥०॥

मोर मुकुट पीतांबर सोहै । कुन्डल की छबि न्यारी ॥१॥

भरी सभा में द्रोपदी ठाड़ी । राखो लाज हमारी ॥२॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी ॥३॥

भक्त-वत्सलता १८

हरि तुम हरो जन की भीर ॥०॥

द्रोपदी की लाज राखी । तुम बढ़ायो चीर ॥१॥

प्रेमालाप २२

ओल्यूँ थारी आवे हो मिलवा की साजनिया ॥०॥
बिछरन दूँगी पाय पलक में, राखूँ हथमनिया।
आप महाराज को विरद लजेलो, सुणओ साजनिया ॥१॥
याद करूँ जब वेग पधारो, राखूँ पावनिया।
किरपा कीजो दर्शन दीजो, शरणे काजनिया ॥२॥
भरचाँ समँद में बही जात हूँ, कोई न राखनिया।
मीराँ के प्रभु हित कर लीजो, गिरधर से धनिया ॥३॥

अनन्याश्रय २३

मन माने जब तार प्रभुजी ॥०॥
नदिया गहरी नाव पुरानी। किस विध उतरूँ पार ॥१॥
वेद पुरान बखानी महिमा। लगे न गुण को पार ॥२॥
योग याग जप तप नहीं जानूं। नाम निरन्तर सार ॥३॥
बाट तकत हौं कबकी ठाड़ी। त्रिभुवन पालन हार ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलिहार ॥५॥

अनन्यता २४

अब हरि भूल्या नाय बने ॥०॥
विपति विदारण तुम हो गिरिधर। सुख में मित्र घनें ॥१॥
मैं अति दीन नहीं कछु लायक। तुम बिन कौन गिने ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। व्रज नन्द सरत तने ॥३॥

भक्ति २५

सुणज्यो चित्त दे कान ॥०॥
भगति प्रकाश करो हिरदा में, जहाँ से मिटत अज्ञान ॥१॥
तुम चरणाँ में लीन रहे मन, ज्यूँ मच्छी जल ध्यान ॥२॥
मीराँ दासी दोउ कर जोड़याँ, ये माँगत वरदान ॥३॥

तुमही हो मेरे सेठ वहोरा, ब्याज मूल काँई जोड़ो ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, रस में विष काँई घोलो ॥३॥

दर्शनानन्द २९

हरि बिन मोरी कौन खबरि ले, साँवरिया गिरधारी ॥०॥
मोर मुकुट शिर छत्र बिराजै, कुण्डल की छवि न्यारी ॥१॥
लटपट पाग केसरिया बागो, हिवड़े हार हजारी ॥२॥
वृन्दावन में धेनु चरावे । वंशी बजावे गिरधारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर बलिहारी ॥४॥

उत्कंठा ३० (गुज०)

मारे घेर आवो रे सुंदरश्याम, सोले सणगारे धरो शोभता रे ।
मोतिडे मांग भरावे, वेणी गुंथावुं शोभे ढलकंती ॥०॥
उंची हुं चढुं उचेरडी रे, जोउं पातळियानी वाट ।
वेगे पधारो मारा हो साएबा, तारे बेसणे मांडुं पाट ॥१॥
मोर मुगट शोहामणो रे, गळे गुंजानो हार ।
मुख मधुरी तारे हो मोरली रे, तारी चाल तणी छे बलीहार ॥२॥
दास मीराँ बाइ गिरधर नागर, हर्खी निर्खी गुण गाय ।
कलीयुग मां अमे अवतरीयां, मने राखोनी चर्णे करो सा'य ॥३॥

भक्त-वत्सलता ३१ (गुज०)

राखो रे श्याम हरी लज्जा मोरी, राखो श्याम हरि ॥०॥
भीम ही बेठे, अर्जुन ही बेठे, तेणे मारी गरज न सरी ॥१॥
दुष्ट दुर्योधन चीर ने खेंचावे, सभा बीच खडी रे करी ॥२॥
गरूण चढी ने गोविन्दजी रे आव्या, चीर ना तो वा'ण भरी ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरणे आवी तो उगरी ॥४॥

गुणगान ३४ (गुज०)

ब्रीजवासी रे ब्रीजवासी, मोरलीयो वाळो ब्रीजवाशी ।
वांसलडीवाळो ब्रीजवाशी, नंदाजी नो लालो ब्रीजवासी ।
छेल छोगाळो ब्रीजवाशी, कानुडो काळो ब्रीजवाशी ।
लागे सौथी रूप ब्रीजवाशी–ब्रीजवाशी रे ॥०॥
मथुरां मां व्हाले जन्म ज लीधो ।
गोकुळ मां आव्या नाशी–मोरलीयोवाळो ब्रीजवाशी० ॥१॥
माता जशोदा आनंद पाम्यां ।
अखंड प्रगट्या अविनाशी–मोरलीयोवाळो ब्रीजवाशी ० ॥२॥
मथुरां मां व्हाले मामा ने मार्यो ।
गोकुळमां मारी मासी–मोरलीयोवाळो बीजवाशी० ॥३॥
द्वारकां थी प्रभु डाकोर पधार्या ।
डाकोर ने कीधु काशी–मोरलीयोवाळो ब्रीजवाशी० ॥४॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण ।
जन्मोजन्मनी हुं दासो–मोरलीयोवाळो ब्रीजवासी० ॥५॥

शरणागति ३५

शरणागत की लाज तुमको शरणागत की लाज ॥०॥
भांत भांत के चीर पुराये । पांचाली के काज ॥१॥
प्रतिज्ञा छाँड़ि भीष्म के आगे । चक्र धरे जदुराज ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । दीनबंधु महाराज ॥३॥

प्रभु-महिमा ३६

कृष्ण करो जजमान प्रभु तुम ॥०॥
ज्याँको कीरत वेद बखानत । साखी देत पुरान ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभत । कुंडल झलकत कान ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । दे दरसन को दान ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बार बार तुमरे बल गइया ॥३॥

विश्वास ४०

राम गरीब-निवाज मेरे सिर राम गरीब-निवाज ॥०॥
कंचन कलस सदामां कूं दीनो हींडत है गजराज ॥१॥
रावण के दस मसतग छेदे दीयो भभीखण राज ॥२॥
द्रोपति सती को चीर वधायो अपणे जन के काज ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी कुल की राखी लाज ॥४॥

अनन्य भाव ४१

सुणे कोन मेरी सुणे हे कोन मेरी तुम बिन नाथ ॥०॥
एजी रामा अजामील सुत नाम उधारयो ।
गनिका ने तारी जशी पाप की ढ़ेरी ॥१॥
एजी रामा ध्रुव तारे प्रहलाद उवारे ।
मुझने तो आश अब राज की वणेरी ॥२॥
एजी रामा उभी उभी मीरां बाई अरज करे छे ।
तुम मेरे ठाकुर में तो दासी तेरी ॥३॥

भक्ति-प्रभाव ४२ (गुज०)

राम सीतापति तारी लेह लागी,
हो तमने भजे थी मारी भीड भागी ॥०॥
घरनो ते धंधो मने नथी गमतो,
साधु संगाथे मारी प्रीत बांधी ॥१॥
काम काज छोड्यां में तो लोकलाज मेली,
प्रेम मगन मां हुं राजी ॥२॥
अज्ञान नी कोटडी मां ऊंघ घणी आवे
प्रेम प्रकाश मां हुं जागी ॥३॥

प्रेमे करिने मारे मंदिरे पधारो वहाला,
न जोशो जात वरण माँ हो शामळियाजी ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वहाला,
आड़े आवजो मारा मरण माँ हो शामळियाजी ॥३॥

भक्त-वत्सलता ४६

पुकारा पुकारा पुकारा । द्रोपदी जदुनाथ पुकारा ॥०॥
एक से एक सकल रणधीर बेठ सभा में सारा ।
भीष्म द्रोण कर्ण कुंतासुत अपणा धरम व्रत हारा ॥१॥
लट छटकाई करुणा करत द्रोपदी नैण बहे जल धारा ।
अणी औसर में कुण ने पुकारूँ चीर दुःशासन हारा ॥२॥
तुम हो प्रभु मेरे गुरू पितु माता मैं हुं जो बाल तुम्हारा ।
श्री जगन्नाथ जीवन जुग माधो तुरत ही गरुड असवारा ॥३॥
हाथ में लिया प्रभु चक्र सुदर्शन माथा का मुकुट सँवारा ।
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर शरण ही राख उबारा ॥४॥

अनन्यभाव ४७

रखरे रखरे रखरे प्रभु लाज हमारी रखरे ॥०॥
ओराँ के प्रभु ओर वसीला । हमरे तुमारी पख रे ॥१॥
जल डूबत बृज राख लई है । धर गिरिवर को नख रे ॥२॥
मोर मुगट पीताम्बर सोहै । मुख पर मुरली रख रे ॥३॥
लोक लाज सब त्याग दई है । जग मारो चाहै भख रे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर के शरणे । चरण कमल को पख रे ॥५॥

अनन्यभाव ४८

हेलो म्हारो चरणा में झेलोजी साँवरा,
सुणो म्हारो हेलोजी साँवरा ॥०॥

जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान ॥१॥
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान।
कुबजा नीच भीलणी तारी, जानै सकल जहान ॥२॥
कहँ लगि कहूँ गिणत नहिं आवै, थकि रहै वेद पुरान।
मीराँ कहै मैं सरण रावली, सुनियो दोनों कान ॥३॥

शरणागति ५२

अब तो निभायाँ सरेगी, बाँह गहे की लाज ॥०॥
समरथ सरन तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज ॥१॥
भवसागर संसार अपरबल, जामें तुम हो जहाज ॥२॥
निरधाराँ आधार जगत गुरू, तुम बिन होय अकाज ॥३॥
जुग जुग भीर हरी भक्तन की, दीनी मोक्ष समाज ॥४॥
मीराँ सरण गही चरणन की, लाज रखो महाराज ॥५॥

दास्यभाव ५३

जागो म्हाँरा जगपतिरायक हँस बोलो क्यूँ नहीं।
हरि छो जी हिरदा माहिं पट खोलो क्यूँ नहीं ॥१॥
तन मन सुरति सँजोइ सीस चरणाँ धरूँ।
जहाँ जहाँ देखूँ म्हारो राम तहाँ सेवा करूँ ॥२॥
सदकै करूँ जी सरीर जुगै जुग वारणैं।
छोडी छोडी कुळ की लाज स्याम थाँरे कारणैं ॥३॥
थोड़ी थोड़ी लिखूँ सिलाम बहोत करि जाणज्यौ।
बंदी हूँ खानाजाद महरि करि मानज्यौ ॥४॥
हाँ हो म्हारा नाथ सुनाथ बिलम नहिं कीजियै।
मीराँ चरणाँ की दासि दरस फिर दीजियै ॥५॥

कूण सखी सूँ तुम रँग राते, हमसूँ अधिक पियारी ॥२॥
किरपा कर मोहिं दरसण दीज्यो, सब तकसीर बिसारी ॥३॥
तुम सरणागत परम दयाला, भव जल तार मुरारी ॥४॥
मीराँ दासी तुम चरणन की, बार बार बलिहारी ॥५॥

भक्त-वत्सलता ५८

हमने सुणी छै हरि अधम उधारण ।
अधम उधारण सब जग तारण ॥०॥
गज की अरज गरज उठ ध्यायो, संकट पड़्यौ तब कष्ट निवारण ॥१॥
द्रुपदसुता को चीर बधायो, दूसासन को मान मद मारण ।
प्रहलाद की परतिग्या राखी, हरणाकुस नख उद्र बिदारण ॥२॥
रिखिपतनी पर किरपा कीन्हीं, बिप्र सुदाम की बिपति बिदारण ।
मीराँ के प्रभु मों बंदी पर, एति अवेरि भई किण कारण ॥३॥

अनन्यता ५६

म्हारी भोली भाली रो भरतार नहीं कर छांडसी ॥०॥
ऊँचा महलां राणाजी सूता म्हने हरदम पास बुलावें ।
म्हूं मदमाती थांका रंग राती म्हने ई बातां नी भावे ॥१॥
जेर रो प्यालो राणाजी मेल्यो म्हूँ कर चरणामृत पी जासी ।
सांप पिटारो दूजो मेल्यां थें वां भी दरसन देसी ॥२॥
लाज गया थांको विरद न रेसी लोग करेला हांसी ।
म्हारो तो कई नहीं बिगडसी थांकी ही पत जासी ॥३॥
म्हारी हरीकी लाख दावडियां सांवरिया म्हारो एकजी ।
कर जोड्यां थांकी मीराँ ऊभी चरणाँ चाकर राखसी ॥४॥

शरणागति ६०

प्रभु मेरा बेड़ा पार लगाज्यौ जी ॥०॥
मैं नुगनी मैं गुण नहीं प्रभुजी । औगण चित मत लीज्यौजी ॥१॥

यमुना के तीरे धेनु चरावे, ओढ़े कामलो कारो।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, पीताम्बर पट वारो ॥२॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, कर में मुरली धारो।
शंख चक्र गदा पद्म विराजे, सन्तन को रखवारो ॥३॥
जल डूबत ब्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जीवन प्राण हमारो ॥४॥

गुणगान ६४ (गुज०)

गावे राग कल्याण, मोहन गावे राग कल्याण ॥०॥
आप गावे ने आप बजावे, मोरली सुँ मिलावे तान ॥१॥
मोर पीछ शिर मुगट विराजे, कुंडल झलके कान ॥२॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, गोपीए तजीया ध्यान ॥३॥

भक्ति-भाव ६५

माई मोरे नयन बसे रघुवीर ॥०॥
कर सर चाप कुसुम सर लोचन, ठाडे भये मन धीर ॥१॥
ललित लवँग लता नागर लीला, जब पेखो तब रणधीर ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बरसत कंचन नीर ॥३॥

अनन्यता ६६

गिरधर रीसाणाँ कौण गुनाँ ॥०॥
कछुक औगुण हममें काढ़ो, मैं भी कान सुणाँ ॥१॥
मैं तो दासी थाँरे जनम जनम की, थे साहिब सुगणाँ ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, थारो ही नाम भणाँ ॥३॥

प्रेमभाव ६७

म्हाँरे डेरे आज्यो जी महाराज ॥०॥
चुणि चुणि कलियाँ सेज बिछायी नख सिख पहर्यौ साज ॥१॥

सउच करो दंतधावन, स्नान की तयारी ॥२॥
वस्त्र और पुष्पमाल, तुलसी अति प्यारी ॥३॥
रत्न जटित आभूषण, मुकुट लटक वारी ॥४॥
धूप दीप नैवेद्य, आरती सँवारी ॥५॥
मीराँ प्रभु विधि विधान, चरणन चितधारी ॥६॥

प्रेमोत्कंठा ७२

ज्यूँ जाणूँ ज्यूँ लीज्यों सजन सुध ज्यूँ० ॥०॥
हूँ तो दासी जनम जनम की, कृपा रावरी कीज्यो ॥१॥
ऊठत बैठत जागत सोवत, कबहुँक याद करीज्यो ॥२॥
आवत जावत जीमत सोवत, सुपने दरस मोये दीज्यो ॥३॥
मैं पतिवरता नारि प्रभूजी, काहूतैं न पतीज्यो ॥४॥
साँचो प्रेम प्रीति को नाँतो, ताही तैं तुम रीझो ॥५॥
रात दिवस मोये ध्यान तिहारो, आय दरस मोय दीज्यो ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चित चरणाँ में लीज्यो ॥७॥

शरणागति ७३

तुम बिन स्याम सुने (गो) को (न) मेरी ॥०॥
ठाढ़ी खेवटणी अरज करत है, मलवा ने नाव पछिम को फेरी॥१॥
नदिया गहरी नाव पुराणी, अध पर बीच भँवर ने घेरी ॥२॥
बोदी है प्रभु पार लगावो, डूब जाय तो कहा रहै तेरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कुल को त्याग शरण लई तेरी ॥४॥

प्रभाती ७४

तुमसों तो मन लाग रह्यो तुम जागो मोहन प्यारे ॥०॥
भोर भई चिड़ियाँ चहचाई काग बोले कारे।
कामनियाँ ने चीर सँभाले घर घर खुले किंवारे ॥१॥

दृढ़ता ७८

थारै रंग रीझी रसिक गोपाल ॥०॥
निसवासर मैं रहूँ निरन्तर, दरसण द्यो नंदलाल ॥१॥
सो पतिव्रत टरै जिन टारचो, मति बिसरो नंदलाल ॥२॥
कोउ कहै नंदो कोउ कहै बंदो, चलां भावती चाल ॥३॥
सो मथ भक्ति करौ जिन साधो, म्हारो मणि उर माल ॥४॥
प्रेम भरी मीराँ जिन गरवै, हिरदै गिरधरलाल ॥५॥

प्रेमालाप ७९

नेहासमद बिच नाव लगी है, वालन लगत वही जात अकेली ॥०॥
लाज को लंगर छूट गयो है, वही जात बिन दाम की चेरी।
महलन कर से छाँड दई है, आस वडी गोपाल ज्यो तेरी ॥१॥
अबके पार लगावो नांतर, लोग हँसेंगे बजाके हतेरी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मेरी सुध लीज्यो प्रभु आँन सवेरी॥२॥

प्रेमालाप ८०

प्रभु तुम कैसे दीनदयाल, कैसे दीनदयाल ॥०॥
मथुरा नगरी में राज करत है, बैठे नंद के लाल ॥१॥
भक्तन के दुख जानत नाहीं, खेलै गोपी गवाल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भक्तन के प्रतिपाल ॥३॥

सत्संग-उपदेश ८१

चानारो बिड़द दुहेलो रे ॥०॥
चानो पहर कहा गरवायो, मुक्ति न होसी खेलो रे॥१॥
चानारो प्रण प्रहलाद उबारचो, बैर पिता से झेल्यो रे ॥२॥
आगा धर पीछा मत ताको, दफतर नाहिं चढ़ैलो रे ॥३॥
मीराँजी ने भक्ति कमाई, जहर पियालो झेल्यो रे ॥४॥

साँची प्रीत लगी है तुमसूँ, झक मारो संसाराजी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, थाँनै भक्त पियाराजी ॥३॥

स्वजीवन ८६

राणै म्हाँनैं ऐसी कही महाराज ॥०॥
भगतण होय मीराँ जगत लजायो, कीन्हौं सारो राज ।
जावोनैं मीराँ म्हाँनैं मुख न दिखावो, म्हाँनैं आवै थारी लाज ॥१॥
लाजै मीराँ पीहर सासरो और लाजै म्हारो राज ।
गोपी चंदण तुलसी की माला भीख माँगण रो साज ॥२॥
धन मीराँ धनि मेडतौ धनि राठोडो राज ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चलि आयो ब्रजराज ॥३॥

प्रेम ८७

लटपटी पेचा बांधी राज ॥०॥
सास बुरी घर ननद हटीली । तुम जो आगे कियो काज ॥१॥
निसदिन मोहे कल न परत है । बंसी ने सारो काज ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल सिरताज ॥३॥

श्रीद्वारिकाधीश-महिमा ८८

श्री द्वारिका में राज करे जी रणछोड़ ॥०॥
लाल पाग केसरिया जामा, टेढी धरत मरोर ॥१॥
बारे (बारे) कोस की (झाडी) लगत है, तू मनडारो कोर ॥२॥
बारे (बारे) कोस की खाडी पड़त है, मल्लाह बड़ा है कठोर ॥३॥
मंदिर मंदिर झालर बाजै, घंटन की घनघोर ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसण द्यो चितचोर ॥५॥

अनन्यता ८६

सजन सुध ज्यों जानों ज्यों लीज्यो ॥०॥
हूँ तो दासी जनम जनम की, कृपा रावरी कीज्यो ॥१॥

अनन्यता ९३

हरि मेरे नयनन में रहियो।
रात दिवस आगे आगे डोलो घरि पल अलग मति रहियो ॥०॥
कोई को प्यारे लड़का रे लड़की कोई को प्यारे व्हेन और भैयो।
कोई को प्यारी अजब सुन्दरी। हमरे प्यारो नंदबाबाजी को छोरैयो॥१॥
कोई को बल है मात पिता को। कोई को बल कुटुंब की सबैयो।
कोईक कहे मैं आप बलियो। हमारे बल है राज रामैयो ॥२॥
कोईक होसी कोपीन धारण की लयो। कोई कपड़ा पहेरी बडैयो।
कोई होसिक धन मालन को। हमरो होसी हरिचरण को छैयो ॥३॥
कोई पढ़त चतुर भयो। काँके राजरंग की गवैयो।
मीराँ के प्रभु तुम्हरे मिलन को। प्रेम सहित कृष्ण कृष्णं कहियो ॥४॥

भक्त-वत्सलता ९४

थाने विरदु घटे कैसो भाई रे ॥०॥
सेना नायको संसो मेटो, आप भयो हरि नाई रे ॥१॥
नामाछिपी देवल फेरो, मृत्यु की गाय जिवाई रे ॥२॥
राणा ने भेज्यो विष को प्यालो, पीवे मीरांबाई रे ॥३॥

शरणागति ९५

नाव किनारे लगाव, प्रभुजी नाव किनारे लगाव ॥०॥
नदियाँ गहरी नाव पुराणी, डूबत जहाज तराव ॥१॥
ग्यान ध्यान की सांगड बाँधी, दबरे दबरे आय ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पकरो उनके पांव ॥३॥

सत्य-महिमा ९६

मेरे तो आज सांचे राखे हरि ॥०॥
सांचे सुदामा अति सुख पायो, दारिद्र दूर करी ॥१॥

हरि मंदिर में नाचुं राचुं, करसे बजावुं ताल ॥१॥
नाच नाच मेरे मन कुं रीझावुं, हरि गुण गाऊं रसाल ॥२॥
जप तप साधन कछु न जानुं, ऐसे भई मैं न्याल ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल प्रतीपाल ॥४॥

आत्म-निवेदन १०० (गुज०)

जागो तमे जदुपतिराय। आवोने अंतर खोलीए।
एक पल घुंघटानी मांह्य हसीने हरी बोलीए होजी ॥०॥
तन मन धन कुरवान जाउं व्हाला तारे वारणे।
मेली म्हेंतो म्हारा कुलनी लाज गिरधारी तारे कारणे होजी ॥१॥
नथी दीधां कथीरनां दान कुन्दन क्यांथी पामीए।
हजी लगी ना'व्यां रे वैमान इन्द्रासन क्यांथी मागीए होजी ॥२॥
तमे छो मोटा महाराज अम पर करूणा कीजिए।
एमकरी बोल्यां मीरांबाई दासी ने दर्शन दीजिए होजी ॥३॥

शरणागति १०१ (गुज०)

शरणे थांने आइ छुं हे राजा रणछोड़ ॥०॥
ब्राह्मण दुःख दीओ अंतर में, पेठी मंदिर दोड़ ॥१॥
कमसें पाछी जाउं जगत में, लागे मने मोटी खोड़ ॥२॥
अपनी छीगरी राखो सांवरा, विनती करूं कर जोड़ ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, देखो मेरी ओर ॥४॥

आत्म-निवेदन १०२ (गुज०)

प्रभु पालव पकडीने रही छुं पूरण प्रेमथी रे, मारा छेल छबीला
अंतरनाआधार, उभी अरज करे छे मीरांबाई रामने रे ॥०॥
मुज दासी तणां दुःख सर्वे दूर करो रे, शीश नामुं मारा सद-
गुरूने प्रणाम, उभी अरज करे छे मीरांबाई रामने रे ॥

साखी

रूपाळा रणछोडजी, लळी लळी लागुं पाय ।
राणा घेर जावुं नथी, एवो करचो ठराव ॥
हवे शरणागत नी व्हारे चढ़जो विट्ठला रे,
प्रभु कृपा करीने राखो मीराँ चरणनी पास—उभी०॥६॥

शरणागति १०३

किसनजी नहीं कंसत घर जावो ॥०॥
तुम नारी अहल्या तारी । कुंटण कीर उद्धारो ॥१॥
कबीर के द्वार बालद लायो । नरसी को काज सुधारो ॥२॥
तुम आये पति मारे देह को । तिन पर तन मन वारो ॥३॥
जन मीराँ शरण गिरधरी की । जीवन प्राण हमारो ॥४॥

अनन्यभाव १०४

सांवराजी ! तुम लग मेरी दौर ॥०॥
मात पिता सुत भाई बंधु, मिल मिल भये और ॥१॥
जात पात कुल सैण संगाती, सबसे बैठी तौर ॥२॥
या जुग में प्रभु कोय न मेरो, लोक करत सब सौर ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मिलो मिलो नंदकिशोर ॥४॥

व्यङ्ग १०५ (गुज०)

सुरज उगे ने साधन साधे, हांरे तारूं भजन करे भजनी रे ।
हो रसियाजी ! क्यांरे रम्या रजनी रे ॥०॥
आजनुं रे सुखडुं कहे रे मने प्रभुजी ।
सांभळी ने पूछे सजनी रे······हो रसियाजी ॥१॥
मोर मुगट ने काने रे कुंडळ ।
वळी चाल चले गजनी रे ॥२॥

घोडाणो बहु नामी ने सेवा, जे बोलडीए थंधाणा ।
हेत करी हरि घरे पधारया, तो जगत मां जणाणा ॥१॥
गुगली वांसे गोतवा आव्या, अध वच थी अटकाणा ।
वावमां वा'लो आपे विराज्या, तो स्नान करीने संताणा ॥२॥
सोना भारो भार मूल करावी, वाल सवाये जोखाणा ।
ब्राह्मण ने भोडापणु' आव्यु', तो भगतवत्सल कहेवाणा ॥३॥
गुजरात मध्ये रची रे द्वारका, वेद पुराणे वंचाणा ।
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, डाकोर मां दीरसाणा ॥४॥

भक्त-वत्सलता १०६ (गुज०)

नाथ तमे निर्धनीयानु' नाणु', मुने वालु लागे प्रेम गाणु' ॥०॥
कु'वरवाई ने सीमंत आव्यु', मे'ता ने मले नाणु' ॥१॥
मानवीए मलीने सोर मचाव्यो, ने कबीर ने नो'तु ठेकाणु' ।
पोठ भरीने हरि घेर आव्या, तो त्रिकमे साचव्यु' टाणु' ॥२॥
दुरजोधन ने वीडु' फेरवीयु' तो विदुरने न आपे कोई माणु' ।
भाजी मांथी भोजन निपाव्यां, तो सहेर वधु' संतोकाणु' ॥३॥
ज्यां जोईए त्यां सवरस भरिया ने ठाम नहीं कांई ठालु' ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, तो अंतर मां आ लेखाणु' ॥४॥

आतुरता ११०

जल्दी पधारो नाथ विपत पडी है ।
आप बिना म्हारो कोण धणी है ॥०॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी ।
जमुना किनारे प्रभु फौज्या पड़ी है ॥१॥
गुरू बिना ज्ञान गंगा बिना तीरथ ।
एकादशी बिन बरत कस्यो रे ॥२॥

में तो थांरी सतसंग करस्यां, लीजिये वेग उबारी ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रभु के चरणाँ बलिहारी ॥४॥

स्वजीवन ११३

प्रभुजी अरज बंदी री सुण हो ॥०॥
मो नुगुणी रा सुगुणा साहब अवगुणधारी रा गुण हो ॥१॥
राणाजी विस को प्यालो भेजो मो चरणामृत को पण हो ॥२॥
म्हाँरी पत परमेश्वर रापत मारणवालो कुण हो ॥३॥
प्रभुजी उचले मँदिर (सीतारामजी) बिराजे मोय दरसण
री पण हो ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर में जाणु राणोजी कुण हो ॥५॥

भक्त-वत्सलता ११४ (गुज०)

हरि मारे हृदये रहेजो, प्रभु मारी पासे रहेजों,
जो जो न्यारा थाता राम, ते दीन नो विश्वास छे ॥०॥
धना भगते खेतर खेड्यु वेलु वावी घेर आव्याराम।
ते संतजनो ना पात्र पुर्या, घणांना गाडां आव्याराम ॥१॥
ते जुनागढ़ ना चोक मां जेदी, नागरे हठो लीधी राम।
ते नरसीयानी हुंडी लईने, द्वारका मां दीधी राम ॥२॥
ते मीरांबाई ने मारवा जे दी, राणे खड़ग लीधी राम।
ते झेरना प्याला अमृत करीआ त्रीकम टाणे पधार्या
राम ॥३॥
ते भीलड़ी ना अेठां बोर तमे, प्रेमथी अरोग्या राम।
ते त्रण भुवना ना नाथ तमने मीरांबाई अे गाया राम ॥४॥

थाँरी संगत में जो कोई आवे । ज्याँरी क्यों न करो रखवारी ॥१॥
म्हाँने तो राज रो वडो भरोसो । काहे गये हो विसारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । लीजो खबर हमारी ॥३॥

लवींग सुपारी ने पाननां बीड़ला रे।

येलची दाणां ने तज पांखड़ी रे ॥२॥

सात्र सोनानां वाला सोगटां × ढळाउं रे।

रमवा आवो तो जाय रातड़ी रे।

बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,

जोता ठरे छे मारी आंखड़ी रे ॥३॥

१४—पद-पाठान्तर:—

तुम सुनो नाथ मोरी अरजी ॥०॥

भव सागर के पार उतारो। त्यारो तो थारी मरजी जी ॥१॥

दुख विपता में बही जात हूँ। राखो ने बाँहां पकड़ी जी ॥२॥

मात पिता अरु कुल परिवारा। ए मतलब के गरजी जी ॥३॥

और सखीन की सेज सलूनी। मैं मंद भागण सरजी जी ॥४॥

मीराँ कहै प्रभु हरि अविनाशी। तिहारे भजन कूं मैं सरजी जी ॥५॥

चरण लगाओ गिरधर जी ॥

१५—धीजै=संतुष्ट होते हैं, धैर्य रखते हैं। पतीजै=विश्वास करता है।

पाठान्तर टेर:—

राम म्हारी लागी प्रीति निभाज्यो जी।

प्रभु अब मत बिसर जाज्यो जी ॥०॥

१६—नेह=लगन। मूक्यु=छोड़ा। धामज=घरभी। खभे छे=कंधे पर है।

२२—विछुरन.........हथमनिया=प्राप्त कर लेने पर पल भर भी बिछुड़ने नहीं दूंगी—हाथ सुमरनी ज्यों उन्हें रखूंगी। वेग=शीघ्र। पावनिया=पाहुने।

२४—सरत=होड़, दाँव। व्रजनन्द.........तने=भक्त और भगवान में होड़ लगी है।

रोम रोम अर्पण है थाँके सुण लीज्यो घनश्याम ॥
थांका मुखड़ा ऊपर जाऊँ वलिहार ॥३॥
साँवरि सूरति मन में वसी जी घुंघर वाले केश ॥
जादूगरी वंसरी जी नटनागरियो वेश ॥
म्हारा आँगणियाँ में निरत कराय ॥४॥
पलकाँ पर पग मेलता जी उतरया मंदिर वीच ॥
पूजन करस्यूं भोग लगास्यूँ दोन्यूं आख्याँ वीच ॥
थाँका चोखा चोखा करूँली सिनगार ॥५॥
नेह नदी पर रास रच्यो छे अठे छे जमुना तीर ॥
कृष्ण राधिका एक ज्योति में रहस्यां यादव गीर ॥
करस्याँ जमुना जल में युगल विहार ॥६॥
स्वर्ण सिंहासन के ऊपर प्रभु पटको विछायो चीर ॥
मैं तो कछु जानूँ नहीं तुम जानो यदुवीर ॥
गावे मीरां वाई भजन वणाय ॥७॥

३८—हय·········संघारयो=अश्वशरीर धारी केशी दानव को मारा।

४०—हींडत है=(जिसके वहाँ) डोलते हैं।

४२—मने·········गमतो=मुझे नहीं भाता। साधु·······वांधी=साधु-संगति में मेरी प्रीति वँध गई। प्रेम·········राजी=प्रेम निमग्न होने से ही संतुष्ट हूँ। कोटडी मां=कक्ष में। ऊंव=निद्रा। अज्ञाननी····· ···जागी=अज्ञान आत्म विस्मृत करने वाला और तमोगुण का द्योतक है और प्रेम के सात्विक प्रकाश में ज्ञान की जागृति रहती है।

४५—करण मां=कान में। ये·········चरण मां=ये मेरे गुरुजी के चरणों में हैं। मारे=मेरे। न जोशो=मत देखना। आडे आवजो=सुधि लेना।

८१—बानो·········खेलोरे=ऊपरी भेष धारण कर क्यों गर्व करता है, मुक्ति का मार्ग कोई खेल नहीं। आगा·········ताको=आगे बढ़कर फिर पीछे मत हटो अर्थात् भक्ति पंथ पर आगे बढ़ते हुए पीछे संसार की ओर दृष्टि मत डालो। दफतर नांहिं चढैलो=अस्थिर चित्त से किया गया साधन प्रभु को स्वीकार नहीं।

८३—म्हारा·········हजूरी=हे मेरे प्रभु, मेरे मन में आपकी सेवा की चाहना है, क्या इसे अपनी शरण में नित्य की सेवा में रख लोगे? भाँवै=अथवा तो। कंगनी=अन्न विशेष। कूरी=कदन्न। जो·········पूरी=जो तुम दोगे वही मैं लूँगी, यह मेरा पूरा निश्चय है।

८४—म्हारो·········परसूँ=मेरा जन्म उस दिन सफल होगा जब मैं हरि के चरण स्पर्श करूँगी।

८६—भगतण·········राज=हरि भक्त होकर संसार को तथा सारे राज को नीचा दिखाया है। जावो नैं·········लाज=जाओ मीराँ मुझे मुँह न दिखाना, तुम्हारे लिये मुझे लाज आती है।

९०—कायागढ़···आप रखाज्यो=देह रूपी गढ़ को काम क्रोधादि शत्रुओं ने घेर लिया है उनसे रक्षा करना।

९२—आद·········कलोलाँ=तुम ही मेरे आदि अंत और तन मन धन हो इसलिये तुम्हारे ही साथ आनंद क्रीड़ा करें।

९५—सांगड=नाव। दवरे=दौड़े।

९७—मदन·········पाया=मदन मोहन की सेवा में मासिक वेतन क्या मिलता है? तीन·········लिखाया=घर बार सब त्यागने के पश्चात् निर्भय होकर प्रभु-प्रेम में विचरने के लिये संसार के चारों खूँट मुक्त हो गये।

१००-कथीर नां=राँगा का। कुन्दन=स्वर्ण। पामीए=पावें। हजी लगी=अब तक। ना' व्यां=नहीं आये।

१०१—कमसे·········खोड़=यदि पूर्वाश्रम में जाने पर अर्थात् सांसारिक प्रपंच को स्वीकार करने से मेरे वर्तमान भक्ति-प्रेम के मार्ग में बड़ी भारी बाधा उपस्थित होगी।

किया। सहेर.........संतोकाणु = सारा नगर संतुष्ट हुआ। ज्यां जोईए.........ठालु = जहाँ देखो वहीं सब पदार्थ भरे-पुरे हैं, कोई भी पात्र खाली नहीं रहा। अंतर मां-आलेखाणु = हृदय में भगवद् लीला अङ्कित हो चुकी।

११२—प्रतंग्या = प्रतिज्ञा।

११३—अरज = प्रार्थना। वंदीरी = दासी की। सुण = सुन लेना। मो = मुझ। मो.........गुण हो = मुझ जैसी गुण हीन अथवा अवगुण वाली के तुम गुणवान स्वामी हो। विस = विष। मो......... पण हो = (श्री हरि) चरणामृत का (को स्वीकार करने का) मेरा नियम है। म्हाँरी = मेरी। पत = लाज। रापत = रखते हैं। मारण वालो = मारने वाला। कुण = कौन। उचले = ऊपर के। मोय.........पण हो = दर्शन करने का मेरा प्रण है। जाणु = जानती हूँ।

११४—मारी पासे = मेरे निकट। जो जो.........राम = देखना कहीं मुझ से पृथक् न हो जाना। भगते.........खेड्यूँ = भक्त ने खेत जोया। वावी = बोकर। अंठा = जूठे।

———

भविष्य का उत्तरदायित्व है उन्हें तो कभी ऐसी बातों में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। अपने कल्याण का मार्ग सोचने में तो अत्यन्त ही विवेक और विचार परमावश्यक है। शनैः शनैः विवेक-विचार सत्संग-ज्ञान, प्रेम-भक्ति आदि साधन और अभ्यास से ही बुद्धि स्थित-प्रज्ञा की कोटि को पहुँचती है।

संसार में जो भी उच्च कोटि के संत-महात्मा हुए उन सभी को अपने जीवन में अपनी बुद्धि द्वारा एक 'निश्चय' कर दृढ़ता पूर्वक उसके अनुसार अपना कर्त्तव्य करने का महत्त्व का क्षण आया है।

सारासार विचार पूर्वक किया गया भी किसी एक व्यक्ति का निश्चय, सभी को सुखदाई और अनुकूल ही हो यह नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, व राष्ट्र इनमें से किसी के हित में किया गया 'निश्चय' औरों के लिये कभी-कभी तो महान आपत्तिकर भी सिद्ध होता है।

'प्रतिज्ञा' यह निश्चय का ही स्वरूप है परन्तु प्रतिज्ञा का क्षेत्र सीमित रहता है जब कि 'निश्चय' का व्यापक। प्रतिज्ञा तो कभी कभी भावावेश में अथवा हृदय पर आघात होने पर भी की जा सकती है परन्तु निश्चय तो विवेक-विचार द्वारा ही होता है। 'प्रतिज्ञा' का फल कभी किसी रूप में अनर्थ भी हो सकता है परन्तु 'निश्चय' का फल तो आत्म-हित एवं लोक-हित ही अवश्यम्भावी है। सब संत-महात्मा, मुनि-ज्ञानी, आदि महापुरुषों के चरित्रों में भी यही देखा जाता है।

और संत-महात्माओं से मीरांबाई की परिस्थिति सर्वथा विपरीत थी। प्रथम तो वह अबला-नारी, फिर राजकुल में

अर्थात्

हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि।
हिरदै तें जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥
निश्चया चे बळ तुका म्हणे हें चि फळ॥ तुकाराम
नीन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

———

'निश्चय' मीराँ की वाणी में

किसी भी परिस्थिति में विवेक पूर्वक किया गया निश्चय कल्याणकारी होता है फिर नित्यानित्य वस्तु विवेक तो जीवन-मरण के प्रश्न को सुलझाने वाला चरम-ध्येय को लेकर होता है।

सकल शास्त्र व सब संत-महात्मा जिसके लिये पुकार पुकार कर कहते आये व कह रहे हैं—मीराँ के हृदय में भी उसी नित्यानित्य वस्तु विवेक का पूर्ण निश्चय हुआ, यथा--(२)संसार नुं सुख एवुं, झांझवाना नीर जेवुं, तेने तुच्छ करि फरिये रे।

जब संसार ही मिथ्या तो संसार के प्राणी मात्र भी सभी नाशवान और सांसारिक व व्यवहारिक सम्बन्ध भी अनित्य हैं। इसीलिये मीराँ कहती है, (३) ऐसे वर को के वरूं, जन्मे सो मर जाय। वर वरसूँ कृष्ण साँवरो अमर चूडो हो जाय॥ इसी बात की वह और पुष्टि करती है—(१०) जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई। (९३) मैं तो दासी जनम जनम की, कृष्ण कंथ-भरतार॥

निन्दो कोई विन्दो, मैं चलूँगी चाल अनूठी, चढ़ गयो रंग मजीठी। (५६) साध संगत मैं नित उठ करस्यूं, भल निंदो संसार। (८६) कोई खरी कोई खोटी कहे, मैं प्रेम रीति सुहाती। (८८) अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई, होनी हो सो होई।

लोक-लाज व कुल की मर्यादा का भी किसी सीमा के पश्चात् त्याग आवश्यक है,-(७) लोक-लाज कुल की मरजादा, या में एक न राखूँगी। (३५) लाज सरम कुल की मरजादा, सिर से दूर करी। मान अपमान दोउ धर पटके, निकसी हूँ ज्ञान गली॥

इन बातों का विरोध यदि राणा स्वयं करता है तो उसके लिये भी मीराँ का स्पष्ट उत्तर है,-(३५) तेरो कोई नहिं रोकण-हार, मगन होय मीराँ चली। (३६) प्रकट निसान बजाय चली मैं। मीराँ सबल धणी के शरणे, कहा भयो भूपति मुख मोरयो। (४६) कांई करेगा मारो राजा राणा।

ज्ञान ३

सासरे नहीं जाऊँ म्हाने मिल गया मदन गोपाल ॥०॥
सास हमारी सुखमना सुसरा है संतोष ।
जेठ जगत कर जाणियो नाम धरया निर्दोष ॥१॥
ऐसे वर को के वरूँ जन्मे सो मर जाय ।
वर वरसूँ कृष्ण साँवरो अमर चूड़ो हो जाय ॥२॥
लख चोरासी चूड़लो पहरयो हरि विश्वास ।
बाँय पकड़ मोरी लेचले पूर्वले घर वास ॥३॥
गगन मण्डल में सासरो पीहर वैकुण्ठावास ।
चोरासी को बालमो गावे मीराँ दास ॥४॥

प्रेम ४

ज्यूँ अमली के अमल अधारा । यूँ रामैया प्रान हमारा ॥०॥
कोई निन्दै वन्दै दुख पावे । मोकूँ तो रामैयो भावै ॥१॥

विवेक ५

कूडो वर कुँण परणीजे माय ॥०॥
लख चौरासी को चुड़लो रे वाला, पहरयो कीतियक वार ।
के तो जीव जाणत है सजनी, के जाणे सिरजण हार ॥१॥
सात वरस की मैं राम आराध्यौ, जब पाया करतार ।
मीराँ ने परमातम मिलिया, भव भव का भरतार ॥२॥

ज्ञान ६

हेली सुरत सोहागिन नार, सुरत मेरी राम से लगी ॥०॥
लगनी लहँगो पंहर सुहागण, बीती जाय बहार ।
धन जोबन है पावणा री, मिलै न दूजी वार ॥१॥
राम नाम को चुड़लो पहिरो, प्रेम को सुरमो सार ।
नक बेसर हरि नाम की री, उतर चलोनी परले पार ॥२॥
ऐसे वर को क्या वरूँ, जो जनमें और मर जाय ।

माणिक मोती परत न पहिरूँ, मैं कबकी नट की ।
गेणो तो म्हाँरे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी ॥२॥
राज कुल की लाज गमाई, साधाँ के सँग मैं भटकी ।
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्याँ, नाच्याँ दे दे चुटकी ॥३॥
भाग खुल्यो म्हाँरो साध संगत सूँ, साँवरिया की बटकी ।
जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड़ गई पटकी ॥४॥
परम गुराँ के सरन मैं रहस्याँ, परणाम कराँ लुटकी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी ॥५॥

अनन्य भाव　　　　　　　　१०

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ॥०॥
जाके सिर मोर मुकट, मेरो पति सोई ।
　　　　तात मात भ्रात बंधु, आपनो न कोई ॥१॥
छाँडि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई ।
　　　　संतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई ॥२॥
चुनरी के किये टूक, ओढ़ लीन्हीं लोई ।
　　　　मोती मूँगे उतार, बनमाला पोई ॥३॥
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई ।
　　　　अब तो बेल फैल गई आणंद फल होई ॥४॥
दूध की मथनियाँ, बड़े, प्रेम से बिलोई ।
　　　　माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई ॥५॥
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई ।
　　　　दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोही ॥६॥

ज्ञान　　　　　　　　　　११

राम रंग लागो, मेरे दिल को धोको भागो ॥०॥

गुरू के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम-प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी ॥२॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साधाँ सँग रहूँगी ॥३॥

अनन्यभाव १४ (गुज०)

सुन्दीर श्याम शरीर, मारे दील सुन्दीर श्याम शरीर ।।०॥
कोइ ने भाव भवानी उपर, कोइने वाला पीर ॥१॥
गंगा रे कोइने ने जमना रे कोइने, कोइने अड़सठ तीर ॥२॥
कोइने रे हस्ती कोइने रे घोड़ा, कोइने ते महोल मंदीर ॥३॥
मीरां वाइ के प्रभु गीरधर ना गुण, हरि हळधर केरा वीर ॥४॥

प्रेमलगन १५ (गुज०)

शुं करूं राणाजी मारूं चितडुं चोराये, मारूं मनडुं वेंधाये,
शुं करूं ॥०॥
करवां न सुझे अमने घरनां रे काम,
भोजन ना भावे नयणे निद्रा हराम ॥१॥
जळ जमना ने कांठे उभा बळीभद्र वीर,
वंसरी वजावे वहालो जमना के तीर ॥२॥
उभी वजारे गज रथ चाल्यो रे जाय,
श्वान भसे तो तेनी संख्या ना थाय ॥३॥
अब रे मारे रे पेला दुर्जन लोक,
चितडुं चोरयुं तो तेनी शीखामण फोक ॥४॥
त्यां शामळीयो गिरधारी त्यां मारी आश,
हरखी निरखी गाय मीराँ दास ॥५॥

महेल ने माळ मारे काम न आवे राणा

जंगल झुँपडीमां जइ वसवुं छे ॥४॥

घँऊँ रे चोखलिया मारे काम न आवे राणा

भिक्षा मांगीने मारे खावुं छे ॥५॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वाला

अमर चुडलो लइने मारे मरवुं छे ॥६॥

साधु-श्रद्धा १८

राणाजी में आदू वैरागण नार ॥०॥

साधु आया पावणा, साँगे चार रतन।

धूँणी पाणी साँतरा, सरधा सेती अन्न ॥१॥

साधू मेरी आतमा, म्हारे साधांरा भाव।

रोम रोम में रम रह्या, बिंदरावन का राव ॥२॥

साधु मुगत का पोलिया, कूँची ज्याँके हाथ।

ताला झाड़े प्रेम का, खोले मुक्त का द्वार ॥३॥

मीराँ जनमी मेड़ते, लेख लिख्या चित्तौड़।

धन मीराँ धन मेड़तो, धन धन हो राठौड़ ॥४॥

हरिगुण गान १९

राणाजी म्हे तो गोविंद के गुण गास्याँ ॥०॥

चरणाम्रित को नेम हमारे। नित उठ दरसण जास्याँ ॥१॥

हरि मंदिर में निरत करास्याँ। घूँघरिया घमकास्याँ ॥२॥

राम नाम का झाझ चलास्याँ। भवसागर तर जास्याँ ॥३॥

यह संसार बाड़ का काँटा। ज्या संगत नहिं जास्याँ ॥४॥

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। निरख परख गुण गास्याँ ॥५॥

ज्ञान २० (गुज०)

अखंड वर ने वरी सहेली हूँ तो अखंड वर ने वरी ॥०॥

सोना नी झारी नो राणा नीर नहिं भावे ।
कड़वी तुमड़ियां मन भावे ॥२॥
लाडु जलेबी राणा कछु नहिं भावे ।
खाटी रावड़िया मन भावे ॥३॥
साल तो दुसाला राणा काम नहिं आवे म्हारे ।
फाटी कामलिया मन भावे ॥४॥
बाई मीराँ के छे वाला गिरिधर नागर ।
चरण कमल मन भावे ॥५॥

संतश्रद्धा २४

राणो मारो कांई करी है मीराँ छोड़ दई कुल लाज ॥०॥
डब्बा खोली मीरां जब देख्यो हो गये शालिग्राम ।
जय जय ध्वनि सब संत सभा भई, कृपा करी घनश्याम ॥१॥
साजि शृँगार पग बाँधी घूँघरू, दोउ कर देती ताल ।
ठाकोर आगे नृत्य करत रही, गावत श्री गोपाल ॥२॥
साधु हमारे हम साधुन के, साधु हमारे जीव ।
साधुन मीराँ मिली रही है, जिमि माखन के बीव ॥३॥

मेवाड़-त्याग २५ (गुज०)

गोविंदो प्राण अमारो रे, मने जग लाग्यो खारो रे ।
मने मारो रामजी भावे रे, बीजो मारी नजरे न आवे रे ॥०॥
मीरांबाई ना महेल मां रे, हरि संतन नो वास ।
कपटी थी हरि दूर वसे, मारा संतन केरी पास ॥१॥
राणोजी कागळ मोकले रे, दो राणी मीराँ ने हाथ ।
साधुनी संगत छोडी दो, तमो वसोने अमारे साथ ॥२॥
मीरांबाई कागळ मोकले रे, देजो राणाजी ने हाथ ।
राज पाट तमे छोडी राणाजी, वसो साधु ने साथ ॥३॥

विश्वास २७

मैं तो तेरे भजन भरोसे अविनासी ॥०॥
तीरथ वरत ते कछु नहिं कीनो । वन फिरे है उदासी ॥१॥
जंतर मंतर कछु नहीं जानूं । वेद पढ़ो नहीं कासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । भई चरण की दासी ॥३॥

प्रेमालाप २८

हरि गुण गावत नाचूँगी ॥०॥
अपने मंदिर मों बैठ बैठ कर गीता भागवत वाँचूँगी ॥१॥
ग्यान ध्यान की गठरी बाँधकर हरि हर संग मैं नाचूँगी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सदा प्रेमरस चाखूँगी ॥३॥

वैराग्य २९

म्हांरे गेणो गोविन्द नो नाम छे रे ।
म्हांरे गेणो गोविन्द नों नाम छे ॥०॥
तिलक छापा म्हारे तुलसां री माला ।
यो ही मारा मनडा रो हार छे रे ॥१॥
असरू ने मसरू पाट पिताम्बर ।
भगवा चादर ही तमाम छे रे ॥२॥
हीरा जो पन्ना मानक ने मोती ।
सोना रूपा थी नथी काम छे रे ॥३॥
लाड़ू जो पेडा सरस जलेबियां ।
सूखी लूखी थी म्हारे काम छे रे ॥४॥
मीरांबाई के छे प्रभु गिरधर नागर ।
हरि ना चरणा थी म्हारे काम छे रे ॥५॥

मीराँ को गिरधारी मिलिया, जनम जनम भर भार ।
मैं तो दासी जनम जनम की कृष्ण कंथ भरथार ॥४॥

प्रेमपथ ३३

राणाजी म्हांने या बदनामी लागै मीठी
(मेवाड़ा राणा, सीसोद्या राणा, या बदनामी लागै मीठी) ॥०॥
सांकडी सेरी में म्हारा सतगुरु मिलिया,
किस विध फिरूं म्हूँ अपूठी ॥१॥
थारा ता राम मीरां म्हाने बतावो, नीतर सेवा थांरी झूठी ॥२॥
म्हारा तो राम राणाजी सबमें विराजे, हिया ललाडी थाणी फूटी॥३॥
कोई निन्दो कोई विन्दो— मैं चलूँगी चाल अनूठी ॥४॥
सतगुरुजी सूँ बात ज करताँ, दुरजन लोगाँ ने दीठी ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चढ गयो रंग मजीठी ॥६॥

त्याग ३४

न भावे थाँरो देसड़लो जी रँग रूड़ो ॥०॥
थाँरा देसाँ में राणा साध नहीं है, लोग बसै सब कूडो ॥१॥
गहणा गाँठी राणा हम सब त्याग्या, त्यागो कर रो चूडो ॥२॥
तन की आस कछु नहीं कीनी, ज्यूं रण माहीं सूरो ॥३॥
घूँघट को पट खोल दियो है, सिर पर बांध्यो जूडो ॥४॥
मेवा मिसरी मैं सबही त्यागा, त्यागा छे सक्कर बूरो ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छे रूडो ॥६॥

ज्ञान ३५

तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होय मीराँ चली ॥०॥
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर सैं दूरि करी ।
मान अपमान दोउ धर पटके, निकसी हूँ ग्याँन गली ॥१॥

काम क्रोध को डाल को रे, सील लिए हथियार ।
जीती मीरां एकली रे, हारी राणा की धार ॥६॥
काचगिरी का चौतरा रे, बैठे साध पचास ।
जिनमें मीरां ऐसी दमके, लख तारों में परकास ॥७॥
टाँडा जब वे लादिया रे, बेगी दीन्हा जाण ।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली है पुष्कर न्हाण ॥८॥

स्वजीवन ३८

मीरां रंग लागो राम हरी, और न सब रंग अटक परी ॥०॥
चूड़ो म्हारे तिलक अरू माला, सील बरत सिंगारो ।
और सिंगार म्हारे दाय न आवे, यो गुरुज्ञान हमारो ॥१॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो, गुण गोविंद का गास्यां ।
जिन मारग-म्हारा साध पधारे, उण मारग म्हे जास्यां ॥२॥
चोरी न करस्यां, जिव न सतास्यां, काई करसी म्हारो कोय ।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्यां, ये तो बात न होय ॥३॥
सती न होस्यां गिरधर गास्यां, म्हारो मन मोह्यो घणनामी ।
जेठ बहू को नातो न राणाजी, हूं सेवक थे स्वामी ॥४॥
गिरिधर कंथ गिरधर धनि म्हारे, मात पिता वोइ भाई ।
थे थारे म्हे म्हारे राणाजी, यूं कहे मीरां बाई ॥५॥

स्वजीवन ३६

मेरो मन हरि सूं जोरचो, हरि सूं जोर सकल सूं तोरचो ॥०॥
मेरी प्रीत निरन्तर हरि सूं, ज्यूं खेलत बाजीगर गोरचो ।
जब मैं चली साध के दरशण, तब राणो मारण कूं दोरचो ॥१॥
जहर देन की बात विचारी, निरमल जल में ले विष घोरचो ।
जब चरणोदक सुण्यो सरवणा, राम भरोसे मुख में ढोरचो ॥२॥

दधि मथ घृत काढ लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥३॥
अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई।
मीराँ राम लगण लगी होणी होय सो होई ॥४॥

अनन्यभाव ४३

हेली म्हाँसूँ हरि बिन रह्यो न जाय ॥०॥
सास लड़ै मेरी ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठाई, ताला दियो जड़ाय ॥१॥
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, और न आवे म्हाँरी दाय ॥२॥

भक्त-वत्सलता ४४

मेरे सिर राम गरीबनिवाज मेरे सिर राम गरीब निवाज ॥०॥
कंचन कलस सदामां कु दीनो होंडत है गजराज ॥१॥
रावण के दस मस्तक छेदे दियो भभीखण राज ॥२॥
द्रोपदी सती को चीर बधायो अपणे जन के काज ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी कुल की राखी लाज ॥४॥

प्रेमालाप ४५ (पंजाबी)

पीया मैं तेरी बंदी हो ॥
गरक भई गुण तौरडै। बिन मोल बकंदी हो ॥०॥
मैं बेहन तूं बहु गुनी। दोउ सिंध मिलंदी हो।
जो तुमकी प्रीतम नां मिलौ। तो मैं बह जंदी हो ॥१॥
रूप लुभांनी लोयना। मैं चलु तेरी छंदी हो।
गुजि की बांतां तुम्हि सु। ऊंल जूं कहंदी हो ॥२॥
प्राण सनेही सजनां। दुख टालन दंदी हो।
मीराँ के प्रभु रामजी। तेरी चेरी कहंदी हो ॥३॥

आ रे जगतडाने जोई ने वारो रे।
अमर पछेड़ो कोणे लीधो रे ॥१॥
आ रे शरीर ना सरवे सुखडाँ रे।
छे अमे त्यागी दीधो रे ॥२॥
म्हारा रे मनड़ा रे बहुंरे समझाव्यो रे।
जोग जंगलनो मैं लीधो रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधरना गुण।
स्वर्ग पुरी नो मारग लीधो रे ॥४॥

मिथ्याभिमान ४९

सब जग रूठड़ा रूठण द्यो, एक रामजी रूठो नहीं भावे ॥०॥
गरब कियो रतनागर सागर, नीर खारो कर डारयो ॥१॥
गरब कियो उण चकवा चकवी, रैण विछोवो पारयो ॥२॥
गरब कियो उण बन की कोयल, रूप श्याम कर डारयो ॥३॥
गरब कियो लंकापति रावण, टूक टूक कर डारयो ॥४॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, हरि के चरण तन वारयो ॥५॥

ज्ञान ५०

आवो सहेल्याँ रळी कराँ हे पर घर गवण निवारि ॥०॥
झूठा माणिक मोतिया री झूठी जगमग जोति।
झूठा सब आभूखण री साँची पियाजी री पोति ॥१॥
झूठा पाट--पटंबरा रे झूठा दिखणी चीर।
साँची पियाजी री गूदड़ी जामें निरमल रहै सरीर ॥२॥
छप्पन भोग बुहाय देहे इण भोगन में दाग।
लूण अलूणो ही भलो हे अपणे पियाजी रो साग ॥३॥
देखि विराणे निवाँण कूँ हे क्यूँ उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो हे जामें निपजै चीज ॥४॥

चंदा जायगा सूरज जायगा जायगी धरण अकासी ।
पवन पाणी दोनूँ ही जायँगे अटल रहै अविनासी ॥३॥
और सखी मद पी-पी माती मैं विन पीयाँ ही माती ।
प्रेमभठी को मैं मद पीयो छकी फिरूँ दिन-राती ॥४॥
सुरत निरत को दिवलो जोयो मनसा की करली वाती ।
अगम घाणि को तेल सिंचायो वाळ रही दिन-राती ॥५॥
जाऊँ नी पीहरिये जाऊँ नी सासरिये हरि सूँ सैन लगाती ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित लाती ॥६॥

प्रेम की लगन ५३ (पूर्वी)

हमरे रौरे लागलि कैसे छूटै ॥०॥
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हम रौरे बनि आई ॥१॥
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा ॥२॥
जैसे कमल नाल विच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी ॥३॥
जैसे चंदहि मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा ॥४॥
जैसे मीराँ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहु कुञ्जबिहारी ॥५॥

ज्ञान ५४

म्हाने राम रंग लागो म्हारा जीव रो धोको भागो ॥०॥
हरिजी आया म्हारे मन भाया राम नाम में मन लाया ।
हरिजी मोपर किरपा कीदी प्रेम पियाला पाया ॥१॥
रहूं सदा म्हे वालीभोली प्रभुजी मुख नहीं बोल्या ।
अब जो म्हे हूं सदा सवागण प्रभुजी अन्तर खोल्या ॥२॥
साँच से मारा हरिजी राजी झूंठ से दिल भागो ।
अणी काया रो काँई भरोसो काचा सूत को धागो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित लागो ।
जन्म जन्म री दासी आपरी भाग पूर्व रो जागो ॥४॥

पिता रिसाय माय घर मारै, हँसै बटाऊ लोगरी।
अब तो जिय ऐसी बनि आई, विधना रची सोइ होयरी ॥२॥
अरी जै मेरौ यह लोक जात है, वह परलोक जिन जावरी।
पिय अपने कूं तऊ न छाँड़ूं, मिलूँ निसान बजायरी ॥३॥
बहुरि कहां यह तन धर पै हों, वालम भये गुरारी।
मीराँ प्रभु गिरधर के ऊपर, सरबस डारूं वाररी ॥४॥

स्वजीवन ५६

अटकी मैं नाहिं रहूंगी, म्हारो श्यामसुन्दर भरतार ॥०॥
एक बेर बरजी दोय बेर बरजी, बरजी सो सो बार ॥१॥
सासू भी बरजी ननँद भी बरजी, राणोजी दावादार ॥२॥
साध संगत मैं नित उठ करस्यूं, भल निंदो संसार ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनाशी, पूरण ब्रह्म अपार ॥४॥

प्रेम ६०

माई हूँ स्याम कै रंग राची ॥०॥
मेरे बीच परो मत कोऊ, बात चहूँ दिशि माँची ॥१॥
जागत रैनि रहै उर ऊपर, ज्यूँ कञ्चन मणि साँची ॥२॥
होय रही सब जग में जाहर, फेरि प्रकट होइ नांची ॥३॥
मिली निसान बजाय कृष्ण सूँ, ज्यो कछु कहो सो साँची ॥४॥
जन मीराँ गिरधर की प्यारी, मोहोबत है नहिं काची ॥५॥

आत्म-निवेदन ६१

मीराँ हरि में लीन भई ॥०॥
सबकूँ छाँड भज्यो साहिब कूँ गुरू की सरण गही ॥१॥
राणाजी को राज त्यागो संत सुख आय गई ॥२॥
राम कृष्ण द्वारका नगरी परकर मांहि रही ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरणाँ लीन भई ॥४॥

तीन लोक झोली मैं डारै, धरती कौ कियौ निपात ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रहौं चरण लिपटाय ॥४॥

प्रेम-रहस्य ६५

साँचो प्रीति ही को नातो ॥०॥
कै जाने वृषभाननंदिनी, कै मोहन रंग रातो ॥१॥
यहै सृंखला अति बलवंती, बंध्यो प्रेम गज मातो ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कुजनि महाल बसातो ॥३॥

प्रेमदृढ़ता ६६

अब कोऊ कछु कहो दिल लागा रै ॥०॥
जाकी प्रीत लगी लालन से, कंचन मिला सुहागा रै।
हंसा की प्रकृत हंसा (ही) जाणे, का जाणैं नर कागा रै ॥१॥
तन भी लागा मन भी लागा, ज्यों बामण गल धागा रै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा रै ॥२॥

प्रेम दृढ़ता ६७

अब कोऊ कैसे कहो दिल लागा ॥०॥
मेरी प्रीत लगी मोहन से, सोने मिलत सुहागा ॥१॥
कोउ येक निंदो कोउ येक विंदो, नाम सुधारस पागा ॥२॥
जन मीराँ गिरधर वर पायो, भाग हमारा जागा ॥३॥

भक्ति महिमा ६८

मैं तो हरि चरणन की दासी। अब मैं काहे को जाऊँ कासी ॥०॥
घट ही में गंगा घट ही में जमना घट घट हैं अबिनासी।
घट ही में पुस्कर औ लाधेश्वर लछिमन कँवर विलासी ॥१॥
जगंनाथ गंगासागर हैं साखीगुपाल ब्रजबासी।
सेतुबंध रामेस्वर ईस्वर मूलबटीसुर जासी ॥२॥

भक्ति ७१

चंदन की तिलक तुलसी की माला,
भजु रघुपति मैं भजु नंदलाला ॥०॥
ओर कोई नहीं जाणु देवा, रामकृष्ण विन निष्फल सेवा ॥१॥
लोक कहे मीराँ क्या जाणे, मीराँ का मरम श्रीराम पीछाने ॥२॥

भक्ति ७२

हमारे मन राधा-श्याम बसी ॥०॥
कोई कहे मीराँ भई बावरी।
कोई कहे ए तो कुल बसी ॥१॥
खोल घुंघट पट हरि गुण गाती।
हरि ढींग मीराँ नाचत लसी ॥२॥
विष को प्यालो भेज्यो राणाजी ने।
पीवत पीवत मीराँ हसी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
भक्ति के मार्ग में मैं तो धसी ॥४॥

ज्ञान ७३ (गुज०)

परणीशुं म्हारा प्रभुजी नी साथ,
बीजाना मींढळ नहीं बांधुजी ॥०॥
धरती परमाणे म्हें तो मांडवो रचायो ने,
तारा ना तोरणीया म्हें बांध्यां ॥१॥
वनरा ते वननी म्हें तो माळा रचावी ने,
प्रेमनी पीठी म्हें तो चोळी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
वणु ए जीवो परणंतर जी ॥३॥

रे वात कहुं सुण साहेली रे, वळीयोजी कीध वेली।
माथु पहेलुं पासंग मां मेली ॥१॥
रे न डरूं लोकतणी लाजे रे, शिर ऊपर गिरधर गाजे।
आ देह धर्यो नटवर काजे॥२॥
बाई मीराँ कहे जोगी उभा रहो तो, वगडे जीवतर मारूं।
हुं जीती बाजी ते केम हारूं ॥३॥

अनन्यता ७७

मेरे जीअ (जीया) ऐशी आए बनी ॥०॥
छाड गोपाल (अवर जो) और कू समरू तो लाजे जनुनी ॥१॥
काहा ले कीजे काच को अंधरे छाड अमोल मनी।
मन करम वचन ओर नही मेरे जब तब साम धनी ॥२॥
(वर्ष को मेरू कहा ले कीजे) वेष को मर काहाले कीजे,
अम्रीत एक कनी।
मीराँ प्रभु गिरधर के (कारण) भजन तजी जाल अपनी ॥३॥

स्वजीवन ७८ (गुज०)

कानुडो मित्र अमारो राणाजी पेलो कानुडो मित्र अमारो ॥०॥
ब्रन्दावन की कुंज गळन में। मोहन मोरली वालो॥१॥
आरे नेणां वीच एसो ही राखुं। जैसे पुत्री विच तारो ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। जीवण प्राण हमारो ॥३॥

स्वजीवन ७९ (गुज०)

लाजुं ते केनुं करीए, राणाजी! केना मोलाजा धरीए ॥०॥
राणा के मानीता माएरू रतन ने तोरणे चडीए॥१॥
हाथे वालो श्री हरि शे बांध्यो, नवरंग चोरी चडीए॥२॥
आला ते नीला वांश वढावुं, चोरी फेरा फरीए॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ चित धरीए ॥४॥

सात वरस की सिरपत लईयो, जब पायो सुधसार ।
मीराँ तो कहे प्रभु लिगन राम की, भव भव का भरतार ॥५॥

प्रेम ८३

श्याम रंग राची गोपाल रंग राची ।
कोहो सखी किसी के × × हूँ मद की माती ॥०॥
सजन कुटुंब बंधुता जे हर के आनंद राची ।
काहा भयो वेखु जेहेरज दीनो नही नेह हुं काची ॥१॥
मुहन रूप कीशोरी नागर तेनके आगे नाची ।
मीराँ प्रभु गिरधर जानंत जुठी के साची ॥२॥

स्वजीवन ८४ (गुज०)

शुं करूँ राज तारा, शुं करूँ पाट तारा,
चितडां चोराणां तेने शुंरे करूँ राणा, शुंरे करूँ ।
भुली भुली हुं तो घर केरा काम, राणाजी तेने शुंरे करूँ ॥०॥
अन्नडा न भावे, नेणे निंद्रा न आवे ।
गिरधरलाल विना, घडी न आराम तेने ॥१॥
चित्तौड़गढ़ मां राणी, चोरे चौटे वातो थाय ।
मानो मीराँ आ तो जीव्युं न जाय ॥२॥
ऊभी बजारे राणा, गज चाल्यो जाय छे ।
श्वान भसे तेने, लज्जा नव थाय ॥३॥
निन्दा करे राणा तारा नगर ना लोक ए ।
भजन मुकुं तो मारो फेरो थाय फोक ॥४॥
मनमां भजो मीराँ नारायण नाम ने ।
प्रगट भजो तो म्हारा छोडी जजो गाम ॥५॥
नगरी ना लोक राणा मीराँ ने मनावे सौ ।
मानो मानो ने कंई छोड़ो एवी चाल ॥६॥

चऊंरे चोखलिया राणा जमवा नथी र हां ।
वहालमजी अमे प्रेमनां टुकडा मागी खाईशु रे ॥१॥
मोतीनी रे माळा राणा काम न आवे रे हां ।
वहालमजी अमे तुलसी नी माला पहेरी ने नित फरसु रे ॥२॥
हीरनी रे साडी राणा काम न आवे हां ।
वहालमजी अमे भगवां पहेरी ने नित फरसु रे ॥३॥
चारे चारे जुगनी राणा चोरी चितरावी रे हां ।
वहालमजी हुं तो मंगल वरती छुं बे ने चार ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
वहालमजी हुं तो तमने भजीने थई छुं न्याल ॥५॥

अनन्यता ८८

अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई ॥०॥
माता छोडी पिता छोड़े, छोड सगा भाई ।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥१॥
संत देख दौड़ आई, जगत देख रोई ।
प्रेम आंसु डार डार, अमर बेल बोई ॥२॥
मारग में तारण मिले, संत राम दोई ।
संत सदा शीश रखु, राम हृदय होई ॥३॥
अंत में से तंत काढ्यो, पीछे रही सोई ।
राणे भेज्या विष का प्याला, पीवत मस्त होई ॥४॥
अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई ।
दास मीराँ लाल गिरधर, होनी हो सो होई ॥५॥

स्वजीवन ८९

नैंना परि गई ऐसी बानि ॥०॥
नैंक निहारत पियाजु के मुप तन छूटि गई कुल कानि ॥१॥

नारद मुनी दे वडवीरो, म्हाने ग्यान की चुनड़िया ओढाई
ए माय ॥२॥
शिव सनकादिक दोई मामा, म्हाने ध्यान को मोंसालो पेराय
ए माय ॥३॥
अमरलोग में वाजा वाजा, म्हारी मीरांवाई परण पधारचा
ए माय ॥४॥

स्वजीवन ६३

में तो छोड़ी छोड़ी कुल की लाज रंगीलो राणो कांई करशे
माणा राज ॥०॥
पाव में वांधुंगी में घुघर हाथ मां लउंगी सितार ।
हरि के चरण आगे नाचती रे कांई रीझेगो कीरतार ॥१॥
जेर को प्यालो राजाजी अे भेज्यो, मीरांवाई हाथ ।
करी चृणामृत पी गई रे श्री डाकोरजी नो प्रसाद ॥२॥
राणाजी अे रीस करी भेज्यो जेरी नाग असार ।
पकड़ गले वीच डालीयो, कांई होगयो चंदनहार ॥३॥
मीराँ को गिरधारी मिलिया जनम जनम भरतार ।
में तो दासी जनम जनम की कृष्ण कंथ भरतार ॥४॥

———

म्हाला म्हारा व्रजवासी दर्शन द्यो अविनाशी ।
प्यासी छुं हुँ दीन दासी रे ॥३॥

विशेषः—इस पद का सारांश यही कि एक बार प्रभु-प्रेम में आसक्ति हो गई कि फिर सांसारिक सुख-दुःख में मोह नहीं रह पाता एवं मन निर्द्वन्द्वावस्था को प्राप्त हो जाता है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥गीता–६-२२॥

"और परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवद् प्राप्ति रूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी वड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है।

वास्तव में भगवद् प्रेम की प्राप्ति हो जाने पर—उस दिव्य सुखानुभव के प्राप्त होने पर संसार के सब विषय नीरस जान पड़ते हैं। तब कैसे भी महान संकट में चित्त विचलित नहीं होता।

३—चौरासी को वालमो=चौरासी लक्ष योनि से त्राण पाने के लिये अर्थात् जन्म मरण के चक्र से छूटने के लिये प्रभु को उद्देश्य करके रचा हुआ पद गीत।

५—कूड़ो=नाशवान। लख.........वार=चौरासी लक्षयोनि में कई वार भ्रमण किया।

६—हेली=सखी। सुरत=चित्तवृत्ति, ध्यान। लगनी लहँगो=लगन रूपी लहँगा। हेली.........लागी=उस अविनाशी पुरुप—अखंडवर प्रभु से लगी हुई मीरांवाई की चित्तवृत्ति ही वास्तव में सुहागिन है। पोलपर=द्वार पर। नकवेसर=नाक आभूपण। मोरचा=मनुष्य योनि। छिन में.........विगोय=क्षण भर में नाश कर दिया।

८—भावार्थः—रैण पड़े............रिझाऊँ=चित्त के सहज स्थिर होने जैसी शान्त रजनी की अखण्ड नीरवता में ध्यान द्वारा प्रभु से तादात्म्य साधूँ और प्रातःकाल संसार के जागृत होने के पश्चात् काया वाचादि साधन द्वारा प्रभु को रिझाऊँ यथाः—

निरर्थक परिश्रम करते हैं उनका त्याग करने से ही आनन्द की प्राप्ति होती है। दूध की........कोई—शास्त्रादिकों का पर्याप्त पर्यावलोकन करने के पश्चात् विवेकवान पुरुष तो दृढ़ता से उनमें से सार वस्तु भक्ति को ही ग्रहण करते हैं जब कि विषयासक्त जन वस्तुतः नीरस होते हुए भी सांसारिक सुखों की ही कामना करते हैं।

सद्सद्वस्तु विवेक की कसौटी पर चढ़ने पर वास्तव में विचारवान् के लिये सांसारिक समस्त सुख, सर्व दुखों के मूल मात्र ही जंचते हैं, इसीलिये कहा है:—

आलोड्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः ॥"

तथा:—

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृत्ति विरोधाच्च सर्वमेव दुःखं विवेकिनः (यो० सू० २–१५)

११—भावार्थ:—जब थी.........खोलो=अहंकार ग्रस्त जीव भगवद्दर्शन का अधिकारी नहीं हो सकता, साधन द्वारा परमार्थ में बाधक उस अहंकार को निर्मूल कर पूर्ण रूप से अपने को नम्रतायुक्त बना लेने पर ही हृदय के पट खुल कर वह भगवदानुभव कर सकता है।

भावार्थ:—सुरत.........सावन की=चित्तवृत्ति के स्थिर होने पर-ज्ञान दृष्टि के प्राप्त होने पर ही भगवान के लीलाक्षेत्र में जीव का प्रवेश होता है और तभी श्रीकृष्ण भगवान की साँवरी छटा की झांकी होती है, बिजली की चमक समान चिन्मय स्वरूप के दर्शन होते हैं।

१३—मुद्रा=योगी के ध्यान करते समय कानों में लगाने की गुण्डी। कींगरी=सारंगी के प्रकार का ग्रामीण याचकों का एक तन्तु वाद्य विशेप (रावण हत्था)। रसना=जिह्वा।

भावार्थ:—जिन......धरूंगी=जिस साधन द्वारा प्रभु की प्राप्ति होती है उसी साधन को ग्रहण करूंगी। सील संतोप......रहूंगी=शील संतोषादि सात्विक गुणों युक्त और शीतोष्ण सुख दुःख हानि लाभ आदि

१५—भसे=भोंकता है। नाथाय=नहीं होती। फोक=वृथा। ज्यां=जहाँ।

१६—वर्या=वरण किया। सुषुम्णा=नाड़ी विशेष। नावलीयो=नवलकिशोर। दीएर=देवर। दीकरी=कन्या। चित्रकुटने=चित्तौड़ को। दहाडानो=दिन का। वेउ=दोनों।

भावार्थः—प्रकृति त्रिगुणात्मक है। जीव मात्र में दैवी और आसुरी भावों का निवास है। किसी में रजोगुण तमोगुण का आधिक्य है तो कहीं सात्विकता की विशेपता। इन संस्कार विशेष के कारण कोई प्राणी तो संसार के वन्धन में विशेष रूप से जकड़ा रहता है तो कोई परमार्थ पथ पर वैराग्य की ओर आकृष्ट होता । इसी को लक्ष्य करके मीरांवाई ने कहा है:—दिएर ने·········संसार रे।

अधिक चरणः—

सोनाना व्राज तारा, काम नहि आवे राणा।
तुमड़ी तो उठावी अम लेईशु रे, राणाराज॥

पाठान्तरः—

सोनाना दोरा तारा, काम नहिं आवे राणा।
तुलसीनी माला घाली लईशुं, राणाराज॥१॥
हीरना चीर तारां, काम नहिं आवे राणा।
भगवां ते वस्त्र पहेरी लईशुं, राणा राज॥३॥
मोटा मोटा मेहल तारा, काम नहिं आवे राणा।
झांपे तो झुपड़ीए, अम रही शु रे, राणा राज॥४॥
रोही दासनी चेलो मीरांवाई, ऐम वोल्यां राणा।
मारे करवो साधु केरो साथ, राणा राज॥६॥

और पाठान्तरः—

हे मोती केरी माला राणां नथी मारे पहर वारे॥
तुलसी री माला पहरी फरशूं॥१॥

चिरगुट चिंध्या जोडुनि कंथा। गोधड़ी हेंचि वरी ॥
नित्य नवें जें देईल माधव। भद्रू तेंचि धरी ॥
अमृत ह्मणों मज भित्ता डोहळे। येति अश्या लहरी ॥

३३—मजीठी=मजीठ का रंग जो चढ़ने पर उतरता नहीं।

३४—कूड़ो=झूठे, भगवद् विमुख।

भावार्थः—तनकी·········सूरो=ज्यों वीर योद्धा अपने प्राणों का मोह छोड़कर रण क्षेत्र में कूद पड़ता है त्यों देह और सांसारिक विषयों की आसक्ति को छोड़कर भक्ति मार्ग को स्वीकार किया है। विचारिए:—

'भक्ति शूरवीरनी साची रे, लीधा पछी केम मेले पाछी।'

भोजाभगत (गुजराती)

विशेषः—वास्तव में देखा जाय तो रणांगण में अपने प्राणों को बलि वेदी पर चढ़ाने को कटिबद्ध पुरुषार्थी योद्धा से भक्त का कोई कम महत्त्व नहीं। इसी भाव को लेकर ही कहा है:—

"जननी जण तो भक्त जण, या दाता या शूर।
नहीं तो रह जा बांझ ही, मत खोवे तू नूर ॥"

३५—भावार्थः—लाज सरम·········गली=संसार की लाज शरम आदि को छोड़ कर ज्ञान मार्ग को स्वीकार कर लेने वाले साधक पर मान-अपमान के प्रसङ्ग आते हैं परन्तु उनसे विचलित न होते हुये आगे ही बढ़ते रहना चाहिये। द्वन्द्वातीत होने पर ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है। गुरु नानक ने भी यही कहा है:—

'साधो मन का मान त्यागो।
सुख दुःख दोनों सम करि जाने और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता तिन जग तत्व पिछाना ॥

ऊंची·········कली=सुपुम्ना नाड़ी में जो चक्र हैं वे ऊँची अटरियाँ हैं, कुण्डलिनी शक्ति लाल किवड़ियाँ हैं, निराकार चिन्मय

की अस्थिरता आदि की आभ्यंतरिक और तीसरी राणाजी की विरोधी शक्ति-दमन नीति की। मीरांबाई को इन सब के साथ संघर्ष करना है। काम क्रोधादि आसुरी सम्पत्ति रहित हो कर शील आदि दैवी गुणों के शस्त्र धारण करने वाली मीरांबाई ही अंत में प्रभु कृपा से उक्त संघर्ष में विजय प्राप्त करती है और उसके आगे राणा की विरोधी शक्ति को घुटने टेक देने पड़ते हैं।

३८—अधिक चरण:—

राज करंता नरक पडंता, भोगी जोरै लीया।
जोग करंता मुक्ति पडंता, जोगी जुग जुग जीया॥

३९—बाजीगर=जादूगर। मेरी·········गोरयो=ज्यों जादूगर अपनी ऐन्द्रजालिक क्रियाओं से दर्शकों को मुग्ध कर उनके चित्त को उसी में स्थिर कर देता है त्यों, संसार की ओर से हट कर मेरी प्रीति निरंतर प्रभु में लगी रहती है।

४२—प्रेम·········धोई=प्रेमाश्रुधारा से सांसारिक विषय रूप विष वल्ली को धो डाला अर्थात् उसके संस्कार बीज को ही मिटा दिया।

पाठान्तर:—

ंत हमारे शीश ऊपर, राम हृदय होई।
मेरे तो एक राम नाम, दूसरा न कोई॥०॥

४५—गरक=मग्न। तौरेड़े=तुम्हारे। वकंदी=विक गई। ब्रेहन =विरहिन। सिंध=जाने वाले। मिलंदी=मिल गये। दोउ·······मिलंदी हो=दोनों का योग मिल गया। जो·········जंदी हो=जो, तुम प्रीतम नहीं मिलोगे तो मैं (विरह-प्रवाह में) बह जाऊँगी। लोयना=नेत्र। छंदी=अनुगत होकर। रूप·········छंदी हो=तुम्हारे रूप पर नेत्र लुभा गये जिससे मैं तुम्हारी अनुगत हो कर तुम्हारे ही संकेत पर चलती हूँ। गुजि की=हृदय की बीती हुई, रहस्य की। ऊँलजूं=कहते लाज आती है।

४६—पर········बाजी=खेल में बाजी हार कर तन मन न्यौछावर कर दूंगी अर्थात् आत्म समर्पण कर तद्रूप हो जाऊँगी।

पराई वस्तुओं का भाव झूठा माणिक, मोती, जोति, आभुषण छैल, विराणो इन शब्दों द्वारा व्यक्त किया है जब कि साँची पिया जी री पोति, गूदड़ी, लूण अलूणो साग, कालर, कोढ़ी कुष्ठी वर हीणो इन शब्द प्रयोग द्वारा 'अपने घर' का भाव बताया है।

५१—वड़े............लागी=वड़े घर से (प्रभु से) सम्बन्ध हो गया, प्रभु से लगन लगी। उणारथभागी=अभिलाषा पूर्ण हो गई। छीलरिये=छीलर, तलैया। डावरिये=बरसाती जल भरे गड्ढे पर। ह्वायाँ मोव्याँ सूँ=नौकर चाकरों से। सीख=परामर्श, मन्त्रणा। जाव करूँ=सम्पर्क स्थापित करूँ। दरबार=सरकार, स्वयं स्वामी से। काच कथीर=काँच व राँगा।

विशेषः—यह ज्ञान का पद है। संसार के प्राणी मात्र त्रिगुणमयी प्रकृति में बँधे होने से अपने २ गुण संस्कारों के अनुसार कर्म करते हैं। भगवान् का पूजन व साधन भी प्राणियों द्वारा इन्हीं गुणों की योग्यतानुसार होता है। श्रीगीताजी के अध्याय १७ में इसी भाव का चौथा श्लोक है :—

यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूत गणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

भावार्थः—सात्विक पुरुष देवों को, राजसी लोग यक्ष और राक्षसों को तथा दूसरे तमोगुणी प्रकृति के मनुष्य भूत और प्रेतों को पूजते हैं।

जिसके जीवन का लक्ष्य एक मात्र भगवत्प्राप्ति ही है उस साधक की आध्यात्मिक उन्नति में तो ये तीनों ही गुण बाधक हैं। सात्विक गुण निर्मल प्रकृति का होने पर भी सुख की आसक्ति और ज्ञान के अभिमान से बाँधता है, कामना मूलक रजोगुण जीव को कर्मों और उसके फल की आसक्ति से बाँधता और अज्ञान मूलक तमोगुण जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है। श्री गीता जी के १४ वें अध्याय के श्लोक ५-६ में भगवान् ने यही आदेश किया है।

पाठान्तरः—औरों के पिया.........लिख ।

मेरो पिया मेरे निकट बसत है, मैं कह न सकूं सरमाती ॥२॥

अधिक चरणः—

वर दूल्हौ मोहि व्याहन आवै, आप कृष्ण ब्रजवासी ।
मीरां कै गिरधर मन मान्यो, मैं स्याम सुन्दर की दासी ॥

५३—हमरे.........छूटै=हमारी आप से प्रीति लग गई है सो कैसे छूट सकती है। निहाई=घन। जैसे हीरा.........आई=जिस प्रकार से हीरा घन की चोट खा खा कर भी वास्तव में हीरा ही बना रहता है उसी प्रकार हम भी वियोग व्यथा आदि प्रीति के दुःख सह-सह कर आपकी बनी हैं। जैसे सोना.........लागा=ज्यों सोना सोहागे के साथ मिलकर एक रूप हो जाता है त्यों हमारा मन भी आप में तद्रूप हो गया है। जैसे कमल.........मानी=ज्यों जल के बीच में कमल नाल रहती है त्यों हमारा मन भी आप ही में स्थित है। जैसे चंदहि.........जोरा=ज्यों चकोर चंद्रमा की ओर टकटकी लगाये हुये अपने आपको खो देता है त्यों हमारा चित्त निरन्तर आप ही की ओर लगा रहता है। जैसे मीराँ.........कुञ्ज विहारी=ज्यों मीराँ अपने प्रियतम गिरधर के प्रेम में ही निमग्न है त्यों ही उस प्रीति को हे कुञ्जविहारी, आप भी निभाते रहना।

५५—दीप.........रसी=ज्यों अग्नि और दीपक अभिन्न है त्यों मीराँ भगवत्प्रेम, भगवन्नाम में लवलीन हो गई। खाँड=खड्ग। सब्द.........धसी=चित्त वृत्ति दिव्य अनहदनादाम्बुधि में डूब गई। खाँड धार.........फँसी=भक्ति रूपी खड्ग की धारा ऐसी निराली है जिसने यम की फाँसी को भी काट डाला।

विचारियेः—

खबरदार मन सुआ जी, खांडानी धार चडवुं छे ।
हिम्मत हथियार बांधी रे, सत्यनी लड़ाईए लडवुं छे ॥

पाठान्तरः—बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हां।
वहालम जी हूँ तो तमने भजीने थई छूं न्याल ॥५॥

७६—कीध=किया। बेली=सहायक। माथुं=शिर। पासंगमां मेली=समर्पित करके। तणी=की। शिर............गाजे=प्रभु का वरद हस्त शिर पर धरा हुआ है।

७७—मेरे.........वनी=मन ने यह ठान लिया। अवरजो=अन्य कोई।

७८—पुत्री.........तारो=आँख का तारा।

७६—लाजुं = लज्जा। केनुं=किसकी। मोलाजा=संकोच, विचार। हाथेवालो=हथलेवा, विवाह-संस्कार। चोरी=जहाँ विवाह-संस्कार होता है वह शास्त्र विधि युक्त बनाया हुआ स्थान। चडीए=आरूढ़ होवें। आला ते नीला=सुन्दर, हरे। वांस=वांस। वढावुं=कटावें। फेराफरीए=भाँवरी लेवें।

८१—ओलो=आश्रय, आधार।

८२—कूड़ो=बुरा, नाशवान। रूड़ो=सुंदर, समर्थ। काण=कान, मर्यादा। सिरपत=श्रीपति, प्रभु। लईयो=प्राप्त हुए। जव.........सार=सोच समझने योग्य बनने पर। लिगन=लगन, निष्ठा।

८३—सजन.........राची=स्वजन, कुटुम्बी आदि संबंधीजन एक मात्र हरि को मान कर आनंद मग्न रहती हूँ। नहीं..........काची=प्रभु प्रेम में विचलित होने वाली नहीं।

८४—वातोथाय=वातें होती हैं। भसे=भोंकता है। भजन..........फोक=(लोक निन्दा के भय से) भजन करना छोड़ूं तो यह जन्म वृथा जाता है। मनमां.........नाम ने=मन में नारायण (प्रभु का) नाम स्मरण करना। प्रकट.........गाम=प्रकट रूप से भजन करोगी तो मेरा राज छोड़ जाना। नगरीना.........चाल=नगर जन मीराँ को समझाते हैं कि अपनी यह (भजन की) रीति छोड़ दो।

विवाह का एक सुन्दर चित्र खींचा है, जैसे कि नित्य धाम उसकी सुसराल है, ध्रुव, प्रहलाद व गणेश बराती और नारद मुनि ज्येष्ठ भ्राता है। उसे ज्ञान रूप चुनरी ओढ़ाई गई, शिव-सनाकादिक उसके मातुल हैं जिन्होंने ध्यान का चढ़ावा चढ़ाया और इस प्रकार वाद्य-घोष के साथ वह अपने प्रियतमप्रभु से विवाहित हुई अर्थात् उपर्युक्त भगवान और भक्तों की नामानुरागी विभूतियों द्वारा मीरांबाई ने भगवन्नाम की दीक्षा ली तथा भगवत्प्राप्ति के साधन ज्ञान-ध्यान व प्रेम भक्ति आदि की प्रेरणा पाई।

हुई बिजलियाँ, अपनी न्यारी ही मरोड़ में नृत्य करते मयूरगण, गंभीर मेघगर्जन, छोटे मोटे बूंदों से गिरती हुई वर्षा की झड़ियाँ, ग्रीष्म काल में संतप्त होकर वर्षा की सुधावर्षिणी अनंत धाराओं में परिप्लावित हो संतृप्त हुई धरयित्री, उस पर मानो हरे मखमल के गलीचे बिछाये हों, त्यों उस पर छाईहुई नयन मनोहर हरियाली, सकल दिशा में हरी हरी नई जीवन सामग्री को लिये हुए प्रफुल्लित वृक्ष-तरुवर, लता-बेलि, और फूल-पत्ते, एवं क्रीड़ा-कल्लोल करते हुए उत्साह भरे पशु-पक्षी समुदाय। इनके अतिरिक्त आबाल वृद्धों में उत्साह व प्रसन्नता और युवा नर-नारियों में पूर्ण उमंग व मादकता भरे भाव। इस प्रकार भावों को उद्दीपन करने वाले इन सुन्दर मोहक और मादक विविध दृश्य युक्त वातावरण का जन-मानस पर प्रभाव अवश्यम्भावी है—अमोघ है।

श्री गोस्वामी तुलसीकृत रामायण के किष्किंधा काण्ड में भगवान् रामचन्द्र कहते हैं:—

वरषाकाल मेघ नभ छाये, गरजत लागत परम सुहाये।
लछमन देखहु मोरगन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरतिरत हरष जस, विष्णु भगत कहँ देखि॥

परन्तु वर्षा ऋतु का यह सब वैभव अपनी प्रियातिप्रिय-अभिन्न-हृदय व्यक्ति के संग में ही आनन्द दायक और उल्लास प्रेरक होता है, अन्यथा उसके अभाव में इसका सर्वथा विपरीत परिणाम होता देखा जाता है। विरहाग्नि-दग्ध हृदय को वर्षा का यह सारा सुहावना प्रकृति-सौंदर्य नीरस और नैराश्यवर्धक ही

मेघा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृति चेतः ।
कण्ठा श्लेप प्रणयिनी जने किं पुनर्दूर संस्थे ॥
(मेघ०—श्लो० ३—उत्तरार्ध)

समक्ष मेघ को देखकर किसी सुखी मनुष्य की भी मनोवृत्ति उत्कंठित होती है तो बहुत दूर आ पड़ने से स्वस्त्री के कंठालिंगन सुख से हीन उस विरही पुरुष की अवस्था का तो कहना ही क्या ?

सूर की गोपियाँ भी, बादलों द्वारा अपने प्रियतम कृष्ण को संदेश भेज रही हैं:—

पा लागों तव वीर बटाऊ, कौन देश तें धाए ।
इतनी पतियां मोरी दीजौ, जहां श्यामल घन छाए ।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाए ।
सूरदास स्वामी से बिछुरे, प्रियतम भए पराए ।

मनोविज्ञान की दृष्टि से कहा जा सकता है कि वर्षा काल में विरह की तीव्रता का अनुभव प्रमाण में पुरुष से अधिक स्त्री जाति को होता है । विविध साहित्य ग्रन्थों में भी इसी विचार की पुष्टि की हुई दिखाई देती है । मेघदूत में यक्ष ने मेघ के साथ संदेश भेजा अवश्य है परन्तु विचार पूर्वक देखने पर प्रतीत होता है कि वह उसकी विरह भरी आत्म कहानी की अपेक्षा कहीं अधिक उसकी विरहिणी प्रिया के तड़पते हुए हृदय के और उसके सान्त्वना सूचक भावों को ही व्यक्त करता है ।

मीराँ के पदों में भी यह अनुभूति बड़ी ही सरस व सजीव रूप से व्यक्त होती है । जो भी हो मीराँ के पदों में वर्षा-सावन

'वर्षा' मीराँ की वाणी में :—

इस समय चारों ओर वर्षा ऋतु की छटा बड़ी ही सुहावनी लग रही है—

(४) देखी वरषा की सरसाई, मेरे पियाजी की मन में आई।
स्याम घटा उमड़ी चहुँ दिस से बोलत मोर सुहाई।

(११) जित जाऊँ तित पाणी पाणी। हुई हुई भोम हरी।

(२७) काली सी घटा में बिजलियाँ चमके, झीणी झीणी पड़त फुवार

फिर सबके हृदय में प्रिय मिलन की उत्कंठा को जगाने वाली सावन की घटा का तो कहना ही क्या!

(२) सावण बनो [वर राजा] बन आयो।

(५) सावण दे रह्यो जोरा। (६) भींजे म्हाँरो दाँवन चीर, सावणियो लूम रह्यो।

(१४) सावण आयो साहिब दूरे जाई रहे परदेश। सेझ अलूणी भवन अकेली रैण भयंकर भेस।

(१८) आयो सावन अधिक सोहावन, वन में बोलन लागा मोर।

परन्तु अपने प्रियतम के बिना मोर व पपीहे की मधुर बोली भी चित्त पर विपरीत ही प्रभाव डालती है—

(७) मदरोसो (धीरे से) बोल मोरा, मोरा श्याम बिना जिव दोरा। झरमर झरमर मेहा बरसे, गाजत है घनघोरा।

(१७) पपहिया काहे मचावत शोर, पिया पिया बोलत जिया जावत मोर।

(१६) हिंडोरा पड्या कदम की डारी। म्हाने झोटा दे नन्दलाल,
अरज कर रही राधा प्यारी।

अपनी आनन्द लीला में प्रेमी-युगल को भला ध्यान रह ही कैसे पाता! विलंब से जब श्याम के पास से राधा लौटती है तो श्याम घन ने उसे घेर लिया है—

(३२) नंद नंदन बिलमाई, बदराने घेरी माई, बदरा ने घेरी माई।

उत्कंठा ४

देखी वरषा की सरसाई, मोरे पियाजी की मन में आई ॥०॥
नन्हीं नन्हीं बूँदन बरसन लाग्यो।
दामिन दमके झर लाई ॥१॥
स्याम घटा उमड़ी चहुँ दिस से।
बोलत मोर सुहाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
आनंद मंगल गाई ॥३॥

सावन ५

सावण दे रह्यो जोरा, घर आवोजी स्याम मोरा ॥०॥
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आया, गरजत है घनघोरा ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही शोरा ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जो वारूँ सोई थोरा ॥३॥

उत्कंठा ६

ऋतु आई बोलत मोरा। श्याम बिना जिया दोरी ॥०॥
उमड़ उमड़ के आई बदरिया। बरस रहा घनघोरा ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोले। कोयल कर रही शोरा ॥२॥
है को साध सँदेसा लावै। श्याम मिलावै मोरा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। श्याम चरन चित जोरा ॥४॥

विरह ७

मदरो सो बोल मोरा। मोरा श्याम बिना जिव दोरा ॥०॥
दादुर मोरा पपैया बोले। कोयल कर रही शोरा ॥१॥
झरमर झरमर मेहा बरसे। गाजत हैं घन घोरा ॥२॥
मीराँ के प्रभु राधा बोले। श्याम मिल्या जिव सोरा ॥३॥

विरह-भाव ११

बादल देख डरी हो स्याम मैं बादल देख डरी ॥०॥
काली पीली घटा ऊमटी । बरस्यो एक घरी ॥१॥
जित जाऊँ तित पाणी पाणी । हुई हुई भोम हरी ॥२॥
जाका पिय परदेस बसत है । भीजूँ बहार खरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी । कीज्यौ प्रीत खरी ॥४॥

विरह-ज्ञान १२

रमैया मेरे अब तोही सूं लागो नेह ।
लागी प्रीत जिन तोड़े रे वाला । अधिकौ कीजै नेह ॥०॥
जौ हूं ऐसी जाणती रे वाला, प्रीत कियाँ दुःख होई ।
नगर ढंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय ॥१॥
खीर न खाजै आकरी रे, मुरख न कीजै मिंत ।
खिण ताता खिण सीलवा रे । खिण वैरी खिण मिंत ॥२॥
प्रीत करे ते बावरा रे करि तोड़े ते क्रूर ।
प्रीत निभावण दल के थंभण ते कोइ बिरला सूर ॥३॥
तुम गज गिरी को चूंतरो रे हम बालू की भीत ।
अब तो म्यां कैसे बणे रे पूरब जनम की प्रीत ॥४॥
एके थाणे रोपीया रे एक आंबा एक बूंळ ।
वांको रस नीको लगे रे वाको लागै सूळ ॥५॥
ज्यूं डूंगर का व्हाला रे, यूं ओछा तणा सनेह ।
बहता बहे जी उतावला रे, वे तो झटक बतावे छेह ॥६॥
आयो सावण भादवो रे वाला, बोलन लागा मोर ।
मीराँ कूँ हरिजन मिल्या रे, लेगिया पवन झकोर ॥७॥

झूलन-लीला (व्रजभाव) १६

हिंडोरा पड्या कदम डारी म्हान झोटा दे नन्दलाल
अरज कर रही राधा प्यारी ॥०॥
सजीली केसर क्यारी फूल रही फुलदार सुगन्धी न्यारी ॥१॥
घूम रही घटा गगन कारी,
पंछी कर रहे सोर दामिनी दमकत मतवारी ॥२॥
राधा के संग सखियां सारी,
ग्वाल बाल संग सखा बाग में घूमत गिरधारी ॥३॥
श्याम थारी सूरत पर वारी,
घुंघर वाले बाल माल गल वैजन्ती न्यारी ॥४॥
चोर चित भव भंजन हारी,
मीराँ के गोपाल पार करदे नैया म्हारी ॥५॥

विरह-भाव १७

पपहिया काहे मचावत शोर,
पिया पिया बोलिन जिया जावत मोर ॥०॥
अमवा की डार कोयलिया बोले मोर।
नदी किनारे सारस बोल्यो मैं जानी पिया मोर ॥१॥
मेहा बरसे बिजली चमके बादल की घन घोर।
मीराँ के प्रभु बेग दरश दो मोहन चित के चोर ॥२॥

दर्शनानंद (व्रजभाव) १८

आयो सावन अधिक सोहावन बन मैं बोलन लागे मोर ॥०॥
उमड़ घुमड़ कर कारी बदरिया, बरस रही चहुं ओर।
अमवा की डारी बोले कोयलियां, करें पपीहरा शोर ॥१॥
चम्पा जूही बेला चमेली, गमक रहे चहुं ओर।
निर्मल नीर बहत यमुना को, शीतल पवन झकोर ॥२॥

नानी नानी बून्दन बरसत मेहुलोजी, पवन चलत झकझोर ॥२॥
राधेजी भींजे घर के आंगण, सांवरोजी भींजे परदेश ॥३॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल कर रही शोर ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रभु चरण कमल बलिहार ॥५॥

प्रेमालाप २३

ओ बाइजी म्हारा बड़भागी छे मोर, नणँदबाइ बड़भागी छे मोर॥०॥
उड उड मोर कुंजन पर बैठो, बैठो छे अंग मरोड ॥१॥
मोर की पांख को मुकुट बनत है, जो सिर धरे नन्दकिशोर ॥२॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल करे रे किलोल ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चितचोर ॥४॥

झूला (ब्रजभाव) २४

ओ हींदोरो हेली झूले छे नन्दकिशोर ।
हो हींदोरे झूले छे नन्दकिशोर ॥०॥
चम्पे की डार हींदोरे घाल्यो, रेशम नी गज डोर ॥१॥
राधेजी कृष्ण झूलन लागा, झुलावे छे सखियां को साथ ॥२॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल कर रही शोर ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां बलिहार ॥४॥

प्रेमालाप २५

बुलाले मोहन कबकी खडी तेरे द्वार बुलाले मोहन ॥०॥
सावण बरसे, भादुडो गरजे, छाई घटा घन घोर ॥१॥
आम्बे की डारी पे कोयल बोले, मोर मचावे सोर ॥२॥
गेरी गेरी नदियां नाव पुराणी, बेडा लगादो पेले पार ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरण कमल बलिहार ॥४॥

विरहभाव २६

रत आई बोल मोरा, श्याम बिना जीव दोरा रे, रत आई बोल मोरा ॥०॥

तीज (व्रजभाव) ३०

एजी ओ सावण री रत आई ॥
पपैया पीयू पीयू पुकार रे अंधेरी रत आई ॥०॥
रिधि सिधी पेलें वसे ।
कृष्ण पधारो पांवणां कांई पहली सावण की तीज ॥१॥
राधेजी रा वदन पर विन्दली शोभा देही ।
नेणा में सुरमो सोवणो वांरा गज गज लम्बा केश ॥२॥
मोती लो तो है घणा रे लालां तो दस वीस ।
हीरा तो जुग में एक छे जी केसें करूँ वगसीस ॥३॥
हरया वन की कोयल ऐ सुणजे म्हारी वात ।
किस विध थूं काली पडी किस विध थांरा राता नैण ॥४॥
राधेजी वडभागणी ए, कोण तपस्या हींण ।
कृष्ण पधारया द्वारका म्हारा भूर भूर राता नैण ॥५॥
राधेजी वड भागणी ए, कोण तपस्या कीन ।
तीन लोक को नाथ कहीजे सो तुम्हारे आधीन ॥६॥
वाई मीराँ की प्रभु या वीनती रे सुणजो सिरजनहार ।
चरणा सूं नेडी राखज्यो म्हारा चारभुजा रा नाथ ॥७॥

प्रेमालाप (व्रजभाव) ३१

दीजो कृष्ण लेरयो रंगाय, हो श्याम म्हाने दीजो जी लेरयो रंगाय ॥०॥
असल गुलाबी लेरयो रंगाजो, चारूं पल्ला कोर लगाय ॥१॥
लेरया री पोपाक राधेजी ने सोहे, निरखत नन्दकिशोर ॥२॥
नानी नानी वृन्दन वरसत मेहुलाजी, भींजत श्याम घर आये ॥३॥
दादुर मोर पपैया वोले, कोयल करे छे किलोल ॥४॥
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रभु चरणा वलिहारी ॥५॥

घुमँड़ घटा ऊलर होइ आई, दामिन दमक डरावै।
नैन झर लावै ॥२॥
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, बेद न कूण बतावै।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जड़ी घस लावै ॥३॥
को है सखी सहेली सजनी, पिया कूँ आन मिलावै।
मीराँ कूँ प्रभु कबरे मिलोगे, मनमोहन मोहि भावै।
कबै हँस कर बतलावै ॥४॥

उल्लास ३६

सुनी हो मैं हरि आवन की अवाज ॥०॥
महल चढ़-चढ़ जोऊँ मेरी सजनी ! कब आवै महाराज ॥१॥
दादर मोर पपइया बोलै, कोयल मधुरे साज।
उमँग्यो इंद्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोडी लाज ॥२॥
धरती रूप नवा नवा धरिया, इंद्र मिलण कै काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी वेग मिलो महाराज ॥३॥

प्रेमालाप(व्रजभाव) ३७ (गुज०)

बोले झीणा मोर, राधे तारा डुंगरिया पर बोले झीणा मोर ॥०॥
ए मोर ही बोले बपैया ही बोले, कोयल करे कल शोर ॥१॥
काली बदरियां में बिजली चमके, मेघ हुआ घनघोर ॥२॥
झरमर झरमर मेहुलो बरसे, भींजे मारा सालुडानी कोर ॥३॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर ना गुण, प्रभुजी मारा चितडानो
चोर ॥४॥

दर्शनानन्द (व्रजभाव) ३८

राधे तोरे नयनन में जदुबीर ॥०॥
आधी आधी रात में बादल चमके, झिरमिर बरसत नीर ॥१॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि
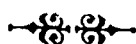
१—भावार्थः—मेहा .... घरेरे=जिस प्रकार उत्तप्त पृथ्वी वर्षा होने से शीतल हो जाती है त्यों आज मीरांबाई का हृदय भी शीतल हो गया है क्योंकि आज उसके प्रियतम श्याम सुन्दर ने दर्शन देकर उसके विरह-ताप को मिटा दिया है। आज वह बाहर और भीतर भी आनन्द का अनुभव करती है।

नान्हीं .... भरेरे=छोटी छोटी बूँदों से बरसे हुए जल से ज्यों सूखे पड़े जलाशय सब भर जाते हैं त्यों प्रिय-विरह के ताप से सूखे मीराँ के हृदय-प्रदेश को श्याम सुन्दर ने अपने आनन्दमय दर्शन रूप सुधा-वृष्टि से सराबोर कर दिया। बहुत .... डरेरे=दीर्घ काल के पश्चात् अपने प्रियतम का आनन्दमय मिलन हुआ अवश्य पर साथ ही साथ उनके बिछुड़ने की आशंका भी मन में बनी हुई है। ज्यों वर्षा काल में हरी भरी दीखती सृष्टि के, अन्य काल में पुनः सूख जाने का अंदेशा बना रहता है। मीराँ .... वरेरे=मीरांबाई जन्म-जन्म के अपने प्रियतम स्वामी से; मिलन के वर्तमान प्रत्यक्ष आनन्दानुभव के मधुराति मधुर प्रसंग पर उनसे एक रूप होकर आनन्द रसास्वादन में मग्न हो जाती है। पुनः उनसे बिछुड़ने की आशंका को सर्वथा बाधक समझकर उसे त्याग देती है।

२—बनो=वर, प्रिय।

विशेषः—इस पद में श्रावण को वर राजा का, चतुर्मास को विवाह काल का तथा बादल को लग्न मडंप का रूपक दिया है। बादल रूपी मंडप के नीचे (क्योंकि चातुर्मास में विशेष कर आकाश मेघाच्छन्न रहता है) श्रावण मास रूपी वरराजा का चातुर्मास काल में विवाह महोत्सव होता है अर्थात् आकाश और पृथ्वी के बीच वर्षा काल में अनेकानेक विविध भाव और आनन्द मय दृश्य उपस्थित होते हैं जिसमें श्रावण मास की विशेषता मानो है क्योंकि उसकी शोभा सबसे अधिक मनोहारिणी और न्यारी होती है। यही सब देख देख कर मीराँ भगवान् की महिमा गाती है।

३—रंगीली गणगौर=वर्षा ऋतु में सुहाग के लिये मनाया जाने वाला स्त्रियों का त्यौहार।

का आशा भरा सन्देश नहीं सुनाया। दादुर, मोर पपीहा और कोयल की हृदय के भावों को जगाने वाली न्यारी-न्यारी बोलियाँ सुनी जाती हैं, मधुर पवन वह रहा है और वर्षा की झड़ियाँ लग रही हैं, परन्तु यह सब देख-सुन कर मीराँ की विकलता घटने की अपेक्षा बढ़ ही रही है क्यों कि उसे जो विरह-रूप काली नागिनी ने डस खाया है तब उसे भला एक मात्र हरि-श्याम सुन्दर के बिना और भा ही क्या सकता है।

११—जाका .... खरी = जिसके प्रियतम विदेश में जाकर बसे हैं ऐसी मैं ही एक विरहिणी बाहर खड़ी खड़ी भीज रही हूँ।

विशेषः—दीर्घ विरह-ताप से संतप्त हुई मीराँ वर्षा को पाकर, उसे छोड़ दूर चले जाने वाले उन अपने प्रियतम श्याम सुन्दर की प्रतीक्षा में बाहर ही खड़ी खड़ी भींज रही है। भला विरहाग्नि भी क्या कभी बाहरी जल से शान्त हुई है? बिजली कड़कती हुई सुनकर वह चौंक उठती है पर उस भीता विरहिणी को अपने बाहु-पाश में लेकर अभय और सुखी कर देने वाले उसके प्रभु उसके पास नहीं।

'कीज्यो प्रीत खरी' = मीरांबाई जैसी कृष्ण की वास्तविक प्रेमाधिकारिणी ही उन छलिया धूर्त को यह मार्मिक ताना दे सकती है।

१२—आकरी = अत्युष्ण। खिण = क्षण में। ताता = अत्युष्ण। सीलवा = अतिशीतल। थंभण = थामने वाले। थाणे = स्थान में। रोपीया = बोये। बूंल = बंबूल। ओछा = छिछोरे, उतावले। तणा = का। उतावला = तुरन्त। बतावे छेह = किनारा कर (खींच) लेते हैं। ले .... झकोर = हवा की तरंग ज्यों आती है व जाती है त्यों भक्त जन मीराँ को मिलकर बिछुड़ जाते हैं, सत्संग का सुख अधिक नहीं टिक पाता, संत-संगति क्षणिक होती है।

विशेषः—इस पद में मीरांबाई ने प्रेम के उज्ज्वल तथा स्वार्थ युक्त (मोह) स्वरूप के तथा प्रेमी और प्रेम पात्र के कुछ लक्षण और कर्त्तव्य संक्षेप में बड़े ही मार्मिक शब्दों में बताये हैं।

भावार्थः—रमैया .... कोय = प्रेम-पथ में पैर धरते समय कल्पना ही नहीं थी कि जहाँ अनिश्चित काल तक विरहाग्नि में जलना पड़ता है, धैर्य को अपनी मर्यादा बनाये रखने में शंका होने लगती है, प्रतीक्षा पथ का कोई अंत नहीं दिखाई देता और आशा भी निराशा

'एके थारो..........सूल'—इस त्रिगुणात्मक संसार में एक श्रेय जिसका परिणाम अमृत मधुर और दूसरा 'प्रेय' जिसका परिणाम विष तुल्य होता है। ये दोनों पदार्थ जीव के सन्मुख हैं। या तो श्रेय को अपना कर प्राणी भगवद् भक्त हो आत्म कल्याण कर ले अथवा प्रेय को अपना कर विषयाभिमुखी हो पतन की ओर जाय।

'ज्यूं डूंगर का.........छेह'—ज्यों चातुर्मास में पहाड़ियों से नाले तीव्र गति से वह जाकर कुछ ही काल में जल-शून्य हो जाते हैं त्यों ओछे मन वाले मनुष्य का प्रेम स्थिर नहीं रहता, अर्थात् ही सत्य-सनातन वस्तु केवल भगवद् प्रेम ही है।

'आयो सावण.........झकोर'—मीरांबाई कहती है कि श्रावण भाद्रपद में ज्यों पर्याप्त वृष्टि के होने से चहुँ ओर शीतलता छा जाती है, हरा-भरा दिखाई देता है और मोर कूकने लगते हैं त्यों भगवान् श्यामसुन्दर की कृपा-दृष्टि हो जाने से उनके प्रतिनिधि स्वरूप हरिजन-भगवज्जन उसे आ मिले हैं परन्तु पवन की झकोर के समान उनका सत्संग क्षणिक ही होता है, अर्थात् सत्व गुण से भी परे—गुणातीत होने पर ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

१३—तिम=अंधकार। पनग=भुजङ्ग। लहरि.........जावै=विष की लहरें प्राणांत की व्यथा को उत्पन्न करती हैं। ऊलरि आई=घिर आई। साल=बाधा, व्यथा।

१४—अलूंणो=सूखा, फीका।

१८—गमक रहे=महक रहे। झकोर=हिलोर, लहर।

विशेष:—इस सरल और सरस पद को गाते व मनन करते समय भावुक हृदय में क्षण भर यह आभास होता है मानों हमें वृन्दावन में यमुना तट पर किसी कुञ्ज में श्रीराधा-कृष्ण की प्रत्यक्ष क्रीड़ा को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

२०—भावार्थः—नदियाँ.........तियारी=इस कड़ी में ऐसा सुन्दर और मधुर भाव भरा है कि कल्पना करते ही बन पड़ता है। एक एक शब्द में बहुत कुछ कह दिया है। 'नूतन जल से संपन्न होकर अधीर नदियाँ सागर से मिलने दौड़ पड़ती हैं' यह भाव भरा चरण क्या स्वयं मीराँ की प्रभु-मिलन की उत्कंठा और आतुरता को प्रकट नहीं करता?

३२—विलमाई = रोक रखा। लरजे = झुक झुककर वरसता है।

विशेष:—इस पद में मीराँ ने गोपी भाव से अपना भाव-सृष्टि का स्वानुभव व्यक्त किया है। श्यामसुन्दर से मिलने वह कुञ्ज में गई थी जहाँ उनके कारण विलम्ब हो गया और मार्ग में उसे बादलों की घनघोर घटाओं ने घेर लिया।

विशेष:—भगवान् श्यामसुन्दर के आगमन की भनक सुन कर मीराँ की उत्कंठा पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। वह महल पर चढ़कर देखती है कि कहीं वे दिखाई देते हों पर उनके स्थान पर मोर, पपीहा और कोयलादि मधुर स्वर से बोलते हुए सुनाई देते हैं, इन्द्र उमंग भरा उमड़ पड़ा है, दामिनी ने लाज छोड़ दी है, पृथ्वी ने भी इन्द्र से मिलने की खुशी में नये-नये रूप धारण किये हैं, भला यह सब देखकर मीराँ को कैसे धीर रह सकता है, परन्तु 'वेग मिलो महाराज' कहने के अतिरिक्त उसका वश ही क्या है! इस पद में वर्षा के वातावरण का संक्षिप्त पर बड़ा ही मनोहर वर्णन है।

३७—विशेष:—मेवाड़ छोड़ने के पश्चात् मीरांबाई वृन्दावन-यात्रा को गई तब व्रज के कई स्थानों में उसने भ्रमण अवश्य ही किया होगा। भावुक हृदय से अनुमान किया जा सकता है कि श्रीराधा के पीहर बरसाने जाने पर वर्षा काल में वहाँ की पहाड़ी पर कोमल स्वर से मयूरों की कूक को सुन कर उसे इस पद की स्फुरणा हुई हो। परन्तु उस सुहावने मौसम में 'ध्याने ध्याने तद्रूपता' के अनुसार वह जब अपने चित्तचोर श्यामसुन्दर की प्रतीक्षा में बाहर आई होगी तब वर्षा की फुहार में उसकी साड़ी की कोर भींजने लगी होगी जैसा कि उसने तीसरी कड़ी में कहा है।

३९—विशेष:—इस पद में वर्षा काल के मादक वातावरण में श्याम के बिना तड़पती हुई विरहिणी के हृदयोद्गार हैं। पद के तीसरे व चौथे चरण में विरह-तीव्रता के ऐसे विलक्षण भाव हैं जो हृदय को प्रभावित कर विरहिणी की छटपटाहट-वेदना का अनुभव करा देते हैं। वास्तव में ही श्याम-मिलन नहीं हुआ तो फिर इस जीवन की सार्थकता ही क्या?

४१—निहोरा = अनुनय विनय, प्रार्थना।

गाये गये हैं। उनमें प्रेमालाप कभी स्वगत, कभी सखी के साथ तो कभी अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के साथ होता दिखाई देता है, जिसमें उत्कंठा, प्रतीक्षा, आशा, कल्पना आदि कई उमड़ते हुए भाव व्यक्त हैं।

इस विभाग के ११, १२, १३, १४, १५, २२, २३, २४, ३५, ४१, ५३, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ये १७ पद गुजराती भाषा के हैं, तथा ५१ वां पद पंजाबी भाषा-छटा लिये है।

सं०-२०, २६, ५४, ५९, ६२ व ६३ ये ६ पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

अन्य संतों के 'प्रेमालाप' सम्बन्धी उद्गार।

कण्ठावरोध रोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः
पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥
(ना० भ० सू० ६८)

ऐसे अनन्य प्रेमी भक्त, कण्ठावरोध, रोमाञ्च, और अश्रु-युक्त नेत्र वाले होकर परस्पर सम्भाषण करते हुए अपने कुलों को और पृथ्वी को पवित्र करते हैं।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ॥७१॥

उन्हें देखकर पितर गण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सनाथा हो जाती है।

प्रेम लग्यो परमेश्वर सों तब भूलि गयो सिगरो घरवारा
ज्यों उन्मत्त फिरे जित ही तित नेकु रही न सरीर सँभारा।
स्वास उस्वास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा
'सुन्दर' कौन करे नवधा विधि छाकि पर्यो रस पी मतवारा॥

---

(२०) कृष्ण पीऊ मोरि रंग दे चुँदड़िया, ऐसी रंग से रंगवादे सांवरिया धोबी धोवे चाहे सारी उमरिया। बिन रंगायाँ घर नहीं जाउं, वीत जाय चाहे सारी उमरिया ॥

मीराँ ने उन कृष्ण वर को वर लिया चाहे ब्रज में---

(३४) वृन्दावन की कुंज गलिन में, गह लीनो मेरो हाथ,
लीनी भुज भर साथ, सांवरे सलोने गात कन्हैया।
जनम जनम के नाथ ॥

चाहे स्वप्न में,

(५५) माई मोहि सुपना में परणी श्याम। दूल्है श्रीभगवान।
डरती बोलूँ नहीं रे म्हारा, मैंदी में रच्या हाथ ॥

अथवा साँवरे के द्वारा कुछ टोना किये जाने पर--

(५) साँवरी सी किसोर मूरत कछुक टोना करयो, छाने ये
वर वरयो ।

जो भी हो उसका तो निश्चय हो चुका है—

(४०) सखी कारो कान वर म्हारो। लोग कहे कछु कारो,
कारो हमारो तो प्राण अधारो ॥

ऐसे सर्वगुण सम्पन्न प्रियतम से, उनमें किसी अखरने वाले लक्षण के होने पर भी, तनिक दूर रहने की कल्पना ही भला कैसे सह्य हो सकती है---

(४७) आखिर जात अहीर ।

(३६) प्रीत करो तो मेरो बोल सहो ।

अन्त में अपनी ओर से अखंड प्रीति निभाने का भाव व्यक्त करती है—

(३८) जो तुम तोड़ो पिया मैं नहीं तोड़ूं ।
तोरी प्रीत तोड़ी कृष्ण कोण संग जोड़ूँ ।

अभिलाषा ४

चलो मन गंगा जमना तीर ॥०॥
गंगा-जमना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर ॥१॥
बंशी बजावत गावत कान्हो, संग लियाँ बलबीर ॥२॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुँडल झलकत हीर ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल पर सीर ॥४॥

पूर्वराग ५

माई मेरो मोहने मन हरयो ।
कहा करूँ कित जाऊँ सजनी, प्रान पुरुष सूँ बरयो ॥०॥
हूँ जल भरने जात थी सजनी, कलस माथे धरयो ॥१॥
साँवरी सी किसोर मूरत, कछुक टोनो करयो ॥२॥
लोक लाज बिसारि डारी, तबहीं कारज सरयो ॥३॥
दासि मीराँ लाल गिरधर, छाने ये वर वरयो ॥४॥

अनन्यता ६

म्हारा सुगण साजन बोलो मुखाँ ।
बोलो मुखाँ जरा बैठो नखाँ ॥०॥
कर कृपा मेरी सेज बिराजो ।
माफ करीज्यो सब भूला चुकाँ ॥१॥
कै तुम उपर कामण कीया ।
कै भरमाया थाँने दूजी सोकाँ ॥२॥
मैं तो दासी थाँरी जनम जनम की ।
तुम ठाकुर म्हारे शीष रखाँ ॥३॥
ज्यो ओगुण तोही तुमरी बाजूँ ।
मीराँ कहाँ जाय पीव थकाँ ॥४॥

तन मन सब व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है ॥१॥
सखियाँ मिलि दोय चारी, बावरी सी भई न्यारी।
हौं तो वाको नीके जानौं, कुंज को विहारी है ॥२॥
चंद को चकोर चाहै, दीपक पतंग दाहै।
जळ विना मीन जैसे, तैसे प्रीत प्यारी है ॥३॥
विनती करूँ हे स्याम, लागूँ मैं तुम्हारे पाँव।
मीराँ प्रभु ऐसी जानो, दासी ये तुम्हारी है ॥४॥

भक्त-वत्सलता ११ (गुज०)

कोने कोने कहुं दिलडानी वात, वारे वारे कोने कोने कहुं ॥०॥
पांडवनी प्रतिज्ञा पाळी, द्रौपदी नी राखी लाज रे।
सुदामा नी वेळा वारी, उगार्यो प्रह्लाद रे ॥१॥
वृंदावन तमे वाहले उगार्युं, सुंदरी ने काज रे।
पहेरी सजी महेले पधारो, रीझे मारो नाथ रे ॥२॥
मीराँ बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, × × × ×।
तमने भजी ने हुं तो थइ छुं रे, अणि दिन रळियात रे ॥३॥

प्रेम-कटारी १२ (गुज०)

कंही जइ करूँ रे पोकार, कारी मुने घाव लाग्यो छे
में कंही जइ करूं पुकार ॥०॥
पीउजी हमारो पारधी भयो छे मैं तो भइ हरणी शीकार रे ॥१॥
दूर से तो आइ गोळी लग गइ शीरू पे, नीकर गइ पारमपार रे ॥२॥
प्रेमनी कटारी मुने खेंच कर मारी थी, थइ गइ हाल वेहाल रे॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हो गइ पारमपार रे ॥४॥

भक्त-वत्सलता १३ (गुज०)

वारे वारे कहोने कहीए दिलडानी वातो, वारे वारे कहोने कहीए ॥०॥
आगे तमे बोलडा बोल्या मारा राज ॥१॥

सोना चांदी को प्रभुजी घडो रे घडुली ।
जल भरवा को म्हारो काम म्हारो काम रे ।।२।।
हाथ सुमरनी प्रभुजी तुलस्यां री माला ।
नित उठ जपु' तारू' नाम तारू' नाम रे ।।३।।
मीरां बाइ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
नित उठ चरणा में म्हारू' ध्यान म्हारू' ध्यान रे ।।४।।

विनय १६

नाथ तुम जानत हो सब घट की मीराँ भक्ति करे रे प्रगट की।।०।।
नाही धोइ मीराँ ले समरणी तो पुजा करत सितापत की ।
सालिगराम कु तुलशी चढावे तो
भाल तिलक बीच टिपकी ।।१।।
राम मंदीर मां मीरांबाइ नाचे
ताल बजावत चुटकी ।
रुमझुम रुमझुम वाजत घुघरा
लाज तजी घुंघट की ।।२।।
विख ना प्याला राणाजी ए भेज्या
साधु संगत मीराँ अटकी ।
करी चरणामृत पी गइ मीराँ
अमृत की जेसी घुंटकी ।।३।।
सुरत दोरी पर मीराँ नाचे
शीर पे गागर उपर मटकी ।
मीराँ कहे हरी गीरधर ना गुण
सुरती लगी जेसी नटकी ।।४।।

हींगलु को ढोलीयो मिसहु की सीरक।
तुम पोडो मुरारी पोडावे राधेप्यारी ॥६॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर।
हरि चरणा पर जाउ बलिहारी ॥७॥

ज्ञान २०

कृष्ण पीऊ मेरी रंग दे चुँदड़ियाँ ॥०॥
ऐसी रंगत रंगवादे साँवरिया,
धोबी धोवे चाहे सारी उमरियाँ ॥१॥
बिना रंगायाँ घर नहीं जाऊँ,
बीत जाये चाहे सारी ऊमरियाँ ॥२॥
अध गोकल अध मथुरा नगरी,
ब्रन्दावन में सैय्याँ ॥३॥
संकड़ी सेरचा में मोहन मल्या
भूली-भूली लाज बिसारी चुँदड़ियाँ ॥४॥
जमुना के नीरां तीरां धेनु चरावे,
अजब सुणावे माधू मीठी बंसरियाँ ॥५॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि चरणां गुण गइयाँ ॥६॥

व्यंग २१

आया अठे अब जावो कठे साँवरिया, काँई मस आया अठे ॥०॥
झरमर झरमर मेवला बरसे
काली कामल लाया कठे साँवरियाँ ॥१॥
केशर पाग कसूमल जामा
छोगा की लुक लाया कठे साँवरिया ॥२॥

हांरे में तो तजी छे लोकनी शंका, प्रीतम का घर हे बंका।
बाई मीराँ ए दीधा डंका ॥४॥

विनय २४

मार्या रे मोहनां वाण, धुतारे मने मार्या मोहनां बाण ॥०॥
ध्रुव ने मार्या, प्रह्लाद ने मार्या, ते ठरी ना बेठा ठाम ॥१॥
शुकदेव ने गर्भवास मां मार्या, ते चारे युगमां परमाण ॥२॥
हिरण्यकश्यप मारी वा'ले उगार्यो प्रह्लाद,
दैत्यनो फेड्यो छे ठाम ॥३॥
सायर पाज बांधी वा'ले सेन उतारी, रावण हण्यो एक बाण ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हमने पार उतारो श्याम ॥५॥

गुणगान २५

तेरो गुण ना विसरूँ महाराज ॥०॥
गहरी गहरी नदियाँ नाव पुरानी। नावडियो नादान ॥१॥
पेले जो ढ़ावे सतगुरू ऊभाँ। ओले ढ़ावे संसार ॥२॥
धर्मी धर्मी पार उतर गया। पापी रे नाव डुबाय ॥३॥
नाका मँहिली नथड़ी दे दूँ। और गला को हार ॥४॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी। अध विच जमुना जाय ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। हरि चरणाँ गुण गाय ॥६॥

ज्ञान २६

म्हारे धन थेंई छो। थेंई छो दीनदयाल म्हारे धन थेंई छो ॥०॥
सुमिरण म्हारे सेलडो रे हरि हिया नो हार।
कृष्ण कटारो म्हारे वांकडो म्हारे गोविन्द नी तलवार ॥१॥
सोनो सोनी पारख रे में काँइँ जाणु गंवार।
हरिजन हरि ने ओळखे म्हारे हीरा रो वोपार ॥२॥
मीराँ हरि री लाडली रे रही भजन भरपूर।
एक वार दरसण दीजो म्हाने नागर नन्द किशोर ॥३॥

प्रार्थना ३०

आजो जी घनश्याम म्हारे, माखन मिश्री खावा ने ॥०॥
थें आजो पिया, संग मत लाजो, नहीं छे दधि लुटावा ने ॥०॥
एक जांवणी दही जमावूँ प्रभुजी के भोग लगावा ने ॥२॥
ऊँची मेडी पलंग भकोरा, म्हूँ छूँ सेज बिछावा ने ॥३॥
मीरांबाई गिरधर नागर, रँग भर रास रमावा ने ॥४॥

प्रभाती ३१

चलोरी सखी अणी रंग भवन में, सुन्दर श्याम जगावा ने ॥०॥
पागा का जों पेचज ढीला, जामा की कस दूरी जी ॥१॥
आँखडल्याँ रा कजला फीका, मुख बीडल्यां लिपटानो जी ॥२॥
सारी रैन श्यामा संग खेल्या, अब माखन मिश्री खावा जी ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित छावाजो ॥४॥

अनन्य-भाव ३२

म्हाँरे सेजां मांडे छे जी नन्दकुमार ॥०॥
कहो तो सखी अब क्यों छोड़ूं, वो पति मैं बांकी नार ॥१॥
बुरी कहै कोई भली सुनावो, मारे एक अधार ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सांवरियो भरतार ॥३॥

नैवेद्य-समर्पण ३३

तुम जीमो गिरिधर लालजी ॥०॥
मीराँ दासी अरज करे छे, सुनिये परम दयालजी ॥१॥
छप्पन भोग छतीसों विञ्जन, पावो जन प्रतिपाल जी ॥२॥
राजभोग आरोगो गिरिधर, सनमुख राखो थालजी ॥३॥
मीराँ दासी चरण उपासी, कीजे वेग निहालजी ॥४॥

प्रार्थना ३७

साँवरा ठाडी रहूँ घर जावुँ रे ॥०॥
कबकी खड़ी में तेरे द्वार पर । खड़ी खड़ी कुमलाऊ रे ॥१॥
भाल तिलक तुलसी की माला । में तो जपती आऊँ रे ॥२॥
पाँय घूंघरा रिमझिम बाजे । नाचत गाती आऊँ रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । गुण गोविन्द का गाऊँ रे ॥४॥

प्रेम-लगन ३८

अँखियाँ प्यारी लागी रे साँवरिया थारी ॥०॥
चालोजी कृष्ण आपां बाग लगावां, आप चेड़ा हम क्यारी ॥१॥
चालोजी कृष्ण आपां मेल चुणावां, आप झरोखा हम बारी ॥२॥
चालोजी कृष्ण आपां चोपड़ खेलां, आप पासा हम सारी ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आप जीत्या हम हारी ॥४॥

अनन्यता ३९

जो तुम तोड़ो पिया में नहीं तोड़ूँ ।
तोरी प्रीत तोड़ी कृष्ण कोण सँग जोड़ूँ ॥०॥
तुम भये तरूवर में भई पंखियाँ ।
तुम भये सरोवर में तोरी मछिया ॥१॥
तुम भये गिरिवर में भई चारा ।
तुम भये चंदा में भई चकोरा ॥२॥
तुम भये मोती प्रभु में भई धागा ।
तुम भये सोना में भई सुहागा ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु व्रज के बासी ।
तुम मोरे ठाकुर में तोरी दासी ॥४॥

लीला ४३

कहाँ कहाँ जाउँ तोरे साथ कन्हैया बंसी केरे बजैया, कन्हैया ॥०॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में । गह लीनो मेरो हाथ कन्हैया ॥१॥
दधि मेरो खायो मटकिया फोरी । लीनी भुज भर साथ कन्हैया २॥
लपट झपट मोरी गागर पटकी । साँवरे सलोने गात कन्हैया ॥३॥
कबहुँ न दान लियो मनमोहन । सदा गोकल आत जात कन्हैया ।४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । जनम जनम के नाथ कन्हैया ॥५॥

सेवाभाव ४४

तुम जीमो गिरधरलालजू ॥०॥
मीराँ दासी अरज करै छै, मोकूँ करो निहाल जू ॥१॥
या विरियाँ है बाल भोग की, लीज्यो चित में धारजू ॥२॥
केसर अतर पुष्प के हरवा, इण विध करो सिंगारजूँ ॥३॥
छप्पन भोग छतीसों विंजन, लाई भर भर थालजू ॥४॥
पान गिलोरी सुगँध मिलाकर, कीनी है सब त्यारजू ॥५॥
मीराँ दासी किई परिक्रमा, मोकूँ करो निहालजू ॥६॥

सेवाभाव ४५

बावरी कहै रे साधो बावरी कहै (मीरांबाई नै दिवानी दुनिया) ॥०॥
बनके तमोलन कतरूँ पान, पानके खेवैया मेरे श्याम सुजान ॥१॥
बन मालिन गूँथूँ बनमाल, उर पहरावै मीराँ गिरधरलाल ॥२॥

दोहा

मीराँ हर की लाडली, नित प्रति रहे हजूर ।
साधाँ रे सनमुख बसै, दगाबाज से दूर ॥३॥

उलाहना ४६

श्याम बंशी वाला कनैया, मैं नाँ बोलूँ तुमसेरे ॥०॥
घर मेरा दूरा गगरी मेरी भारी, पतली कमर लचकाय रे ॥१॥

म्हारै जप तप अँगियाँ भली वणी,
साँवलड़ो हे अँगियां री लूम ॥४॥
म्हारै तन को तिमण्यों वण्यों,
साँवलड़ो हे हिवड़ा रो हार ॥५॥
म्हारै नवधा नथ सुहावणी,
साँवलड़ो हे मोत्यां बिचली लाल ॥६॥
म्हारै फूल झूमका फव रह्या,
साँवलड़ो हे झूमर री लूम ॥७॥
म्हारै करणी रो काजल घुल रह्यो,
साँवलड़ो हे (म्हारै) तिलक ललाट ॥८॥
म्हारै राम नाम की चूनड़ी,
साँवलड़ो हे स्यालूड़ा री कोर ॥९॥
म्हें तो नख सिख गहणों पहरियो,
म्हे तो जास्यां साँवलड़ा री सेज ॥१०॥
वाई मीराँ रँग में भली रँगी,
साँवलड़ो हे (म्हारा) सिर को मोड़ ॥११॥

रूपासक्ति ५१ (पंजावी)

सुनि नी अमानी अँखियाँ निमाँनी ॥०॥
मनमोहन दे रूप लुभानी साढी गलनैं कहन माँनी ॥१॥
लोकाँ दे डर छपिके छिपावाँ, भरि भरि आवत पाँनी ॥२॥
मीराँ प्रभु गिरधर गल साढ़ी, ढँकी छिपी सब जाँनी ॥३॥

सेवाभाव ५२

सेजड़ली र सुधार गिरधर आँवणाँ ये (वाईजी)
सेजड़लीर सुधार ॥०॥

प्रार्थना ५५

माई मोहिं सुपना में परणी श्याम ॥०॥
सुपना में बांध्यो डोरडो बाला, सुपना में आई मारे जान ।
तैंतीस क्रोड आया देवता म्हारे, दुल्है श्री भगवान ॥१॥
गहली कंवरी मीराँ बावरी रे, सुपनो है आल जंजाल ।
सुपना में सांई मिला तोने, कोई बतायो सहनाण ॥२॥
अंग हमारे हलदी सुगंधी, सुंघो भीनो म्हारो गात ।
पर डरती बोलूं नहीं रे म्हारा, मैंदी में रच्या हाथ ॥३॥
दासी मीराँ की बीनती, थें सुणज्यो गरूड असवार ।
गज की वार पियादे धाए, पलक न लागी वार ॥४॥

विरहालाप ५६ (गुज०)

एतो कामणिया म्हारा बाळीडा जाणे दूजा कामणिया म्हारे नजरे न आवे ॥०॥
गिरधारी रे थारी गत न्यारी व्हाला,
इणडा में जीव संतो क्यांथी आवे ॥१॥
जंतर मंतर नी जूँठी बाजी,
गोड़ विद्या में गोता कुण खावे ॥२॥
संसार सागर व्हाला बहुजल भरिया,
जल में माछलियो संतो क्या खावे ॥३॥
कागळियानां कोरा कटका लखिने रे,
राधानां वर म्हारी नजरे न आवे ॥४॥
जड़ी बूँटी ना जोर नहीं हाले रे,
नाड़ी नां वेद म्हारी नजररचां न आवे ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नां गुण,
दासी तुम्हारी दुःख बहु पावे ॥६॥

ओतर दखण थी चढी एक वादळी रे ।
वरस्या वारे मेघ रे, वीजा ने मारे आखडी हो जी ॥१॥
नदी रे किनारे वैठो एक वगलो रे ।
हंसलो जाणी कीधी प्रीत रे । मुंढा मां झाली माछली हो जी॥२॥
फूलनो पछेडो ओढूँ प्रेम घाटडी रे ।
वाई मारो शामळीयो भरथार रे । वीजा ने मारी चुंदडी हो जी॥३॥
वाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
मारो पियुडा परदेश रे । फरुके मारी आंखडी हो जी ॥४॥

भक्ति　　　　　　　　　　६० (गुज०)

कोण जाणे रे वीजो कोण जाणे
　　　　मारी हाल तो फकिरी मालमी विना ॥०॥
हर दम उमीयाजिना हैडामां हरखु (व्हाला)
　　　　नारायण नामनी मुंने लेहे तो लागी ॥१॥
कुवुद्धिडा कांइ नव जाणे हरिनी भक्ति मां (व्हाला)
　　　　समज्या विनानुं नोखुं नोखुं ताणे रे ॥२॥
वाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर नागर (व्हाला)
　　　　अंतर राख्युं हरि तारे व्हाने रे ॥३॥

रूप-शृंगार　　　　　　　　६१ (गुज०)

घूघरी घूघरी घूघरी रे, मेरी पाउं चल वाजे घूघरी ॥०॥
गोरे गोरे अंगे भला सालुडा विराजे,
　　　　कोणे नाखी छे लाल भूरकी रे ॥१॥
गोरे गोरे अंगे भली अतलसी चोळी,
　　　　कोणे ओढी छे लाल चुंदाडी रे ॥२॥
गोरे गोरे अंगे भलां मानीयां रे मोती,

प्रभाती ६५

चलो री सखी अणी कुन्ज भवन में, सुन्दर श्याम जगावा ने ॥०॥
सुन्दर श्याम जगाऊं मेरी सजनी, चंद्रमुख दर्शन पाऊंजी ॥१॥
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे, कुंडल की छवि छाईजी ॥२॥
माखन मिसरी भोग धराऊं, रूचि रूचि भोग लगाऊंजी ॥३॥
मीराँबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल रज चाहूंजी ॥४॥

कोई········हलको···भारी (मैं तो) लियोरी (पा० तराजू)
ताखड़ियाँ तोल ॥
कोई कहे छाने कोई कहे चौड़े, लियो रो वाजताँ ढोल ॥
कोई कहे घटतो, कोई कहे वढतो (मैं तो) लियो है वरावर तोल॥
कोई कहे कालो, कोई कहे गोरो, (मैं तो)देख्यो है घूंघट पट खोल ॥
मीरां के प्रभु गि—ना—(म्हारे) पूरव जनम रो कोल ॥

६—नखाँ=निकट। सोकाँ=सौतों ने। ज्यो··· ·····वाजूँ= भली-बुरी जैसी भी हूँ तुम्हारी ही कहलाती हूँ। थकाँ=होते हुए।

अधिक चरण:—

यो तो पति मेरे दायन आवे।
छोड़ दियौ जी मैं तो हकां धकां ॥

८—पद पाठान्तर:—

तनक हरि चितवोजी मोरी वोर ॥ टेर ॥
मैं आधीन प्रभु सरण तुमारी ॥ और नहीं कहूँ जोर ॥१॥
हम चितवत तुम चितवत नांही ॥ दिल के वड़े जी कठोर ॥२॥
हमरे आस ऐक तुमारी ॥ आस नहीं कछू और ॥३॥
घड़ी घड़ी मैं अरज करत हूँ ॥ अरज करत भयो भोर ॥४॥
तुमसें हमकूं नाहि मिलोगे ॥ हमसी लाख करोर ॥५॥
वन वन मांही व्याकुल होलूं ॥ ढूंड फरी चहूँ ओर ॥६॥
मीराँ के प्रभु कवर मिलोगे ॥ सूंदर प्रीतम मोर ॥७॥

अधिक चरण:—

हमसे तुमको वहुत हैं तुमसे हमको एक।
शशि के तारा वहुत हैं, तारा के शशि एक ॥

६—झालो=संकेत। हेलो=पुकार।

१२—ते……… लाज=उन वचनों को याद कर कहने में मुझे लज्जा आती है। देखो पद ११। प्रजापात=कुम्हार। नीमामां=अलाव में। पूर्या=बन्द किये थे। देवता नो=अग्नि का। मांजारी ना=बिल्ली के। सालुडा=साड़ी के प्रकार विशेष।

१६—सुरत………नटकी=सिर पर मटकी व उस पर गागर रखकर चलने वाली पनिहारी तथा रस्सी पर चलने वाले नट के समान मीराँ भी सांसारिक द्वन्द्वों की ओर से समता साधकर चित्त वृत्ति को एकाग्र कर ध्यान करती है।

१६—सार=लोहा। हींगलु=हिंगुल, सिंदुर। ढोलीओ=पलंग। मिसरू=मखमल। सीरक=रजाई।

२०—भावार्थः—कृष्ण…………उमरियाँ=मीरांबाई अपने प्यारे कृष्ण से, अपनी चित्त वृत्ति रूप चुनरी को प्रेम के ऐसे गहरे रंग में रँगवा देने को कहती है जो कदापि छूट न सके। बिना……… ऊमरियाँ=इष्ट प्राप्ति करके ही छोड़ूँगी। तेरे दर पे अड़े हैं कुछ करके उठेंगे, या वस्ल भी होगा या मर के हटेंगे।

पाठान्तरः—

ऐसी रंगो जी साँवरा रंग नहीं छूटे,
धोबी………उमरियाँ॥

२ अधिक चरणः—

आप न रंगो तो साँवरा मोल रंगा दो,
प्रेम नगर में लगी है बजरियाँ॥
चूंदड़ ओढ़ आँगन बीच ठाढ़ी
हृदय की खुल गई बजर कवरियाँ॥

विचारिए:—

रंगरेजा सतगुरू से चुनड़ी लई रंगवाय॥
अजब रंग रंग दीनी मेरे सतगुरू।
नाम लियां नित नित झलकाय॥

प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी ज्योति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे, सोन हि मिले सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करे रैदासा।

४१—घेलामां.........लाध्यो=पागलपन से लाभ हुआ। आगे ....बांध्युं=पहले तो अज्ञानवश माया में उलझ गए। माणे= उपभोग करते हैं। पुरव.........हाथे=पूर्व जन्मकी प्रीति के कारन प्रभु ने हाथ पकड़ कर हमें अपनाया। घेलानु.........करशे=वास्तव में जो सांसारिक-दृष्टि से पागलपन को स्वीकार करेगा। सुखनु.........
.........लागे=विवेक द्वारा जिसे सकल सुख केवल दुःख मात्र प्रतीत होते हैं। ते.........मरशे=वह पुरुष कालातीत हो जायगा।

५०—विशेषः—प्रभु कृपा के लिए वास्तव में भक्ति-प्रेम के सात्विक गुणों युक्त आभ्यंतरिक शृंगार की आवश्यकता है न कि वाह्य धातु अथवा वस्त्रादि विशेष की।

५१—अमानी=मेरी माँ। निमाँनी=पराई। दे=के। साढी= हमारी। गल=बात। कह न माँनी=जिसका कोई न हो।

५४—विशेषः—मन अनुकूल होने पर सुखी और प्रतिकूल होने पर जीवन दुःखी हो जाता है क्योंकि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः'। अर्थात् मनुष्य के बंधन—मोक्ष का कारण वास्तव में मन ही है। अपनी जीवन-वाटिका के मन-भ्रमर को इसी लिए मीराँ ने इस पद में उपदेश किया है।

भावार्थः—पवन.........दोडीशमां=संसार के प्रलोभनों में भी अपने को विचलित नहीं होने देना। चंपो.........तोडीशमां =संसार में अनेकानेक सुन्दर पदार्थ-विषय हैं परंतु पूर्ण विवेक-विचार पूर्वक इनमें से, जीवन—कृतार्थ कराने वाले को ही अपनाना। त्रीकम ....छोडीशमां=चराचर त्रिगुणात्मक विश्व में एक मात्र ईश्वर

तत्पर हुई, उस समय मीरांबाई ने अपनी अनुपम रूप-सुधा युक्त मद-भरी छवि का अनुभव कर, शिव के मन को हरने वाली मोहिनी के समान, कृष्ण कन्हैया के चित्त को चुरानेवाली राधा के भाव में तद्रूप होकर यह पद बनाया है। उसकी मनोहारिणी लावण्य-प्रभा की इस पद में झाँकी मात्र है।

६२—आगे······मेरा=इस पंच महाभूतात्मक सृष्टि में जहाँ देखो वहाँ-घर घर में प्रभु ही व्याप्त है—उन्हीं की सब लीला है। कोरा··············निर्वानी=कच्चे घड़े के समान क्षणभंगुर शरीर में गंगाजलवत् निर्मल-निर्विकार आनंद स्वरूप परमात्मा विराजमान है उन्हें जो जान लेता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है।

६४—छठे·········मांगे=उनका सब अमंगल मिट जाय यही हमारी हार्दिक कामना है।

रहता है। जो त्यागी, साधु-संत अथवा गृहस्थी होते हुये भी सत्संगी और विवेकी होते हैं उन्हें प्रभु-प्राप्ति में ही परम सुख—परमानंद का अनुभव होता है। इसीलिये वे प्रभु-प्राप्ति के ही उद्देश्य से साधन में प्रवृत्त होते हैं साधन करते-करते जब वह क्षण आता है कि साधन सिद्ध होने लगता है अथवा अपने मनोरथ पूर्ण होने का क्षण निकट होता है तब जीव को परम समाधान होता है और वह आनन्दसागर में गोते लगाता है। साधन और लक्ष्य की भिन्नता के कारण साधक को आनन्दानुभव भी भिन्न-भिन्न रूप से होता है। ज्ञान अथवा योग द्वारा उपासना करने वाले को अपने निर्गुण लक्ष्य की प्राप्ति करने पर जिस आनन्द का अनुभव होता है वह भक्ति-प्रेम के उपासक को अपने सगुण लक्ष्य की प्राप्ति होने पर होने वाले आनन्दानुभव से भिन्न है। परन्तु भिन्न अनुभव होने पर भी मूल में आनन्द तो दोनों को एक सा ही होता है। भिन्न मिष्टान्नों में मधुरता तो एक ही है, भले स्वाद न्यारा रहे।

मीरांबाई के परमप्रिय इष्ट—परम लक्ष्य एक मात्र गिरिधर गोपाल ही थे और उन्हीं की प्राप्ति के लिये ही वह सारे जीवन भर प्रयत्नवती रही और अन्त में अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करके ही छोड़ा और अपने प्रियतम प्रभु में समा गई। जिस प्रकार सूर्य के सन्मुख एकटक देखते रहने से फिर अंधेरे में ज्यों स्पष्ट दिखाई नहीं देता है और सूर्य तेज की ही चमक कुछ समय तक नेत्रों के आगे बनी रहती है, त्यों सदा सर्वदा मीरांबाई श्रीकृष्ण को ही देखा करती थी और उन्हीं के प्रेम में मत्त रहा करती थी। उसी प्रेम-भावना की सृष्टि में विचरते हुए—रमण करते हुए उसे कभी-कभी उस भावना सृष्टि का साक्षात्कार भी

भगवद्विचार, भगवत्संग, भगवत् स्मरण, भगवद् गुणगान, भगवद्ध्यान, भगवत्-शरणागति, भगवत् समर्पण एवं भगवत् साक्षात्कार से ही प्राप्त होता है। सारा जीवन सुख की आशा से नाना कर्मों में प्रवृत्त होने बाद हताश होकर अंत में जीव को प्रभु के शरण में ही जाना पड़ता है। चारों ओर से खींची हुई जब चित्तवृत्ति भगवान् की ओर लगती है तभी आनन्दानुभव की प्राप्ति होती है चाहे, वह निर्गुण साधना से हो वा सगुण! भक्त को अपनी भावनानुसार हृदय में बसी भगवान् की छवि का, ध्यान में चाहे स्वप्न में अथवा पराकाष्ठा की प्रेम साधना हो तो प्रत्यक्ष में अवश्य ही साक्षात्कार होता है। तभी जीव का जन्म कृतकृत्य हो जाता है। ऐसा भगवद्दर्शनानन्द जिस भक्त को प्राप्त हो उसके सौभाग्य की कोई सीमा नहीं। मीराँ भी इस दर्शनानन्द की परम अधिकारिणी थी।

अपने प्रियतम श्यामसुंदर की अपूर्व रूप शोभा का वह यथा मति वर्णन करती है--

(३) सुन्दर वदन मदन की शोभा चितवन अनियारी।

(१०) सहस्र गोप्याँ विच आप विराज्यो, ज्यों तारन बिच चंदा॥

(३१) गहे द्रुम डार कदम को ठाड़ो मृदु मुसकाय म्हांरी और हंस्यो।

(२०) राधावर महाराज (व) रसिकों रा (के) सिरताज' हैं॥

वे अपने अनन्य प्रेमी भक्तों पर कई प्रकार से वशीकरण करते हैं—

(५१) करिया कामण कंई कंई कंई॥

(६) जब से मोहि नंद नंदन दृष्टि पड़्यो माई। तब से पर-
लोक लोक कछु ना सोहाई। गिरधर के अंग अंग
मीराँ बली जाई ॥

दर्शनानन्द में देह की सुधि तक नहीं रह पाती—

(३९) रूप देख अटकी तेरो। देह तैं विदेह भई ढुरि परि
सिर मटकी ॥

एक बार दर्शनानन्द के प्राप्त होने पर फिर यही मन में लगता है कि सदैव उन्हें देखते रहें, दृष्टि के आगे सदा बने रहें—

(५०) मारी नजर आगळ रहे जो रे, नागर नन्दा। आडुं
अवळुं जोयुं गमेना, जोया पुनम चंदा रे। मोही
मोहनी फंदा रे ॥

(२९) म्हें तो म्हारा रमैया ने देखबो करूँरी। जहाँ जहाँ
पाँव धरूँ धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँरी।
चरणां लिपट परूँरी ॥

अपने प्रेमी भक्त को एक बार अपना लेने बाद श्यामसुंदर कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते—

(२३) प्रीत करे तेनी पूठ न मेले, पासे थी ए नथी खसता ॥

दर्शनानन्द की पराकाष्ठा होने पर आवरण हटकर प्राण ज्योति भगवज्ज्योति में समा जाती है—

(१५) मुख पर का आँचला दूर कियो तब ज्योत में ज्योत
समाय रही ॥

और अन्त में—

(६३) मीराँ दासी श्याम की रे अंग में लीन्ही समाय ॥

यही मानव जीवन की कृतार्थता है।

तुलसी वन कुञ्जन संचारी।
गिरिधर लाल नवल नटनागर मीराँ बलिहारी ॥५॥

मिलन ४

म्हारा ओळगिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया हिल मिल मंगल गाया जी ॥०॥
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया यूँ मेरे आणँद छाया जी।
मगन भई मिल प्रभु अपणा सूँ भौ का दरद मिटाया जी ॥१॥
चँद कूँ निरखि कमोदणि फूलै हरखि भया मेरी काया जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी हरि मेरे महल सिधाया जी ॥२॥
सब भक्तन का कारज कीन्हा सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीराँ विरहणि सीतल होई दुख दूँद दूर नसाया जी ॥३॥

रूपासक्ति ५

या मोहन के मैं रूप लुभानी ॥०॥
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मँद मुसकानी ॥१॥
जमना के नीरे तीरे धेनु चरावे, बंसी में गावे मीठी बानी ॥२॥
तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण कँवल मीराँ लपटानी ॥३॥

रूपासक्ति ६

जबसे मोहिं नंदनंदन, दृष्टि पड़्यो माई।
तबसे परलोक लोक, कछू ना सोहाई ॥०॥
मोरन की चन्द्रकला, सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहैं ॥१॥
कुँडल की अलक झलक, कपोलन पर धाई।
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई ॥२॥

रमित भई हौं साँवरे के संग, लोग कहैं भटकी ।
छुटी लाज कुल कानि लोग डर, रह्यो न घर हटकी ॥२॥
मीराँ प्रभु के सँग फिरेगी, कुञ्ज कुञ्ज लटकी ।
श्री (बिना) गोपाललाल बिन सजनी, को जाने घटकी ॥३॥

रूपासक्ति ९

बंसीवारे की चितवन सालति है ॥०॥
मोरमुकुट मकराकृित कुंडल, तापर कलंगी हालति है ॥१॥
मैं तो छकी तुमरी छवि ऊपर, जो न छके तेहि नालति है ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चित लागति है ॥३॥

प्रेमालाप १०

मुकुट पर वारी जाउँ नागर नन्दा, बालमुकुन्दा ॥०॥
सब देवन में आप बड़े हो, ज्यों तीरथ बिच गंगा ॥१॥
सहस्त्र गोप्याँ बिच आप बिराज्यो, ज्यों तारन बिच चंदा ॥२॥
शीश चन्दन की खौर बिराजे, बिच केशर का बिंदा ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम ठाकुर हम बन्दा ॥४॥

प्रेमालाप ११

सहेलियाँ साजन घर आया हो ॥०॥
बहोत दिनाँ की जोवती विरहणी पिव आया हो ॥०॥
रतन करूँ नेवछावरी ले आरति साजूँ हो ।
पिव का दिया सनेसड़ा ताहि बहोत निवाजूँ हो ॥१॥
पाँच सखी इकठी भई मिलि मंगल गावै हो ।
पिय का रळी बधावणा आणंद अंग न मावै हो ॥२॥
हरि सागर सूँ नेहरो नैणा बँध्या सनेह हो ।
मीराँ सखी के आँगणै दूधाँ बूठा मेह हो ॥३॥

सोच कर अब होत कहा है,
प्रेम के फंदे में आय रही ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
बुँदमों बूँद समाय रही ॥३॥

विनय १६

तोरी साँवरी सुरत नंदलालाजी ॥०॥
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावत। काली कामलीवालाजी ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर शोभे। कुण्डल झलकत लालाजी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। भक्तन के प्रतिपालाजी ॥३॥

रूपासक्ति १७ (गज०)

मारूँ मन मोह्युँ रे, लक्ष्मीवरने लटके। घर खोलूँ तो खटके॥०॥
आ तो संसारी डो छे कूड़ो। हरि चरणे चित अटके ॥१॥
मोर मुकुट ने काने कुंडल। पीतांबर ने लटके ॥
वृंदावननी कुंज गलिन माँ। वेंत वाँसने कटके ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। रंग लाग्यो रँग चटके ॥४॥

उल्लास १८

आज तो आनंद म्हारे कृष्ण आये पावणा ॥०॥
गेंद के मिलैया जब टोरो तो लगावणा।
कालीदह में कूद पडे नाग नाथ लावणा ॥१॥
मथुरा में कंस मार्यो पिता कू छुडावणा।
पहुँचे बली मखशाळा रूप धरे वावणा ॥२॥
फूलाँ हंदी सेज विछाई फूलोंदा सिरावणा।
फूली फूली राधा डोले गावती वधावणा ॥३॥
वंशी के बजैया जरा फेर से बजावणा।
मीराँ कूँ तुम्हारी आस हिये से लगावणा ॥४॥

प्रभुजी मने कंठे वळग्या । कलकोरे न थावूं ।
शामळा साथे स्नेह बंधाणो । हेते हरि गुण गावूं ॥१॥
काम काज मुंने कांई न सूझे ! ने घरमां घेली थावूं ।
संत समागम जियां होय तियां । हरखे दोड़ी आवूं ॥२॥
गंगारे जमुना घरने आंगणे । तीरथ क्यां क्यां जावूं ।
अडसठ तीरथ संतने चरणे । नित्य त्रिवेणी मां न्हावूं ॥३॥
एकादशी व्रत कोण करे । हुं तो त्रणे टाणां खावूं ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण । हेते हरि रस पावूं ॥४॥

रूपासक्ति २२

नैनाँ मेरे निपट बंकँट छवि अटके ॥०॥
वारिजवदन कमल दल लोचन, यमुना निकट के तटके ॥१॥
सोवत जागत विहरत निशदिन, ध्यान में बंशीवट के ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तोरे दरस कूं नागर नटके ॥३॥

प्रेमालाप २३ (गुज०)

ओ आवे हरि हसता सजनी ओ आवे हरि हसता ॥०॥
मुज अबला एकलडी जाणी, पितांबर केडे कसता सजनी ॥१॥
पचरंगी पाघ केसरिया रे वाघा, फूलडां महेले तोरा ॥२॥
मारे आंगणीये द्राख बीजोरां, मेवले भरावुं तारा खोळा ॥३॥
प्रीत करे तेनी पूठ न मेले, पासे थी ए नथी खसता ॥४॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर ना गुण, हृदय कमल मां वसता ॥५॥

शृँगार-सेवा २४

आवो शृँगार कराऊँजी, सुन्दर श्याम छबिला रे लाला
आवो शृंगार कराऊंजी ॥०॥
पीली पछेडी खोल जरी की, पगडी लाल बँधावुँजी ।
छोगा टांग किलंगी टांकूँ मुकुट की छबियाँ बनाऊँजी ॥१॥

प्रभु-स्तुति २७

द्वारिका मांहे झालर बाजे, शंखन की घनघोर,
पोढ़े श्री द्वारिका रणछोड़ ॥०॥
गोमती हरि रा चरण चापे, सागर करै छे किलोल ॥१॥
टीकम महादेव और परसोतम, कंवर कल्याणजी री जोड ॥२॥
लाल पलंग पर सफेद बादलियां, सीरख वा मसोड ॥३॥
रूखमणीजी रा रंगमहल में, दीपक जले छे करोड ॥४॥
रूखमणीजी हरि रा चरण चापे, बाज रह्या छे रमझोल ॥५॥
रूखमणीजी हरि रे सेज पोढ़े, दुजा हो नन्दकिशोर ॥६॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हाजर छुंजी कर जोड ॥७॥

प्रेमालाप २८

आज तो आनंद मेरो कृष्णजी को आवना ।
जमुना के नीरे तीरे गौवन चरावना ॥०॥
कालीसी कामलिया ओढे वंशी का बजावना ।
मथुरा में कंस मारे लंकापति रावना ॥१॥
राजा बलि के द्वार ठाड़े रूप धरि वामना ।
मीराँ है चरणों की दासी कृष्ण गुण गावना ॥२॥

प्रेमालाप २९

म्हें तो म्हारा रमैया ने देखवो करूँ री ॥०॥
तेरो ही उमरण तेरोही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँ री ॥१॥
जहाँ जहाँ पाँव धरूँ धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँ री ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणां लिपट परूँ री ॥३॥

गल वैजन्ती माल विराजे, वीरो हलधरजी को ॥२॥
कड़वो तेल कृष्ण नहीं खावे, कृष्ण खवैयो घी को ॥३॥
माल विराणा मीठा लागे, घर को लागे फीको ॥४॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावे, माँगे दाण मही को ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि विन सब रस फीको ॥६॥

प्रेम-दृढ़ता ३४

नैणां री हो पड़गई याही बांण ॥०॥
वेर वेर निरखूँ मुख शोभा, छूट गई कुल कांण ॥१॥
कोई भलां कोई बुरां कहो, मैं सिर लीनी तांण ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पूरबली पिछाण ॥३॥

प्रेम ३५

प्यारी मैं ऐसे देखे श्याम, बाँसुरी बजावत गावत कल्यान ॥०॥
कबकी मैं ठाड़ी भैयाँ सुध बुध भूल गैयाँ,
छोने जैसे जादू डारा, भूले मोसे काम ॥१॥
जब धुन कान पैया, देहकी न सुध रहिया,
तन मन हर लीनो, विरहोवाले कान ॥२॥
मीरांबाई प्रेम पाया गिरधरलाल आया,
देहसों विदेह भैया लागो पग ध्यान ॥३॥

विनय ३६

मन मोह्यो रे बंसी वाला ॥०॥
कांधे कमरिया हाथ लकुटिया, मारि गयो नैनां भाल ॥१॥
यक वन ढूँढि सकल वन ढूँढे, कहूँ नहीं पायो नँदलाल ॥२॥
मोर मुकुट पीतांबर राजै, कानन कुंडल छवी विसाल ॥३॥
मीराँ प्रभु गिरधरजू की प्यारी, आनि मिल्यो प्यारो गोपाल ॥४॥

ज्ञान ४१

सखी मन स्याम मूरत बसी ॥०॥
मुकट कुंडल करन बंसी मंद मुख पर हँसी ॥१॥
बावरी कोउ कहै मोकों कोई कहै कुल नसी ॥२॥
हस्ती की असवारी पाछै लाख कुतिया भुसी ॥३॥
तज्यो घूँघट लई गाती संत देख्यां खुशी ॥४॥
सील चोला पहर गल मैं भक्त मारग घुसी ॥५॥
ओस पानी नाहिं पीयो छाँह बादर किसी ॥६॥
दासि मीराँ लाल गिरधर प्रेम फंदे फसी ॥७॥

अनन्य-प्रेम ४२

अब नहिं जाने हूँ गिरधारी, (थारे म्हारे) प्रीत लगी अति भारी ॥०॥
बाँको मुकट काछनी सुन्दर, ऊपर जरद किनारी ।
गल मुतियन की माल बिराजे, कुण्डल की छवि न्यारी ॥१॥
बाँकी भौं कजरारे नैना, अलकैं छुट रही कारी ।
मंद मंद मुरली धुन बाजत, मोही ब्रज की नारी ॥२॥
क्षुद्र घंटिका कटि पर सोहै, भुज पर बाजू धारी ।
कड़ा मरहटी सुघर नेवरी, नूपुर की झुँणकारी ॥३॥
दुरजन लोग हँसो क्योंने मोसों, दे देकर करतारी ।
मीराँ प्रभु की भई दिवानी, प्रेम मगन मतवारी ॥४॥

भगवत्-स्मरण ४३

अरे मैं तो ठाडो जपूँरे राम माला रे ॥०॥
मैं जपती नांव मेरे सायब का, आंण मिलो नंदलालारे ।
हाथ सुमरणी कांख कूबडी, ओढ़ रही मृगछाला रे ॥१॥
मोर मुकट पीतांबर सोहै, ओढे साल दुसाला रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भगतन के प्रतिपाला रे ॥२

उमङ्ग ४८

हाथ की बीड्यां लैव मोरे वहालम, मोरे वहालम साजनवा ॥०॥
काथा चूना लोंग सोपारी, बीडी बनाऊँ गहिरी ।
केशर का तो रंग खुला है, मारा ऊपर पिचकारी ॥१॥
पके पान के बीडे बनाऊं, लेव मोरे वहालमजी,
हांस हांस कर वातां बोलो, पडदा खोलोजी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बोलत है प्यारी ।
अतर वहालम थारो दासी हैं तेरी ॥३॥

प्रेमलीला ४६

सांवरो सलोनो झरूखे झांखी दे गयो ॥०॥
नंद के सुवन को मुखारविंद चंद्रमा,
मेरे तो वदन की शोभा सारी लेगयो ॥१॥
नटवा को वेश कीयो, बंसी कु हाथ लीयो,
प्रेम की रसीली सारी बात मोसें केगयो ॥२॥
मीराँ कहे मोहनलाल, मैं तो भुली आळ जाल,
वाकुं देख करके मेरो वदन वे गयो ॥३॥

प्रेमालाप ५० (गुज०)

मारी द्रष्टी सामे रहेजो रे, वालमुकुंदा,
मारी नजरूं आगळ रहेजो रे, नागरनंदा ॥०॥
काम काज मने कांई न सुझे, भूली घरना धंधा रे ॥१॥
आडुं अवळुं जोयुं गमे ना, जोयां पूनम चंदा रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, मोही मोहनी फंदा रे ॥३॥

रूपासक्ति ५१ (गुज०)

करीआ कामण कंई कंई कंई, कानुडे अमने,
करीआ कामण कंई कंई कंई ॥०॥

आपरे कारण बाग लगाया । दाड़म दाखांई थांणे हो ॥२॥
आपरे कारण भोजन बणाया । लाडु जलेबी थांणे हो ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी हो ॥४॥

गुणगान ५५

सूरत पे तोरी नंदलाला ओ मैं वारी जाऊँ ॥
बिनरावन री कुंजगल्यों में रास रचावे घनश्याम ॥०॥
जमना री तट पे प्रभु धेनु चरावे, ग्वाल बाल और संग में रहेवे ।
मुरली पे तोरी नंदलाला मैं ॥१॥
डावां जो नख पें प्रभु गिरवर धारयो,
इन्द्र का मान घटाय ॥२॥
द्रौपदी सखी री प्रभु लज्जा जो राखी,
छ्न में यो चीर बढाय ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरख निरख गुण गाय ॥४॥

शृंगार ५६

हो राज, तारे ललवट टीलक बिराजे ।
हो काने कुंडल छाजे हो ॥०॥
ओ राज तारे मुख पर मोरली बिराजे,
मधुरे सुर बाजे हो ॥१॥
हो राज तारे पीला पीतांबर शोहिये,
तने हरखी नरखी मोदिये हो ॥२॥
हो राज तारे चरणे ते नेपुर वाजे हो,
तुं नटवर थईने नाचे हो ॥३॥
हो राज तारी शोभा ते कही नव जाय,
हूँ रूपज देखी लोभाणी हो ॥४॥

मारो वाहालोजी विहारीलां, जावा ने केम दीजे ।
हरिने अळगा नव मेलिए, अंतर गत लीजे ॥२॥
शिवरे विरंची महामुनि, तेने ध्याने न आवे ।
परम भाग्य व्रिजनारनुं, वाहालो लाड लडावे ॥३॥
धन्य धन्य रे जमुना त्रटे, धन्य व्रिजनो रहेवास ।
धन्य धन्य रे आ भूमि ने, वाहालो रमिया रास ॥४॥
अमरलोक अंतरीक्षथी, जोवाने रे आवे ।
पुष्प वृष्टि त्यां थती, मीराँ प्रेमे वधावे ॥५॥

सेवाभाव ५९

आज मारी मिजबानी छे राज । मारे घरे आवना, महाराज ॥०॥
ऊँचा सें बाजोठ ढळावुं, अपने हाथ से ग्रास भरावुं ।
ठंडा जळ जारी भरी लावुं, रचि रचि पावना महाराज ॥१॥
वहु मेवा पकवान मिठाई, शाक छत्रीशे जुगतें बनाई ।
उभी उभी चामर ढोळुं राज, सुहामणा महाराज ॥२॥
डोडा एलची लविंग सोपारी, काथा चुना पान विच डारी ।
अपने हाथ सें बीरी बनाऊँ, मुखसें चावना महाराज ॥३॥
मोर मुकुट पीतांवर सोहैं, सुरी नर मुनिजन के मन मोहे ।
मीराँ कहे गिरिधारीलाल, दिल विच भरनां महाराज ॥४॥

प्रेम ६० (गुज०)

मचकाळा, मंदिरिये आव, मचके मोही रही छुं ॥०॥
तारे मचके मोटा मुनिवर मोह्या रे ।
मोही छे व्रजडांनी नार, टगमग जोई रही छुं ॥१॥
शेरिये ने शेरिये हुं तो साद पडावुं रे ।
गिरधर गोवालिडाने काज, गावलडी हुं दोही रही छुं ॥२॥
हरतां ने फरतां हुंने हिरलो लाध्यो रे ।

कटि किंकिणी चरणाँ नूपुर सोहे, झाँझर को झनकारोजी ॥३॥
मीराँ तो प्रभु प्रेम प्यासी घर बैठयाँ गिरधर पाया जी ॥४॥

प्रेमालाप ६३

प्यारे म्हाने लागे श्री गोपाल रे, पीतांबर वालो प्यारो म्हाने लागे श्री गोपाल ॥०॥
मथुरा में मोहन बसे रे वृन्दावन घनश्याम ।
द्वारिकापुरी में जाय बिराज्या ज्याँरी मोटी धाम रे ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे कुंडल की छबि और रे ।
बाँय बाजुबंध सोहतां रे पौंची रतन जडाव ॥२॥
गल बैजयंती माला सोहे ज्याँरी चटकीली चाल रे ।
कटि कंदोरो अधक बिराजे चरणाँ में नूपुर सोहावता रे ॥३॥
मीराँ दासी श्याम की रे अंग में लीन्ही समाय रे ॥४॥

रूपासक्ति ६४

या मोहन के रूप लुभानी ॥०॥
हाट बाट मोहे रोकत टोकत, रसियाजी के रंग लपटानी ॥१॥
सुन्दर वदन कमलदल लोचन, देखत ही बिन मुले बिकानी ॥२॥
जमना के नीर तीर धेनु चरावत, बंसी बजावत सुनी मुसकानी॥३॥
तन मन धन गिरधर पर वारूं, सेवा चरण कमल की जानी ॥४॥

छवि-छटा ६५

गोपाल मेरे प्यारे धीमा चलो न गोपाल ॥०॥
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे । कुंडल झलकत कान ॥१॥
बाँहे बाजूबंद गले में बैजन्ती । मुरली लीनी हाथ ॥२॥
पाँये पैजनियाँ रुनझुन बाजे । चलत ठुमुक ही चाल ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । हृदय बसो यही ध्याना ॥४॥

लगाए। मेवले = मेवे से। खोळा = गोद। पूठ न मेले – पीछा नहीं छोड़ते। पासे थी .... खसता = पास से हटते भी नहीं।

२८—कनोरा = कन्दोरा, आभूषण विशेष। चरचु = लेपन करूँ। राई .... उतारू = दृष्टि उतारूँ। फीना = तारफेनी, मिठाई विशेष।

२५—छनगाळा = नखराले, नटखट। पोंछी = पहुँची। छाजे = सोहते हैं।

२६—वहुरि .... आय = फिर लौटकर नहीं आते। ललकि रहे = उलझ रहे।

२७—झालर = आरती के समय बजाने का काँसे का वाद्य विशेष। चापे = दवाती है। टीकम = प्रभु। सीरख = रजाई। मसोड़ = साथ में मिलाने की चादर। रमझोल = नूपुर।

२८-कुछ पाठान्तर को छोड़ शेष अधिक चरण पाये जाते हैं:—

मैया मोरे भाग जागे, श्याम आये पावना।
चुवा चंदन घीस लियो, आंग को लगावना।
मथुरा में कंस मारे, लंकापति रावणा।
राजा वलिके द्वारे ठहरे, रूप लिया ववना।
गोकुल में जाके ठहरो, द्वारका वसावणा।
मीरांवाई हरि की दासी, पद को लगावना॥

२६—उमरण = चिन्तन।

३१—गुमानी = अभिमानी। गहे = पकड़ कर। द्रुमडार = वृक्ष की शाखा। कट = कटि में। काछिनी = कच्छ। काछे = कसा हुआ।

३२—कीधी ..... थारी = सुन्दर थाल प्रस्तुत किया है। कंसार = मिष्टान्न विशेष। पीरस्यो छे = परोस्यो है। शरमाशो नहि वारू = संकोच मत करना, अच्छा। कंई .... खारू = खट्टा, खारा कैसा है कहना। कनकनी = स्वर्ण की। आचमन लेवरावु = अंचवाऊं। मुखवास = ताम्बुल। हेते .... पाश = प्रेम से मेरे पास रहो।

३३—नीको = अच्छा। टीको = तिलक। वीरो = भ्राता। विराणा = पराया। मही को = दही का।

५८—हैडामां=हृदय में। हतु=था। तेहवु=वैसा। ते······दीधु=प्रेम में पधारकर उन प्रभु ने आलिंगन दिया। अळगा=पृथक्। नव=नहीं। मेलिए=करें, रखें। अंतर···········लीजे=हृदय में समालें। विरंची=ब्रह्मा। अंतरीक्ष थी=सूक्ष्म सृष्टि के। जोवाने आवे=देखने को आते हैं। त्यां=वहाँ। थती=होती है।

५९—ऊँचा से········भरावु=ऊँचाई पर चौकी लगवाकर अपने हाथ से ग्रास जीमाऊँगी। डोडा एलची=इलायची।

६०—मचकाला=नखराले। मचके=नखरे से, हाव भाव से। टग मग=एक टक। शेरिये=गली में। साद पडावु=घोषणा कराऊँ। गावलडी=गाय। हरतां········लाधो=अनायास (प्रभु रूप) हीरा प्राप्त हुआ। प्रोई रही छु=पो रही हूँ। हेलो ना दीधो=पुकारा नहीं। भात रे भातना=भांति भाँति के। गांडी घेली=पगली। वहलेरो=शीघ्र।

६१—देह···········मटकी=देखिए पद-५३ के शब्दार्थ। वासु=उससे।

————

श्री ब्रज-महिमा

'एक रज रेणुका पै चिन्तामणि वारि डारौं,
वारि डारौं विश्व सेवा कुन्ज के विहारी पै।
ब्रज की लतान पै कोटि कल्प वारि डारौं,
रंभा को वारि डारौं गोपिन के द्वार पै॥
ब्रज की पनिहारिन पै रति सचि वारि डारौं,
वैकुन्ठ हू को वारि डारौं कालिन्दी की धार पै।
कहै राम राय एक राधा जू को जानत हौं,
देवन कूँ वारि डारौं नन्द के कुमार पै॥

= कदा वृन्दारण्ये विमल यमुना तीर पुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधर सुदामादि सहितम्।
अये कृष्णस्वामिनम् मधुर मुरली वादन विभो
प्रसीदेत्या क्रोशन् निमिपमिव नेष्यामि दिवसान्॥

श्री वृन्दावन धाम में, सुन्दर यमुना तट पर हलधर, सुदामा के साथ विहार करने वाले गोविंद को, हे कृष्ण! हे नाथ! हे वंशी के बजाने वाले प्रभो! तुम प्रसन्न होश्रो।' इस प्रकार पुकारता हुआ दिनों को कब पल के समान बिताऊँगा?

= गुणातीतं परंब्रह्म व्यापकं ब्रज उच्यते।
सदानन्दं परम ज्योति मुक्तानां पदम व्ययम्॥

यह ब्रज ही गुणातीत, परब्रह्म, व्यापक, सदानन्द, उत्तम ज्योति एवं मुक्त पुरुषों का अव्यय पद है।

=वृन्दावन वैकुण्ठ कूं तोल्यो तुलसीदास।
भारो हो सो यहँ रह्यो हलको गयो अकास॥

भगवान् उद्धव जी से कहते हैं—

=ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
........................॥

वस्तुतः व्रजरस के परम गौरव का प्रकाशक है तथा व्रज-भाव का रहस्य भी इसी में अन्तर्हित है।

व्रजरस के परम अनुभवी सन्त-महात्मा की घोषणा है कि पूर्व जन्म के पुण्य उदय होते हैं तभी जीव को व्रज या वृन्दावन वास प्राप्त होता है।

वृन्दावन में बास करि। सागपात नितखात।
तिनके भागन को निरखि, ब्रह्मादिक ललचात॥

ब्रह्माजी भी यही कामना करते हैं कि चाहे कीट-जन्तु का ही क्यों न हो पर वृन्दावन में मुझे अवश्य जन्म प्राप्त हो। वास्तव में 'राधा-कृष्ण' रटते हुए वृन्दावन वास करने वाला प्राणी ही वास्तव में महान् पुण्यशाली है और जीवन भी उसी का कृतार्थ है।

किसी प्रेमी-भक्त ने गाया है:—

जाहु व्रज भोरे, कोरे मन को रंगाई ले रे,
वृन्दावन रैन रची गौर श्याम रंग की।
जो सुख लेत सदा व्रजवासी सो सुख सपनेहूँ–
नहीं पावत जो जन हैं वैकुन्ठ निवासी॥

श्री व्रज रज के अनन्य निष्ठावान् भिन्न वैष्णव संप्रदाय के आचार्यों ने श्री व्रज-महिमा के प्रति अपने पद काव्यादि, अनुपम वाणी द्वारा मधुर भावाञ्जलियाँ अर्पित की हैं जिन में प्रमुख हैं श्री गीतगोविंदकार जयदेव, श्री हित हरिवंश, श्री भट्ट सूरदास, मीराँ. श्री हरिव्यासदेव, श्री हरिदासजी, नारायण स्वामी आदि आदि।

व्रज का माहात्म्य तो विलक्षण है, अपार है, जहाँ की पावन रज में निराकार–निर्गुण परमात्मा भगवान् ने साकार

अक्रूर जी को न्हाते समय यमुना में, श्री गिरिराज धारण करते समय, ग्वाल वालों से खेलते समय, तथा और भी समय-समय पर उसने कई विलक्षण चमत्कार बताये परन्तु किसी ने न इसको महत्त्व दिया, न कातर भाव से प्रमाण, प्रार्थना, पश्चाताप व शरणागत का भाव ही बताया। इसके विपरीत गोप ग्वाल वालादि द्वारा कनुआ कारे सारे, लाला आदि और गोपियों द्वारा कहे गये चोर, चंचल, धूर्त, नटखट ढीठ आदि वचन उसे मीठे लगते आये हैं तथा गारी सुनने में ही आनन्द आता रहा है।

श्याम सुन्दर को जो सुख–सुविधा ब्रज में है वह ब्रज के वाहर नहीं। बाहर तो आर्त्त व मुमुक्षु जनों की करुण पुकारों को सुनकर तथा धर्म 'संस्थापनार्थाय' की चिन्ता में व्यस्त रहना पड़ता है। लाड़ प्यार तो उसे ब्रज में ही मिलता है जिससे पाँव पसार कर आनन्द पूर्वक वह सुख की नींद सोता है।

सारी ब्रज भूमि श्री कृष्ण के चरणारविंद चिह्नों से अंकित है। गो चारण तथा वाल लीला के कारण ब्रज की रज-रज रमण रेती सी हो गई है क्योंकि वह पादत्राण धारण नहीं करता। ब्रज में अपने सखाओं से हारने में ही सुख मानता है। सबका मित्र कहलाने में ही श्याम अपना सौभाग्य समझता है, यथाः—

> अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्द गोप ब्रजौकसाम्
> यन्मित्रं परमानन्दम् पूर्णब्रह्म सनातनम्।

श्री कृष्ण अवतार रहस्य

अखिल विश्व में अब तक जो अनेकानेक विभूतियाँ, संत-महात्मा, धर्मात्मा–राजनीतिज्ञ, कलाकार–विविध गुण संपन्न,

आतंकित वातावरण को छिन्न-भिन्न करते हुए, दुष्टों का दमन कर भारत में फिर से धर्म, नीति, न्याय व प्रेम आदि दैवी सम्पदा युक्त सुराज्य-स्थापना की ओर भारत को अग्रसर करके धर्म की विजय पताका फहराई।

श्री कृष्ण ने विश्व-कल्याण के लिये गीता द्वारा दिव्य सन्देश दिया जिसका सार यही कि मानव-जीवन का लक्ष्य भोग न होकर प्रभु-प्राप्ति होगा तभी शांति, कल्याण एवं सुख की प्राप्ति होगी। ज्ञान, भक्ति व कर्म तीनों में से किसी भी मार्ग द्वारा साधन-मनन एवं ध्यानादि अभ्यास करके प्राणी प्रभु के निराकार या साकार दर्शनानुभव को प्राप्त कर सकता है। इसके लिये कर्म त्याग की आवश्यकता नहीं, फल का त्याग करना चाहिये यथा 'कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' संसार बन्धन का मूल कारण आसक्ति है। इसलिये अनासक्त होकर कर्म करना चाहिये। इस प्रकार अनन्य श्रद्धा पूर्वक सर्व भावेन प्रभु की शरण जाने से ही ध्येय-प्राप्ति होती है। यही कल्याण का प्रशस्त मार्ग है।

परमात्मा 'पत्रं पुष्पं' के अनुसार जो भी अनन्य भाव से समर्पण किया जाय उसे स्वीकार करता है। स्वयं श्रीमुख के वचन हैं—जो भी कर्म करो, दान करो, खाओ, पीओ, तपश्चर्या करो मुझको समर्पण करो जिससे तुम कर्म बंधन मुक्त होकर, शुभाशुभ से परे होकर प्रभु की भक्ति को प्राप्त करोगे। यही गीतोपदेश का सार है। और जन साधारण सुलभ इस सरल और स्पष्ट साधन का यह निदर्शन भी, भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार कार्य के अनेकानेक हेतुओं में से एक महान हेतु है।

देवताओं की पूजा न होने देकर भी श्री गिरिराज, गौएँ आदि की पूजा वह करवाता है, पर स्वयं नहीं पुजवाता।

वह मोर पंख, खडी, गेरू आदि से भाल तथा अङ्गों पर चित्रावली–पत्रावली की रचना करवा कर, कनेर, टेंटी, करौंदे इत्यादि फल पुष्पों के आभूषण धारण कर, जो उसके आनन्द-स्वरूप पर मुग्ध होकर विना मोल की दासी बन चुकी हैं उन व्रज–सुन्दरियों को रिझाता है। इन आत्मीयों के साथ वह राधा-वल्लभ, राधा-रमण व गोपी-जन-वल्लभ बन जाता है।

वह कला रहस्य का पूर्ण ज्ञाता था। मोर मुकुट, मकराकृति कुंडल, तुर्रा कलंगी, घुंघराले बाल, पीतांबर, दुपट्टा, वंशी बजाने की त्रिभंगी मरोड, मधुर मुसकान और कलेजे में चुभकर प्रेम-विह्वल करने वाली जादूभरी आँखें—ये सब उसकी कला रसिकता का परिचय देने वाले लक्षण हैं।

श्री कृष्ण की सर्वतोमुखी प्रतिभा थी। दिव्य जन्म कर्म वाले उन कृष्ण के लिये, निमित्त भले ही उज्जैन के आचार्य कुल में केवल चौंसठ दिन तक विद्या पढ़ने का हुआ, परन्तु उसके पहले से ही, गोप ग्वाल व गौओं का आकर्षण करनेवाली तथा व्रज बालाओं को प्रेम-विह्वल कर देने वाली संगीत व वंशी-वादन कला में वे प्रवीण थे। गोकुल वृन्दावन में कुत्सित उद्देश्य से आये हुए अनेकों असुरों तथा कुवलयापीड़ व कंस-चाणुरा-दिकों को पछाड़ देने वाली मल्ल विद्या प्राप्त थी।

जब त्रिभंगी रूप से खड़े होकर श्यामसुन्दर वंशी बजाते तब उसे सुनकर ग्वाल-बाल अपनी सब थकान भूल जाते, गौएँ दौड़ आतीं और अपने कानों को ऊँचा कर कन्हैया की ओर

महाभारत की विजय के पश्चात् यदि चाहते तो श्री कृष्ण समस्त भारत के सार्वभौम सम्राट् हो सकते परन्तु उन्होंने ऐसा न करके युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ द्वारा अखंड भारत का महाशासक बना दिया। हिमालय से समुद्र पर्यन्त समस्त प्रदेश को संगठित कर, एक छत्र महा साम्राज्य स्थापित कर अपूर्व राजनीतिज्ञता का परिचय दिया।

साम, दाम, दंड और भेद पूर्वक 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्' के अनुसार जैसे के साथ वैसा व्यवहार कर, दुष्टों को, छली-कपटियों को, कपट द्वारा ही दमन करने की उनकी नीति थी। न्याय के लिये क्षात्र धर्मोचित गीता उपदेश देकर स्वातंत्र्य-पूर्वक रहने की संसार को शिक्षा दी तथा गलित धैर्य व हताश हुए अर्जुन को अपने अधिकार के लिये, जन हित की दृष्टि से, रणक्षेत्र में जूझने का, प्रभु का स्मरण करते हुए कर्त्तव्य क्षेत्र में संघर्ष करते जाने का कर्म योग का महामंत्र सिखाया और कहीं मोह-मद वा आसक्ति का संस्कार घर न दबावे इसके लिये योग व ज्ञान का उपदेश दिया।

श्री कृष्ण भगवान् ने, उपनिषद् शास्त्रों एवं ज्ञान, भक्ति, वेदांत व कर्म के तत्वों के सार रूप श्रीमद्भगवद्गीता रूप अमूल्य व अमर रत्न जीवों के कल्याण के लिये संसार को प्रदान किया। यह उनकी विश्व को आध्यात्मिक, अलौकिक एवं अद्वितीय देन है।

अमोघ शक्ति, अपूर्व योगबल, विलक्षण संकल्प सिद्धि आदि अनन्त गुणैश्वर्य होने पर भी सदा सर्वदा श्री कृष्ण एक ग्रामीण के समान सरल व निरभिमानी बने रहे। गौ चराना

था तब सामर्थ्यवान् श्री कृष्ण ने उन सबको स्वीकार कर एक बड़ी भारी सामाजिक समस्या को सुलझाया एवं आठ पटरानियों से अपने बाहुबल से विवाह किया।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण की प्रत्येक क्रिया व लीला के मूल में सर्वदा लोक-हित की भावना काम करती थी।

श्री राधा-महिमा

वंदे श्री राधिकां देवीं व्रजारण्य विहारिणीम्।
यस्याः कृपा विना कोऽपि न कृष्णं ज्ञातु मर्हति ॥

व्रज निकुंज विहारिणी श्री राधिका देवी को प्रणाम हो जिनकी कृपा के बिना कृष्ण को कोई नहीं जान पाता।

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गायन वेदरिचा पढ़ी चौगुनी चायन।
देख्यो सुन्यो न कहूँ कबहूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥
ढूँढ़त ढूँढ़त ढूँढ़ि फिर्‌यो 'रसखान' बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुरयो वह कुंज कुटीन में बैठ्यो पलोटत राधिका पायन ॥

उपर्युक्त सवैये में प्रेमी भक्त कवि रसखान ने कितने सुन्दर, यथार्थ व अपूर्व राधा-कृष्ण के भाव की झाँकी कराई है।

रूठी नायिका को मनाने के समान यह कोई श्रीकृष्ण का केवल कौतुक वा रसिक-शिरोमणित्व ही नहीं है। वास्तव में श्रीराधा-तत्व ही ऐसा अलौकिक व अनंत रहस्य मय है कि जिसका शास्त्रों के आधार पर अनुसंधान नहीं किया जा सकता न योग अथवा ज्ञान के अवलंब से ही बुद्धि गम्य हो सकता है। सर्वोतम समर्पण पूर्वक प्रेम की पराकाष्ठा जिस हृदय में होगी उसी पर श्री युगल--सरकार की कृपा होगी और तभी कुछ अंश

श्रीकृष्ण-कर्णामृत इत्यादि के गोपी व राधा के स्वरूप से ये सर्वथा विलक्षण और न्यारी, युगल-प्रेम एवं लीला-रस-सुधा की अनंत निधि की स्वामिनी है।

—मुहुरव लोकन मण्डल लीला, मधुरिपु रह मिली भावन शीला

तथा

—स्मर गरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं
देहि मे पद पल्लवमुदारम्।

अर्थात् निरन्तर श्री कृष्ण को देख देख कर राधा स्वयं ही श्री कृष्ण हो जाती है तथा भगवान् के द्वारा श्री राधाजी के पद कमल की चाह जिसमें कराई गई है,' इत्यादि उस प्रेम-सुधा-निधि के एक-एक कण को पाकर अनेकानेक महानुभाव झूमते हुए मतवाले हो उठे। चण्डीदास—विद्यापति ने उस लीला-सुधा का मंथन कर स्वयं परम आनंद का अनुभव करते हुए उसे सर्व साधारण जनों के लिये बिखेर दिया। उसी दिव्य प्रेम की सुधाधारा ने गुजरात के परम वैष्णव भक्त श्री नरसिंह मेहता के हृदय-प्रदेश को ऐसा परिप्लावित कर दिया कि उन महाभाग के स्वानुभूत आनंद के उफान ने मर्यादा छोड़ दी और तब महारास के साक्षात् आनंदानुभव के अधिकारी व परम भगवत्कृपा के पात्र उन्होंने श्री राधा-कृष्ण के परम उज्ज्वल शृंगार—दिव्य रति आदि की अपूर्व भाव भरी अनेक रचनाएँ रच डालीं। मीराँ भी उस प्रेमासव को पीकर पगली हो उठी क्योंकि उसके बहुत वर्ष पहले से गीत गोविंद पर महाविद्वान, वीरवर व रसिक भक्त भूतपूर्व महाराणा कुंभाजी रचित टीका 'रसिक-प्रिय' द्वारा, मेवाड़ छोड़ने के पहले ही, उसे यह सहज-प्राप्य हुआ था।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मां
मे दर्शनान्मर्म्म हतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राण नाथस्तु स एव नापरः ॥

उनके चरणों में अनुरक्त मुझ दासी को, चाहे वह आलिंगन करे, चाहे पीस डाले चाहे मुझे देखते ही मर्माहत करे। उस लम्पट की जैसी इच्छा हो वह वैसा ही करे, किन्तु मेरा प्राणनाथ तो वही है और कोई नहीं।

यही गोपियों की अनन्य निष्ठा युक्त भाव साधना है।

भगवान् ने स्वयं अपने श्री मुख से गोपियों की बड़ाई करते हुए कहा है:—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ़ प्रेम भाजनम्॥
सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः
सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न॥
मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

हे अर्जुन! गोपियाँ अपने अंगों की सम्हाल इसलिये करती हैं कि उनसे मेरी सेवा होती है। गोपियों को छोड़कर मेरा निगूढ़ प्रेम पात्र और कोई नहीं है। वे मेरी सहायिका हैं, गुरू हैं, शिष्या हैं, दासी हैं, बन्धु हैं, प्रेयसी हैं, कुछ भी कहो सभी हैं। मैं सत्य कहता हूँ कि गोपियाँ मेरी क्या नहीं हैं। हे पार्थ! मेरा माहात्म्य, मेरी पूजा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनोरथ को तत्व से केवल गोपियाँ ही जानती हैं और कोई नहीं जानता।

एक दिन श्री कृष्ण भगवान् ने एकान्त में अपने प्रिय सखा उद्धव जी से कहा:—

श्री कृष्ण में चित्त निर्वेशित करने वाली गोप रमणियों को धन्य है।

यहीं नहीं, भगवान् श्रीमुख से गोपियों से कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां
स्वसाधु कृत्यं विबुधा युपापि वः
या माऽभजन् दुर्जर गेह श्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुनां ॥
॥ श्री मद्भा० १०।३२।२२॥

हे प्रियाओ ! तुमने घर की बड़ी कठिन बेड़ियों को तोड़ कर मेरी सेवा की है। तुम्हारे इस साधु कार्य का मैं देवताओं के समान आयु में भी बदला नहीं चुका सकता। तुम ही अपनी उदारता से मुझे उऋण करना।

गोपियों जैसे अनन्य प्रेमी भक्तों के लिये भगवान् ने यहाँ तक कह दिया है कि:—

'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूये ये त्यङ्घ्रि रेणुभिः।
॥ श्री मद्भा० ११। १४। १६॥

उनकी चरण रज से अपने को पवित्र करने के लिये मैं सदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ। अस्तु।

श्री कृष्ण की प्यारी व अनन्य प्रेमिकाएँ वे गोपियाँ चतुर व रसिक भी थीं। उनके व्यङ्ग और रसिकता का परिचय प्रेमी-भक्त को वाणी द्वारा सुनिये—मार्ग में श्याम सुन्दर द्वारा रोकने पर कोई रस-रहस्य-चतुरा गोपी कृष्ण से क्या ही मार्मिक-रस भरा उत्तर देती है कि तुम चाहते क्या हो ?

छीर जो चाहत चीर गहे अजूँ लेहुन केतक छीर अँचै हौं,
चाखन के हित माखन माँगत खाहुन माखन केतिक खैहौं।

श्री कृष्ण की रासलीला

भगवान् की लीला में ऐश्वर्य और माधुर्य दो प्रधान गुण हैं। अजन्मा रहकर अपने अचिन्त्य ऐश्वर्य के प्रभाव द्वारा भक्त-मनोरथ पूर्ण करने के लिये ही उनका प्राकट्य होता है। यह उनकी ऐश्वर्य मयी लीला है, यथा-मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह आदि की अवतार लीला। जिसमें माता-पिता एवं पार्श्वदों को स्वीकार करते हुए अवतार धारण कर भक्त भावना के अनुसार लीला करते हैं। यह उनकी माधुर्यमयी लीला है, यथा श्री राम व श्री कृष्ण आदि की अवतार लीला।

भगवान् श्री कृष्ण-लीला-रहस्य को समझने के लिए श्रीमद्-भागवत पुराण ही मुख्य रूप से आधार ग्रन्थ है। 'भक्त्या भागवतं शास्त्रं' अर्थात् भक्त में जैसे-जैसे प्रेम व भक्ति की पराकाष्ठा की ओर उत्तरोत्तर प्रगति होती जायगी, श्रीमद्-भागवत की समाधि भाषा का त्यों-त्यों स्पष्ट अनुभव अनायास होता जायगा। यह भी प्रभु-कृपा रूप पूर्ण शक्ति के प्राप्त होने पर ही।

श्री रासलीला रहस्यः—

साधारण बुद्धि से तो रासलीला के रहस्य को जानना असम्भव है। देवता लोगों के लिये भी अत्यन्त दुर्बोध्य है। गोपीश्वरी का स्वांग लेकर रासलीला सागर की गहराई में गोते लगाने वाले शिवजी को भी रत्न हाथ नहीं आया और गोपीश्वर महादेव तब वृन्दावन में यह उनका रूप प्रकट हुआ। श्रीमहादेव जी ने काम-पीड़ा से संतप्त होकर आवेश में मन्मथ को भस्म कर दिया था परन्तु कोटि-कोटि व्रज सुन्दरियों के बीच में, विजयध्वज की सम्पूर्ण शक्तिमती त्रिलोक मोहिनी सेना के बीच में श्री कृष्णचंद्र अपराजित रहे। स्वयं कामदेव ही श्री कृष्ण के

दो-द गोपियों के मध्य में एक-एक श्रीकृष्ण को वे अपने समीप में स्थित जानती थीं। उस समय सबने मण्डलाकार होकर नृत्य किया।

मूलशब्द 'रासलीला' है, 'रसलीला' नहीं। 'रसानां समूहः रासम्' अर्थात् एक रस नहीं अनेकानेक रस समूह का वर्णन है। इसलिये रासलीला में करुणा, शृङ्गार, वीर, आदि नवरस हैं। परन्तुः—

'व्रजे मुख्या स्त्रयो रसाः सख्य वात्सल्य शृङ्गाराः।'

सख्य वात्सल्य और शृङ्गार इन रसों में भी 'उज्ज्वल रस' शृङ्गार यही व्रज का सार रस है।

घटना विशेष के अनुभव से मन पर दबाव पड़ने से मानव चित्तवृत्ति में ये रस प्रकट होते हैं। इस प्रकार भिन्न प्रसंग वश मानव-मानस में भिन्न रस-उर्मियाँ उत्पन्न होना स्वाभाविक है। 'रसं हि ज्ञात्वा आनंदी भवति' रस के अनुभव से आनन्द की प्राप्ति होती है और श्रुति वचन है कि 'रसो वैसः।' सारांश कि श्री कृष्ण के आनन्दमय स्वरूप रहस्य का अनुभव होना अर्थात् 'अखंड आनन्दमयी लीला' यही रासलीला से तात्पर्य है।

भगवान् श्री कृष्णचंद्र ही रासलीला में प्रधान नायक, श्रीराधिका प्रधान नायिका तथा अन्य व्रज गोपियाँ प्रकाश स्वरूपा थीं।

गोपियों के भिन्न-भिन्न स्वरूप थे। कोई पूर्व वरदान प्राप्त थीं तो कोई देवांगना रूपा। कोई श्रुति रूपा तो कोई ऋषि रूपा। कोई विवाहिता तो कोई कुँवारी थीं। उनके भिन्न-भिन्न यूथ थे जिनकी प्रत्येक की एक नायिका होती थी। इन सब की यूथेश्वरी

सप्ताह की सार्थकता नहीं हो पाती। इसी विचार से ही उन्होंने सारी रास-पञ्चाध्यायी में कहीं 'राधा' नाम का उच्चारण नहीं किया।

इसी के प्रमाण स्वरूप यह श्लोक प्रसिद्ध है कि,—

श्री राधा नाम मात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।
नोच्चारित मतः स्पष्टं परीक्षितद्धित कृन्मुनिः॥

इसी प्रकार भगवती श्री राधा का नामोच्चारण श्री शुकदेव मुनि ने क्यों नहीं किया इसके सम्बन्ध में श्री ब्रजधाम के परम निष्ठावान् एवं परम रसिक महात्मा श्री व्यासजी का एक पद है:-

परम धन राधा नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत सुमिरत बारम्बार॥
जंत्र तंत्र औ वेद मंत्र में सबै तार को तार।
श्री शुकदेव प्रकट नहिं भाख्यो जानि सार को सार।
कोटिक रूप धरे नँद नंदन तऊ न पायो पार।
'व्यासदास' अब प्रकट बखानत डारि भार में भार॥

सार्वभौम सम्राट स्वेच्छा से विनोद, कौतुक वा भक्तों की कामना पूर्ण करने के लिये अथवा किसी लीला विशेष के उद्देश्य से यदि सेनाध्यक्ष, मंत्री, सैनिक, मित्र व प्रेमी आदि का स्वांग रचकर अभिनय करता है तो यह उसकी लहर है। उसे भला कौन रोकेगा? श्री कृष्णचंद्र की ब्रजलीला का यही रहस्य है।

मीरांबाई का सारा जीवन ही ब्रजभाव की साधना का रहा, यही नहीं वह तो अपने आपको पूर्व जन्म की गोपी मानती है और स्वयं अपने को कृष्ण प्रेयसी राधा मानकर उस भाव में भी उसने पद बनाये हैं। वह अपने को जन्म जन्म की श्याम सुंदर की दासी भी मानती है और अनन्य प्रेम के मूल्य से उसने

(८) पूर्व जन्म की तेरी मैं गोपिका।
बिचमांहि पडगई झोल ॥

(३३) रास रच्यो वंशीवट जमुना।
ता दिन कीनो कोल ॥.

इसके अतिरिक्त—७० से अधिक संख्या में 'राधा, शब्द, ९२ के लगभग 'वृन्दावन' और ६ स्थान पर 'वरसाना' शब्द आये हैं।

क्योंकि मीरांबाई की उपासना ही ब्रजभावमय है इसलिये और पद विभागों में भी उपर्युक्त तथा अन्य नामों का भी उल्लेख मिलता है यथा--

१-विरह में—राधा, ब्रज, वृन्दावन।
२-स्वजीवन में—वृन्दावन।
३-प्रार्थना-विनय में—राधा, कृष्ण, वृन्दावन।
४-निश्चय में—वृषभानु नंदिनी, ब्रज, वृन्दावन।
५-वर्षा में--राधा, जसोदा, वृन्दावन।
६-प्रेमालाप में—राधा, वृन्दावन, वरसाना।
७-दर्शनानन्द में—राधा, वृन्दावन।
९-सत्संग-उपदेश में—राधा, ब्रज, गोवर्धन।
१०-अभिलाषा में—वृन्दावन।
१२-नाम-माहात्म्य में—राधा, कृष्ण।
१३-होरी में—राधा, श्यामा, वृन्दावन, वरसाना आदि।
१४-जोगी में—रास, वंशीवट आदि।
१५-मुरली में—राधा, रास, वृन्दावन आदि।
१६-प्रकीर्ण में—राधा।

(७६) मेरे गोपालजी को बीहा कराउंगी, अखुभान की बेटी ॥

माखन चोर नटखट चंचल कन्हैया के लिये जब उलाहना लेकर गोपियाँ माता यशोदा के पास आती हैं तब वह समझौते के भाव से सब को सुनाती है,—

(१२८) गारी मत दीजो ओ तो गरीबनी को जायो । दधि की मथनियाँ आंगणिया में धरी है, जे ज्याँ को जे तो खायो न्हे जो लीज्यो राज ॥

अपने छोटे से लाडले लाल के पराक्रमों को बेचारी माँ कैसे जाने ! कालीय दमन के प्रसंग पर वह सुकुमार कन्हैया को सुनाती है,—

(१६३) कमल दल लोचना, तैंने कैसे नाथ्यो भुजंग ॥

किसी भी प्रकार प्यारे श्याम सुन्दर के सान्निध्य प्राप्ति की अभिलाषा में मिलनोत्कण्ठा के भाव गोपियाँ व्यक्त करती हैं,—

(३६) का'नी (किस बहाने) मखे देखन जाउं, श्यामळो बेरागी भयो रे । गोरे-गोरे अंग पर विभूत लगावुं, जोगण होकर जाउंरे ॥

(४४) जो मैं होती बाँस की बंसरिया । करती मुख पर बास अधर रस पीती है माधो ॥

(६०) भइ क्यों न व्रज की मोर सजनी । अपनी पंखा को मुकुट बनाती, धरते नंद किशोर ॥

गोपियों का जीवन ही श्याम सुन्दर के लिये है । उनकी प्रत्येक क्रिया से उन्हें आनंद प्राप्ति होती है । नटखट श्यामसुन्दर उनसे छेड़खानी करता है जिससे किसी भी निमित्त से प्रियतम

तो निर्लज्ज होगया पर वह कैसे हो सकती है ! इस पर चौथी गोपी अपनी ही गली की बात करती है—

(१६२) आवत मोरी गलियन में गिरधारी, मैं तो छुप गई लाज की मारी ॥

अंत में सब मिलकर इस निष्कर्ष पर आई कि—

(११६) कारे कारे सब से बुरे ॥

श्यामसुन्दर की ढीठता पर गोपियाँ परस्पर में ही केवल कह सुन कर संतोष नहीं धारण कर लेती, पर अब वे उन्हें, चाहे घर पर या वन में, मार्ग में या एकान्त में, दिन में अथवा रात्रि में जब जहाँ भी अवसर मिले आमने सामने ही प्रेम अथवा उलाहना भरा उत्तर उसी समय सुना देती हैं—

(१३२) फूटे गागरडी ऐसी कांकरडी मत बावो सांवरा । तुमतो थाँके घर ठाकुर वाजो, (कहलाते हो) में पण ठाकुरड़ी ॥

(१०३) बहियां मोरी छोडोजी रङ्गीले घनश्याम । अँगुली पकड मेरा पहुँचा पकडया, या कांई बाण कुबाण ॥

(२१) बहियां जो गहीरे, मेरी सुद्ध न रही रे । तेरे नगरी में मेरे वसबो नहिं रे ॥

(८८) छाँडो लँगर मोरी बहियाँ गहोना । मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहोना, रीत छोड अनरीत करोना ॥

एक गोपी को तो श्याम ने यह कह कर कि,—

(२५८) 'तैं मेरी गेंद चुराई, गुवालन, अब ही आन परी तेरे अंगना, अंगियाँ बीच छुपाई ॥...

कुब्जा प्रसंग को लेकर सौतिया डाह आदि नारी सुलभ भाव भी हृदय में उमड़ना स्वाभाविक है। इन्ही भावों में बहते हुए गोपियाँ परस्पर में चर्चा कर रही हैं,——

(१०५) तोडी टूटे नाय सखी साँवरा की प्रीतलडी। दासी करी पटरानी साँवरो, आडी भीतलडी, आवे रीस लडी॥

(१४५) भरमायो म्हारो मारूडो (प्रियतम) भरम रयो। चतुर नारके नैन भाल से, बाँध्यो छै जी राज रो हियो॥

(४६) कुबजा ने प्यारी कीधी, राधिका बिसारी है॥

(१४३) कुब्जा ने जादू डारा। जिन मोहे श्याम हमारा। निर्मल जल जमुना को छोडयो। जाय पिया जल खारा॥

(६१) सखी दोष नहीं कुब्जा को, अपनो श्याम है खोटो। जांत पांत को भेद न जाण्यो, सेजां रो रङ्ग मोटो। चेरी वडी हरि छोटो॥

(३१३) प्यारी लगत श्याम तुमें, कुबजा की खाटडली॥

(२३८) हमको लिख लिख जोग पठावै,
आप दुल्हे कुबजा लाडी॥

(१६१) एरी मा खड़ी निहारूँ बाट। मथुरा में कुबजा कर राखी, महाजन जैसी हाट, करियो आनँद ठाट॥

(२३२) झूंठी थालीं को पाँणी पीयो, राँणी करी कुबज्यासी। सुँण सुँण आवे हाँसी॥

(२११) दिन दस दियो है उधारो। कुबजा आखिर श्याम हमारो॥

एक सखी—

(१४४) राधा तेरी मेंहदी रोमाणक रंग ॥

कह कर राधा के कृष्ण प्रेमानुराग रूपरंग की ओर संकेत करती है तब दूसरी—

(८६) राधा तेरी बोली माँही मुडक घणी ॥—

कह कर राधा को, कृष्ण से मान व प्रणय कोप की अवस्था में उसके व्यङ्ग बाण की ओर लक्ष्य करती है। कोई गोपी, राधा में ऐसा तो क्या जादू है जिससे श्यामसुन्दर उसके वश में रहते हैं इस भाव से सुनाती है—

(३७८) राधेजी थांरे पाछे कई जादु छै। थारे बस गयो प्रभु जी। थांरे पुठल पुठल फिरतो ॥

व्रज-सुन्दरियों की चित्तवृत्ति सदा सर्वदा मन मोहन श्याम सुन्दर में लगी रहती थी। यहाँ तक तन्मय हो गई थीं कि—

(१६७) कोइ स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटकिया डोलै। दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो', हरिल्यो बोले ॥

जब गोपियों की यह स्थिति थी तो श्री राधा के भाव का तो कहना ही क्या! उसकी कृष्ण-प्रेमासव से छकी हुई आँखें देख कर गोपियाँ कहती हैं—

(५०) अँखियाँ में लाली छाई, कदम तल भांग पिलाई ॥

श्री राधा की अंतरंग सखियाँ जो राधा-कृष्ण के प्रेम और

अपने श्याम सुन्दर के प्रेम-सम्बन्ध को रूपक से कहती हैं-

(१३८) थें तो साँवरीया म्हारे सिर का जो सेवरा, में थाँरे हाथ की अंगुठी हो म्हारा साँवरीया ॥

उन्हें निर्मोही कृष्ण को प्रेम के मधुर भाव-रंग से रंग देने का भी सामर्थ्य है—

(१८२) थांरा सरीखा थे ही राज जाण्यां निरमोही । घणा गाढ़ा रंग देऊँ तोई ॥

सुन्दर श्याम मनोहर मूरत, शोभा अधिक अपार ।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल, गल पुष्पन को हार ॥२॥
शिव सनकादिक ध्यान लगावे, कर रहे वेद पुकार ।
शेष सहस्र मुख रटत रात दिन, कोइयन पावे पार ॥३॥
नाम अनन्त अन्त नहीं आवे, हो सबके करतार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुमरे ही आधार ॥४॥

प्रेमालाप ४

मन अटकी मेरे दिल अटकी
हो मुकुट की लटक मेरे दिल अटकी ॥०॥
माथे मुकुट खौर चन्दन की, शोभा है पीरे पट की ॥१॥
शंख चक्र गदा पद्म विराजे, गुंजमाल मेरे हिये अटकी ॥२॥
अंतर धान भये गोपिन सें, रूदन करत यमुना तट की ॥३॥
पात पात वृन्दावन ढूँढ्यो, कुञ्ज कुञ्ज राधे भटकी ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, जानत हो सबके घट की ॥५॥

विरह ५

हरि तुम काहे को प्रीत लगाई ॥०॥
प्रीत लगाय परम दुख दीनो । कैसी लाज न आई ॥१॥
गोकुल छोड़ के मथुरा पधारे । यामें कौन बड़ाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । तुमको नन्द दुहाई ॥३॥

बाल-लीला ६

कोई ना जाने साँवरिया तेरी गति कोई ना जाने साँवरिया ॥०॥
मिट्टी खात मुख देखा जसोदा, चौदह भुवन भरिया ॥१॥
पैंठि पाताल काली नाग नाथ्यो, सूर और शशी डरिया ॥२॥
डूबत वृज को राख लियो है, कर गोवर्द्धन धरिया ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, शरणे आया सो तरिया ॥४॥

वृन्दावन रास कीदो कृष्ण संग सखी ।
जो सुख को एल पल हिरदा में रखी ॥२॥
ऐसे ही मेरे लेख लिख्या विधाता रखी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर विरह में थकी ॥३॥

अक्रूर-लीला १०

सखी री लाज वैरण भई ।
श्रीलाल गोपाल के सँग, काहे नाहीं गई ॥०॥
कठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कहँ नई ।
रथ चढ़ाय गोपाल लैगो, हाथ मींजत रही ॥१॥
कठिन छाती श्याम बिछुरत, बिरह तें तन तई ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, बिखर क्यूं ना गई ॥२॥

विरहालाप ११

छिन-छिन में (पल-पल में) याद आवे रे मोहन की बातड़ली ॥०॥
एक दिन बैठी रंग भवन में संग में लीनी साथड़ली ।
हाथ जोड़ ने करूँ वीनती पड़ गई रातड़ली ॥१॥
एक दिन सोती रंग भवन में सपनो आयो रातड़ली ।
आण अचानक दरसण दीनो खुल गई आँखड़ली ॥२॥
जमुना किनारे धेनु चरावे हाथ में लीनी लाकड़ली ।
राधा गोपी को तज दीनी कुबजा साथड़ली ॥३॥
चीर चोर कर चढ़े कदम पर हाथ में लीनी गांठड़ली ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बज रही वाँसड़ली ॥४॥

राधा-विरह १२ (गुज०)

म्हारी सैंया रे मने दुःखड़ी राधाजी ने छोड़ी गयो ।
छोड़ी गयो रे कान्हों न्हासी गयो ॥०॥

साव सोनानी मारी जडित्र उढ़ाणी वा'ला,
सोनेरी तार मारो खरशे ॥१॥
कंसते रायनुं कूडुं छे राज वा'ला, कंस ने केहवुंज पडशे ॥२॥
जळरे जुमनानो वा'ला मोटो छे आरो रे,
नित्य उठी न्हावा जावुं पडशे ॥३॥
घाइ मीराँ के प्रभु गीरधर ना गुण वा'ला,
गोपी नो स्वामी मुजने मळशे ॥४॥

चीरहरण १५

झट द्यो मेरो चीर, मोरारी रे, झट द्यो मेरो चीर ॥०॥
ले मेरो चीर कदम चढ़ बेठो, में जल बीच उघाडी ।
उभी राधां अरज करत हे, हो चीर दीयो गिरधारी ॥
प्रभु तोरे पाय परूंगी ॥१॥
जो राधा तेरो चीर चहावत हो, जल से होजा न्यारी ।
जल से न्यारी का'ना कबुये ना होवुंगी, तुम हो पुरुष हम नारी॥
लाज मोकु आवत भारी ॥२॥
तुम तो कुंवर नंदलाल कहावो, में ब्रखुभान दुलारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, तुम जीते हम हारी ॥
चरन पर जाउं बलिहारी ॥३॥

चीरहरण १६ (गुज०)

चडी नें कदंब पर बेठो रे, वा'लो मारो चीर तो हरी ने ॥०॥
माता जसोदानो कुंवर कनैयो, नागर नंदाजी नो बेटो रे ॥१॥
मोर मुगट शीर छत्र बिराजे, पहेर्यो छे पीळो लपेटो रे ॥२॥
नहायां धोयां अमे केम करी आवीए, नाखोने नवरंग रेंटो रे ॥३॥
घाइ मीराँ के प्रभु गीरधर नागर, को उतारोने एने हेठो रे ॥४॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर वहाला, चरण कमळ चित ने
ओढुं ॥४॥

जलभरन २० (गुज०)

उढाणी मोरी आलो रे, गागरीयां वेढां ढरशे ॥०॥
जळ जमनाजळ भरवा गया तां, चीर खस्यो ने वेढुं पडशे ॥१॥
सासु हठीली मारी नणदी धुतारी, नानडो दीयरीओ मूजने वढशे॥२॥
मीराँ गावे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित हरशे ॥३॥

दधि वेचन २१ (गुज०)

वहीयां जो ग्रही रे, मेरी सुद्ध न रही रे,
काहना वहीयां जो ग्रही रे ॥०॥
झगमग ज्योत जडाव को ग्रेनो,
गज मोतियन की सेर लटकी रही रे ॥१॥
में दधी वेचन जाती गोकुल में रे,
पकडो री पालव मेरो जल को मही रे ॥२॥
जाइ पोकारूं कंस की आगे रे,
तेरी नगरी में मेरे वसवो नाहिं रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, झगडत सारी रेन वीत गइ रे ॥४॥

अभिलापा २२ (गुज०)

चाल सखी वृन्दावन जइये, जीवण जोवा ने,
महीनी मटुकीओ माथे लइ ॥०॥
श्याम सुन्दर ने भावे भेटजों, तेणे दुःखडा सहु शमावशे रे ॥१॥
मीराँ बाइ के प्रभु गिरधर नागर, मावजी मारग मां आवशे रे॥२॥

जलभरन २३ (गुज०)

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी ॥०॥

मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला,
अमो रह्यां छे आंसुडां भरी ने ॥३॥

उद्धवलीला (विरह) २७ (गुज०)

शामळे मेल्यां ते विसारी, ओधव ने वा'ले शामळे ते मेल्यां विसारी ॥०॥
प्रीत करीने पालव पकडो वा'ला, प्रेम नी कटारी मुने मारी ॥१॥
गोकुळ थी मथुरा मां गया छो वा'ला, कुब्जा सें लागी छे ताली ।२।
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, चरण कमळ वलिहारी।३।

उद्धवलीला (प्रेमालाप) २८ (गुज०)

कानुडे कामण कीधां, ओधवने वा'ले कानुडे कामण कीधां ॥०॥
वृंदावन मां धेन चरावे वा'लो, मोरलीए मनडां गोपी विंधां ॥१॥
जळ जमना भरवा ने गया' तां, तां पालव पकडी मन लीधां ॥२॥
* * * * राधा नो कंथ कामण कारो ॥३॥
मीरांबाइ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, भवसागर थी अमने तारो ॥४॥

उद्धवलीला (विरह) २६ (गुज०)

व्रजमाँ केम रे'वाशे, ओधव ना वा'ला व्रज मां केम रे' वाशे ।०।
जे रे दा'डाना जीवन गया छो वा'ला, दुःखडा ना कोने कहेवाशे॥१।
वळवंत थइ ने वाही शुं मूको वा'ला, वरद तमारूं जाशे ॥२॥
मीरांबाइ के प्रभु गीरधर ना गुण वा'ला, गोपी का अरज कहांशे ।३।

उद्धवलीला (विरह) ३० (गुज०)

आवजो म्हारे नेडे, ओधवना वा'ला, आवजो म्हारे नेडे ॥०॥
मारे आंगणीए आंबो मोर्यो वा'ला, कानुडो आवीने सार्यो वेडे।१॥
अमो जळ जमना भरवा गयां तां वा'ला, कानुडो पड्यो छे म्हारी केडे ॥२॥

मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण,
चरण कमळ में चित्त चोरी लीधां रे ।।४।।

विरह-उद्धव लीला ३४ (गुज०)

गोविंदा ने देश, ओधा मुने लेइ जाजो रे, गोविंदा ने देश ।।०।।
मने रे मोहनजीए मेली रे विसारी, करडुं मोरा करम की रेख ।१।
हार तजुंगी शणगार तजुंगी, तजुंगी, काजल की रेख ।।२।।
चीर ने फाडी वा'ली कफनी पेरूंगी, लेउंगी जोगन को वेश ।।३।।
गोकुळ तजुंगी मैं मथुरा तजुंगी, तजुंगी में व्रज केरो देश ।।४।।
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त संग रहेश ।५।

प्रेमालाप ३५ (गुज०)

मने मेली ना जाशो मावा रे, आ व्रज मां केम वसीए वा'ला रे,
मेली ना जाशो ।।०।।
जे जोइए ते तमने आणी आपुं वा'ला, मीठाइ मेवा खावा रे ।१।
आ बीजां वणां घणां तमने वानारे करती, नहि देउं तमने जावा रे ।२।
कबकी ठारी अरज करूं छुं, एटली अरज मोरी मानो व्रज वावारे ।३।
जळ जमना रे जळ भरवा गयां'तां वहाला, सुंदर गयां ता न्हावा रे।४।
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण वहाला, शामळीयो चित थे
मनावा रे ।।५।।

उत्कंठा ३६

का'नी मखे देखन जाउं, श्यामळो वेरागी भयो रे ।।०।।
कोरी मटुकी मां मही झमावुं, गुवालेन होकर जाउं रे ।।१।।
कोरी छाबडीयामां फुल भरावुं, मालण होकर जाउं रे ।।२।।
गोरे गोरे अंग पर विभूत लगावुं, जोगण होकर जाउं रे ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्याम सुंदर पार पावुं रे ।।४।।

गोपीभाव ४१ (गुज०)

आंखलडी वांकी, अलबेला तारी आंखलडी वांकी ॥०॥
नैन कमळ नो पलकारो रे भारे, तीर मार्यां ताकी ॥१॥
वृंदावन ने मारग जातां तन रे जोयां झांखी ॥२॥
चाळवणीयामां वा'ले चित्त हरी लीधां, मोहनलाले भूरकी नांखी।३।
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त राखी ॥४॥

गोपी-प्रार्थना ४२ (गुज०)

हां रे माया शोदने लगाडी, धूतारे वा'ले माया शीद लगाडी ॥०॥
माया लगाडी वा'ला मेली ना जाशो, एवा न थाओ नाथ अनाडी ।१।
वृंदा ते वन मां गौधन चारतां, हां रे मधुरसी मोरली वगाडी ।२।
वृंदावन ने मारग जातां वा'ला, फूल नी ते वाडीओ भेलाडी ॥३॥
हाथ मां दीवडो में वाळ कुंवारी वा'ला, हां रे देवळ पूजवा ने चाली ।४।
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ बलिहारी ॥५॥

उद्धव लीला ४३ (गुज०)

नारे आव्या व्रज मां फरीने ओधवजी वा'लो,
नारे आव्या व्रज मां फरीने ॥०॥
आठ दिवस नी अवध करी ने, नारे जोयुं व्रज मां फरी ने ॥१॥
ओधव साथे सन्देशो कहाव्यो, कागळ ना लख्यो रे फरीने ॥२॥
कुबजा रे साथे स्नेह करी ने, वा'लो रह्या त्यांरे ठरी ने ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चित्त मारां लीधां हरी ने ॥४॥

विरहालाप ४४

कुञ्जन बन छांडि गये माधो कौन गुना तक़सीर ॥०॥
जो मैं होती जल की मछलिया ।
तुम करते जब स्नान चरण छू लेती है माधो ॥१॥
जो मैं होती बन की कोयलिया ।
गैया चरावन आते बोलिया सुनती हैं माधो ॥२॥

पानां जैसी पीरी पीरी, पलंगा पे डारी है।
मीराँ ने तो दर्शन दीजो, दासी ये तुम्हारी है ॥३॥

राधा-भाव ४७

राधे थाँने डस गयो नागज कारो।
अब नहीं है वैद को सारो ॥०॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी। अध बिच जमुना किनारो।
जहाँ राधेजी को न्हावणो। नित आवे नखराळो ॥१॥
गढ़ मथुरा सूँ वैद बुलावो। बाबा नंदजी को प्यारो।
उण आया मेरी कुँवरी बचेगी। उनको मोहि पतियारो ॥२॥
गढ़ मथुरा सूँ वैद आयो। बाबा नंद को दुलारो।
आय साँवरे नाड़ी देखी। रोग बतायो न्यारो न्यारो ॥३॥
चार मास सियाळो निकळ्यो। चार मास उनाळो।
मीराँ ने श्री गिरधर मिलिया। लागो रितु बरसाळो ॥४॥

विरहभाव ४८

वैद को सारो नाहीं रे माई वैद को नाहीं सारो ॥०॥
कहत ललिता वैद बुलाउँ आवै नंद को प्यारो।
वो आयाँ दुख नाहि रहैगो मोहि पतियारो ॥१॥
वैद आय कर हाथ जो पकड़यो रोग है भारो।
परम पुरुष की लहर व्यापी डस गयो कारो ॥२॥
मोर चन्दो हाथ ले हरि, देत है डारो।
दासी मीराँ लाल गिरधर विष कियो न्यारो ॥३॥

गोपी-प्रेमालाप ४९

कनैया बल जाउं, अब नहिं बसुं रे गोकुल में,
कनैया बल जाउं रे ॥०॥
काळी होडे कामळी रे, काळा हे रे कहान।
वृन्दावन की कुंज गलन में, खेलत गोपी तज मान रे ॥१॥

जसोदा मैया जल जमुना में जाती ।
गगरिया मोरी फोर डारी ॥१॥
जसोदा मैया डाल कदम की छैयाँ ।
बहियाँ मरोड़ डारी ॥२॥
जसोदा मैया मारग रोक लियो है ।
रंग से भिजोय डारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
हरि चरणां बलिहारी ॥४॥

गोपी उत्कंठा ५२ (गुज०)

आतुर थइ छुं मुख जोवाने घेर आवो नंदलाला रे ॥०॥
गउतणां मिश करी गया छे गोकुळ आवो लाला रे ॥१॥
मासी ने मारी ने गुणका ने तारी-टेव तमारी छोगाळा रे ॥२॥
कंस मारी मा बाप उगारया-घणा कपटी नथी भोळा रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण-घणाज लागे प्यारा रे ॥४॥

विरह-भाव ५३ (गुज०)

कागळ कोय लेइ जाय रे मथुरा मां वसे रेवाशी ॥०॥
येरे कागळ मां भाझूँ शूं लखिये ।
थोडे थोडे हेत जणाय रे ॥१॥
मित्र तमारा मळवा इच्छे ।
जसोमति अन्न न खाय रे ॥२॥
सेजलडा तो मुने सूनी रे लागे ।
रडतां ते रजनी न जाय रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमळ तारूं त्यां जाय रे ॥४॥

हार चली चंद्रावली गुजरी, जीत्या जदुपत राई।
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर, मेवा सूँ गोद भराई॥
नंद घर बँटत बधाई॥४॥

दर्शनानंद ५६

हाँ रे सखी देख्यो री नंदकिशोर॥०॥
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल, पीतांबर झकझोर॥१॥
ग्वाल बाल सब संग जु लीने, गोवर्धन की ओर॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि भये माखन चोर॥३॥

उत्कंठा ५७

किस विध देखण जाउँ ए माय।
आज विरज में आयोरी साँवरियो॥०॥
कोरी कोरी मटकी में महीड़ो जमायो।
ग्वालण होय कर जाउँ ए माय॥१॥
चुन चुन कलियाँ सेवरो जमाउँ।
मालण होय कर जाउँ ए माय॥२॥
सार की सुई पाट का तागा।
दरजण होय कर जाउँ ए माय॥३॥
मीरांबाई के हरि गिरधर नागर।
निरख निरख गुण गाउँ ए माय॥४॥

प्रेमालाप ५८ (गुज०)

कानुडो शुं जाणे मारी प्रीत, बाइ अमे बाळ कुंवारा रे॥०॥
जळ जमुनानां अमे, भरवा ने गयां तां हां हां,
कानुडे उडाड्यां आछां नीर, उड्यां फरररररर रे॥१॥
वृंदा ते वन मां वहाले, रास रच्यो छे रे,
सोळसें गोपीनां खेंच्यां चीर, फाटयां चरररररर रे॥२॥

दर्शनानन्द ६१

साँवरा ने देख्याँ म्हारो घणो चित्त राजी छे जी ॥०॥
हीराँ मोती धन वारूँ और म्हारो प्राण वारूँ ।
लाखाँ की बधाई बाँटूँ आवे नँदलालजी ॥१॥
बृज में अचंबो देख्यो गोप्याँ सारी आई साँवरा ।
जसोदा को जायो कालो नाग नाथ लायो जी ॥२॥
हिंगळु को ढोल्यो ढाळूँ गेंदवा बिछाऊँ साँवरा ।
मशरू की सेजाँ नंदलाल ने पोढावूँ जी ॥३॥
उभी उभी मीरांबाई अरज करे छे जी ।
अणी कळजुग में प्रभु राखो लाज म्हारी जी ॥४॥

दधि-बेचन ६२ (गुज०)

हाँरे कोइ माधव ल्यो वेचंती बृजनारी रे ॥०॥
माधव ने मटुकीमां घाली गोपी लटके मटके चाली रे ॥१॥
हांरे गोपी बेलुं शुं बोलती जाय कान मटुकी मां नव
समाय रे ॥२॥
नव मानो तो जुवो उतारी मांही जुवे तो कुंजबिहारी रे ॥३॥
वृंदावन मां जातां धारीवालो गौ चरावे गीरधारी रे ॥४॥
गोपी आवी वृंदावन वाटे सउ ब्रजनी गोपीओ साथे रे ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर जेना कमळ चरण सुख
सागर रे ॥६॥

वियोग ६३ (गुज०)

कहां गयो पेलो मोरली वाळो अमने रास रमाडी रे ॥०॥
रास रमाडवाने वनमां तेड्यां मोहनी मंत्र सुणावी रे ॥१॥
माता जसोदा शाख पुरावे केशर छांट्यां घोळी रे ॥२॥

अपनी कहत ना सुनत कछु और की ।
बरजोरी श्याम मोरी बैंया झकझोर ॥२॥
ए हो बनवारी तोरी करत लाचारी घर ।
सास देगी गारी मैं तो करत निहोर ॥३॥
सुन हो कन्हाई अब छाँड़ दे ढिठाई ऐसे ।
बोली मीरांबाई कर जोड़ कर जोड़ ॥४॥

दर्शनानन्द ६७

तेरे साँवरे मुख पर वारी ।
वारी वारी बलिहारी ॥०॥
मोर मुकुट पीताम्बर शोभे ।
कुण्डल की छबि न्यारी न्यारी ॥१॥
बिन्द्रावन में धेनु चरावे ।
मुरली बजावत प्यारी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल बलिहारी ॥३॥

नटखटपन ६८

बैंयाँ क्यों मरोड़ी साँवरा मेरी बैंयाँ क्यों मरोड़ी ॥०॥
गोरी गोरी बैंयाँ हरी हरी चुड़लियाँ ।
अचानक बैंयाँ क्यों मरोड़ी ॥१॥
गोरा गोरा मुख पर अलक बिराजे ।
मोतियन माँग क्यों मरोड़ी ॥२॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर ।
अविचल रीजो या जोड़ी ॥३॥

दर्शनानन्द ६९

कुँजबन मों गोपाल राधे कुँजबन मों गोपाल ॥०॥

मोहनजी तो हवे मोटो थयो छे
गोपी ने नथी दमतो जी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर
रणछोड कुबजा ने वरतोजी ॥३॥

गोपी-व्यङ्ग ७३ (गुज०)

कठण थयारे माधव मथुरां जइ
कागळ न लख्यो कटको रे ॥०॥
अहियां थकी हरि हवडां पधार्या
ओधव साथे अटक्यो जी ॥१॥
अंगे सोवरणिया वाघा पेर्या
शीर पीतांबर पटको जी ॥२॥
गोकुळ मां एक रास रच्यो छे
कहान कुबजा संग अटक्यो जी ॥३॥
काळीशी कुबजा ने अंगे छे कुबडी
ए शुं करी जाणे लटको जी ॥४॥
ए छे काळोने ते छे कुबडी
रंगे रंग वन्यो चटको जी ॥५॥
कोइ कहे मारी दतुसर आणी
शीर मेल्यो रंग चटको जी ॥६॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर
खोळामां छु घुंघट खटकोजी ॥७॥

शारदोत्सव ७४ (गुज०)

पुनम केरो पुर्ण चंद्र छे रास रमे नंदलालोजी ॥०॥
नटवर वेश धर्या नंदलाले सौ जोवा ने चालो जी ॥१॥

मथुरा में प्रभु जन्म लीयो हे सुनी के कंस डर्यो रे ।।५।।
मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण सुर को काज कर्यो रे ।।६।।

दर्शनानंद ७८

मथुरा के कान मोही मोही मोही ।।०।।
खाँदे कामरिया हाथ मों लकरिया ।
सिर पाग लाखा लोई लोई ।।१।।
पाँव पे पेंजण अणवट विछवे ।
चाल चलत ता ता थै थै थै ।।२।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
हृदय वसत तूही तूही तूही ।।३।।

प्रेमालाप ७९

मोरी लय लगी गोपाल में ।।०।।
मेरो काज तो कोन करेगा । मेरे चित्त नंदलाल छे ।।१।।
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में । जपती तुलसी माल छे ।।२।।
मोर मुकुट पीतांवर शोभे । गल मोतिन की माल छे ।।३।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । टूट गई जंजाल छे ।।४।।

प्रेमालाप ८०

कैसी जादू डारी अब तूने कैसी जादू डारी ।।०।।
मोर मुकुट पीतांवर शोभे । कुंडल की छवि न्यारी ।।१।।
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में । लूटी ग्वालन सारी ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी ।।३।।

विरह ८१

श्यामसुन्दर मुरलीवाला, कोई देख्यो रे भैय्या ।।०।।

नीर तो देखीने ना डर्यो ॥कनइयो०॥१॥
माता जसोदाजी रुदन करे छे । नयनु में नीर भर्यो ॥२॥
टचली आंगलीए वहाले गोर्धन तोल्यो । इन्द्र को मान हर्यो॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण । चरणु में चित्त धर्यो ॥४॥

उद्धवलीला ८४ (गुज०)

दव तो लाग्यो डुंगरीये कोने ओधवजी केम करीये,
केम तो करीये अमे केम करीये दव तो लागेलो ॥०॥
हालवा जाइए तो वहाला हाली न शकीये,
बेसी रहीए तो अमे वळी मरीये ॥१॥
आरे वरतीये रे नथी ठेकाणु वाहाला,
परवरती नी पांखे अमे फरीये ॥२॥
संसार सागर महाजळ भरीयो वहाला,
बांहेडी झालो नीकर बूडी मरीये ॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर,
गुरूजी तारे तो अमे तरीये ॥४॥

दानलीला ८५ (गुज०)

मेली देने कान, कान रे मारगडो हमारो मेली देने कान-
छोड ने पालवडो हमारो—मेली देने कान ॥०॥
घाटे ने घाटे शाने रोको छो ।
तमने कंसनी आण, आण रे—मारगडो हमारो ॥१॥
वारे वारे तमने नंदकुंवर ने ।
हजु न आवी शान, शान रे--मारगडो हमारो ॥२॥
उभा उभा तमे शान करो छो ।
मोहनां मारो छो वाण, वाण रे—मारगडो हमारो ॥३॥

नटखटपन ८८

छाँड़ो लँगर मोरी वहियाँ गहो ना ॥०॥
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो ना ॥१॥
जो तुम मेरी वहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरो ना ॥२॥
वृन्दावन की कुंजगली में, रीत छोड़ अनरीत करो ना ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टरो ना ॥४॥

राधा-भाव ८९

राधा तेरी बोली माँही मुड़क घणी ॥०॥
तीखा तीखा नैण भुँवारा बाँका । मानो कुबाण तणी ॥१॥
आप ही बाँकी बेन ही बाँकी । कोन चटसाल भणी ॥२॥
कोटी भाण प्रकाश भयों है । चिमकत सेल अणी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । निरखत श्याम धणी ॥४॥

अभिलाषा ९०

भइ क्यों न वृज की मोर सजनी ॥०॥
अपनी पंखा को मुकुट बनाती । धरते नन्दकिशोर ॥१॥
गिरवर चढ़ कर टेर सुनाती । सुनते नन्दकिशोर ॥२॥
मात यशोदा चुगो चुगाती । भर भर रतन कटोर ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चित हरियो चितचोर ॥४॥

गोपी-व्यंग ९१

सखी दोप नहीं कुबजा को ॥०॥
आप न आवे पतिया न भेजे । कागज रो कइं टोटो ॥१॥
कुबजा दासी कंस राय की—वो नंदजी रो टोटो ॥२॥
जांत पांत को भेद न जाण्यो—सेजां रो रङ्ग मोटो ॥३॥
आप हि जाय द्वारिका छाये—ले समदर को ओटो ॥४॥

नटखटपन ९६

झटक्यो मेरो चीर मुरारी ॥०॥
गागर रंग सिरते झटकी वेसर मुर गई सारी ॥१॥
छुटी अलक कुंडल ते उरझी झड़ गई कोर किनारी ॥२॥
मन मोहन रसिक नागर भए हो अनोखे खिलारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल सिरधारी ॥४॥

दधि-दान ९७

कहाँ कहाँ जाऊँ तेरे साथ कन्हैया ॥०॥
विन्द्रावन की कुंज गलिन में गहे लिनों मेरो हाथ ॥१॥
दध मेरो खायो मटकिया फोरी लीनो भुज भर साथ ॥२॥
लपट झपट मोरी गागर पटकी साँवरे सलोने लोने गात ॥३॥
कबहूँ न दान लियो मनमोहन सदा गोकुल आत जात ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर जनम जनम के नाथ ॥५॥

गोपी-उलाहना ९८

नीको रही यशोदा मैया तेरो लरको ॥०॥
बछन छोड़ाय, मेरी गउवाँ चुरवाय दीनी,
और तारो मेरो छीको ॥१॥
दूध दही की कमारी फोरी, मथनिया
माट फोरो गहे छीको ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि बिन सब जग फीको ॥३॥

उद्धव-लीला ९९

साधो ! मैं वैरागन हर की ॥०॥
भूषण वस्तर सबही हम त्यागे खान पान बिसरानो।

बाजूबंद हार काँकण गजरा ॥१॥
लहँगो लाल हरयो सिर आम्बर ।
भाल तिलक नैणां बिच कजरा ॥२॥
डाण दिया बिन जावो ना पावे ।
कोस लई मटकी लुटावे दधरा ॥३॥
मही को डांण कबहूँ नहीं सुणियो ।
हँस हँस नार करे झगरा ॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
देई जबाब चले मथुरा ॥५॥

नटखटपन १०३

बहियां मोरी छोड़ोजी रङ्गीले घनश्याम ॥०॥
अँगुली पकड़ मेरा पहुँचा पकड़्या । या काई बाण कुबाण ॥१॥
सास बुरी मोरी नणद हटीली । घर में बुरो है मेरो श्याम ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
प्रभु के चरण मेरो ध्यान ॥३॥

गोपी-भाव १०४

बाजुबन्द भूली हूँ जी माझल रात ॥०॥
भूल गई में सेज पिया की जी ।
याद आयो परभात ॥१॥
नणद जेठाणी मेरी कदकी बैरन ।
ताना मोसे सयो न जात ॥२॥
ब्रज नन्दन जी म्हारी सास लड़ेगी जी ।
देख अड़ोला म्हारा हाथ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर जी ।
बर पायो दीनानाथ ॥४॥

गोपी-भाव १०८

थारे कुब्जा ही मन भानो हमसे न बोलना हो राज ॥०॥
हमसो कहे सुहाग उतारो दृग अञ्जन सब ही धोय डारो,
माथे तिलक चढ़ाओ पहिरो चोलना हो राज ॥१॥
हमरी कही विषहिं सम लागे घर घर जाय भँवर रस जागै,
उनही के सङ्ग रहना सहना बोलना हो राज ॥२॥
वृन्दावन में धेनु चरावै वंसी में कछु अचरज गावै,
वांकी तान सुनावै बोलियां बोलना हो राज ॥३॥
हमरी प्रीत तुम्हीं संग लागी लोकलाज सब कुल की त्यागी,
मीराँ के गिरधारी वन वन डोलना हो राज ॥४॥

प्रेमालाप १०९

कहीं देखे री घनश्यामा ॥०॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलके काना ।
सांवरी सूरत पै तिलक विराजै, नाहिं लगे मोर प्राना ॥१॥
बरसाने से चली गुजरिया नन्द ग्राम को जाना ।
आगे केशव धेनु चरावें लगै प्रेम के बाना ॥२॥
सागर सूखो कमल मुरझाना हंसा किया पयाना ।
भौंरा रहि गये प्रीति के धोखे फेर मिलन मत आना ॥३॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में नूपुरू रूनझुन लाना ।
मीराँ को प्रभु दर्शन दीजै ब्रज तजि अन्त न जाना ॥४॥

राधा-भाव ११०

श्री राधे रानी दे डारो ना बाँसुरी मेरी ॥०॥
जा वंसी में मेरा प्राण वसत है सो वंसी गई चोरी ॥१॥
काहे से गाऊँ प्यारी काहे से बजाऊँ,
काहे से लाऊँ गैया घेरी ॥२॥

गोपी-भाव ११४

कान्हा काहे कूं मारो मोकूं कांकरी।
कांकरी कांकरी कांकरी रे ॥०॥
गायों भैंसों तेरी अबी हुई है।
आगे न रही घर बाकरी रे ॥१॥
पीत पीतांबर काना अब ही पेरत है।
आगे न रहे कारी धाबरी रे ॥२॥
मेड़ी महेलात तेरे अब होई है।
आगे न रहे घर छापरी रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण।
शरणे राखो तो करूं चाकरी रे ॥४॥

दधि-बेचन ११५

कान्हा बन्सरी बजाय गिरिधारी।
तोरी बन्सरी लागे मोको प्यारी ॥०॥
दहि दूध बेचने जाती जमुना। काना ने घाघर फोरी ॥१॥
सिर पर घट घट पर झारी। उसकूँ उतार मुरारी ॥२॥
सास बुरी रे ननंद हटीली। देवर देवें मोको गारी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। चरन कमल बलहारी ॥४॥

उद्धव-लीला ११६

कारे कारे सबसे बूरे ओधव प्यारे ॥०॥
कारे को विश्वास न कीजे। अति से भूल परे ॥१॥
काली जात कुजात कहीजे। ताके संग उजरे ॥२॥
शाम रूप कीये भ्रमरो। फूल की बास भरे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। कारे संग बगरे ॥४॥

जल-भरन १२०

जल कैसी भरूं जमुना में री ॥०॥
खड़ी भरूं तो कृष्ण दीखत है। बैठि भरूं तो भीजे चुनरी ॥१॥
मोर मुकुट पीतांवर शोभे। छुम छुम बाजत मुरली ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की मैं चेरी ॥३॥

जल-भरन १२१

जल भरन कैसी जाउँ रे—जसोदा ॥०॥
घाटे ने घाटे पानी मांगे। मारग में कैसी जाउँ ॥१॥
आली कोर गंगा पोली कोर जमुना।
बीच में सरस्वती में न्हावुँ ॥२॥
विंद्रावन में रास रचा है। नृत्य करत मन भावुँ ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। हेते हरि गुण गावुँ ॥४॥

नटखटपन १२२

दीजो हो चुनरिया हमारी। किसनजी मैं कन्या कुमारी ॥०॥
गौलन सब मिल पानिया भरन जाती।
म्हाँ को करत बल जोरी ॥१॥
पर नारी का बल्लव पकड़े।
क्या करे मनवा विचारी ॥२॥
वृन्दावन की कुंज गलिन मों। मारे रंग की पिचकारी ॥३॥
जाके कहियो जसोदा मैया। होगी फजीती तुम्हारी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। भक्तन के है लहरी ॥५॥

राधा-भाव १२३

नहीं तोरी बलजोरी राधे, नहीं तोरी बलजोरी ॥०॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावे। छीन लई बांसरी ॥१॥

माखन तो बलिभद्र कु खिलायो,
हमकुं पिलाई खाटी छास री ॥४॥
विन्द्रावन के मारग जातां,
पाउं में चुभत भीनो कांकरी ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमळ तोरी आँख री ॥६॥

विरहावस्था १२७

मधुवन बसे ए उजाड़ हमारे लेखे ॥०॥
कोइ क दिना रे हँसा मोतीड़ा चुगता,
चुगण चाल्या ए जी ए जुवार ॥१॥ हमारे० ॥
समुन्दर छाँड्यो हँसा सिंधु तट आयो,
फाँक ज रही अब भर गार ॥२॥
मीरां बाई के जी थाँने गिरधर नागर,
दरसण दीजो ए जी ए मुरार ॥३॥

जसोदा-भाव १२८

गारी मत दीजो ओ तो गरीबनी को जायो ॥०॥
कोई के तो पांच पुत्र, कोई के तो सात है ।
ध्याये ध्याये देवता ने, काना ने खिलायो ॥१॥
कोई के तो पांच धेनु, कोई के तो सात है ।
नव लख धेन बाबा नंद के दुहायो ॥२॥
दधि की मथनियाँ आँगणिया में धरी है ।
जे ज्याँको जेतो खायो व्हे जो लीज्यो राज ॥३॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर ।
निरख निरख गुण गायो ॥४॥

नटखटपन १३२

फूटे गागरड़ी ऐसी कांकरडी मत बावो साँवरा ॥०॥
तुम तो थाँके घर ठाकुर वाजो । में पण ठाकुरड़ी ॥१॥
जमना के धोरे धेनु चरावो । हाथां लाल छड़ी ॥२॥
मीराँ ने श्री ठाकुर मिलिया । दूध में साकरड़ी ॥३॥

प्रेमालाप १३३

ओल्युँ री आवे ज्याँकी ओल्युँ रे ॥
कोई तो मिलाजो श्याम ज्याँकी ओल्युँ री आवे राम ॥०॥
जातो जातो रीयो री सखी री अजहुँ न आयो श्याम ।
हाथ आवे तो हठ कर राखूँ तीन लोक को श्याम ॥१॥
वन हेर्यो वृंदावन हेर्यो बरसानो नंदगाम ।
कुंज कुंज मथुरा की हेरी तोये न पायो श्याम ॥२॥
लाल लपटे पीले फाँटे छोगा लाळो छेल ।
अलबेल्यो अणखीलो सखी री लागो मेरी गैल ॥३॥
प्रीत करो हरि मंदिर पधारो नित उठ नवला नेह ।
मीराँ ने श्री ठाकुर मिलिया दूधाँ वूठा मेह ॥४॥

प्रेमालाप १३४ (गुज०)

नंदलाल नहि रे आवुं मज घेर कास छे,
तुलसी नी माळा मां श्याम छे ॥०॥ वा'ला
वृंदा ते वन ने मारग जातां,
राधा गोरी ये कान श्याम छे ॥१॥ वा'ला
वृंदा ते वनमां रास रच्यो छे,
सहस्र गोपी ने एक कहान छे ॥२॥
वृंदा ते वन ने मारग जातां,
दाण आप्यानी घणी हाम छे ॥३॥

आणी तीरे गंगा ने पेली तीरे जमना,
वचमां गोकुळियु' गाम छे रे ॥१॥
सोनु' रूपु' मारे काम न आवे,
तुलसी तिलक पर ध्यान छे रे ॥२॥
आगली परसाळे मारो ससरोजी पोढे,
पाछली परसाळे सुन्दरश्याम छे रे ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर ना गुण,
चरण कमळ मां मारो विश्राम छे रे ॥४॥

प्रेमालाप १३८

थाँरी बोली लागे म्हाँने मीठी हो म्हारा साँवरिया ॥०॥
थें तो साँवरीया म्हारे सिर का जी सेवरा,
में थाँरे हाथ की अंगुठी हो म्हारा साँवरिया ॥१॥
कुंजगली मन मोहन मिलिया,
कैसे फिरूँगी म्हें तो पूठी हो म्हारा साँवरिया॥२॥
सास बुरी मेरी नणँद हठीली,
जल बल होय जाय अंगीठी हो म्हारा साँवरिया ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
भेजी मरम की चीठी हो म्हारा साँवरिया ॥४॥

विरह १३९

प्रीत निभाना रे काना प्रीत निभाना,
एजी म्हाँने बिसर नहि जाना ॥०॥
जबसे थारे म्हारे प्रीत लगी है नित बरसाने आना ।
दूर परे को पास जाण के अध बीच नहिं छिटकाना ॥१॥

जो थें म्हारो गाँव न जानो, म्हारो घर बरसाना ।
मीराँ की प्रभु लगन लगी है, लगे प्रेम के बाना ॥४॥

बाल-लीला १४२

कहन लगे मोहन मैया मैया ॥०॥
नंदराय से बाबा बाबा बलदाऊ से भैय्या ॥१॥
दूर खेलन मत जावो प्यारे ललना, मारेगी काहू की गैय्या ॥२॥
सिंहपोल चढ़ टेरत जसोदा, ले ले नाम कन्हैय्या ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जसोदाजी लेत बलैया ॥४॥

गोपी-भाव १४३

कुब्जा ने जादू डारा । जिन मोहे श्याम हमारा ॥०॥
झरमर झरमर मेवा बरसे, झुक आये बादल कारा ॥१॥
निर्मल जल जमुना को छोड्यो, जाय पिया जल खारा ॥२॥
शीतल छाया कदम की छोड़ी, धूप सहा अति भारा ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिना भाल सूर मारा ॥४॥

अनुराग १४४

राधा तेरी महँदी रो माणक रंग ॥०॥
कनक कटोरे महँदी घोली, तामें अद्भुत रंग ॥१॥
राधा प्यारी महँदी मांडी, सब सखियन के संग ॥२॥
मीराँ के प्रभु महँदी निरखे, श्री वृन्दावन चन्द ॥३॥

प्रेमालाप १४५

भरमायो म्हारो मारूडो भरम रयो ॥०॥
अरज करूं मथुरा मत जावो, मानोजी म्हारो कयो ।
हाव भाव से बस कर लीनो, बांध्यो छै जी नेहड़लो नयो ॥१॥

गोपी-भाव १४९

माई तेरो कान्हा कोन गुन कारो ।
जब ही देखूं तब ही द्वारिहि ठाढ़े ॥०॥
गोरो बाबा नंद गोरी जसु मैया गोरो बलिभद्र बंधु तिहारो ॥१॥
कारो कारो मत कर ग्वालिन ये कारो सब वृज को उद्धारो ॥२॥
जमुना के नीर तीर धेनु चरावें मधुरी बंशी बजावन वारो ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर चरण कमल मोहे लागत प्यारो ॥४॥

(उद्धव-लीला) संतोष १५० (गुज०)

राम राखे तेम रहीये । ओधवजी । राम राखे तेम रहिये ।
आपणे चिट्ठी ना चाकर छैये ॥०॥
कोई दिन पेरिये हीरना चीर तो । कोई दिन सादा फरिये ॥१॥
कोई दिन भोजन शिरोने पुरी । तो कोई दिन भूख्या रहिये ॥२॥
कोई दिन रे'वा ने बाग बगीचा । तो कोई दिन जंगल रहिये ॥३॥
कोई दिन सुवाने गादी ने तकिया । तो कोय दिन भोंय पर सुइये ।४।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण । तो सुख दुःख सर्वे सहिये ॥५॥

गोपी-भाव १५१ (गुज०)

साँभळो जी मारी वात बाई तमे साँभळो ने मांरी वात ॥०॥
राधा सरखी सुन्दर घर मां । कुबजा ने घर जात ॥१॥
नव लख धेनु घरमां छतांये । घर घर गोरस खात ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल पर हांत ॥३॥

गोपी-प्रार्थना १५२

मदन गोपाल नंदजी को लाल प्रभुजी
मदन गोपाल नंदजी को लाल ॥०॥
बालापन की प्रीत दिखायो । नवनीत चुरायो नंदलाल ॥१॥

अब वंशीवाला थाँसूँ कदिय न बोलूँ
सोवण नींद जगाई जी कन्हैया, बालक नींद जगाई जी साँवरिया ।१
जमुना रे ओरे धोरे होद खणादूँ, न्हावण के मस आवोजी कन्हैया।२
जमुना रे इरां तीरां बाग लगादूँ, फुलडा के मिस आवोजी कन्हैया।३
जमना रे इरां तीरां रसोई बणादूँ, जीमण के मस आवोजी कन्हैया।४
जमनां के इरां तीरां ढ़ोल्यो बिछादूँ, पोंढणके मस आवोजी कन्हैया ५
मीरां बाई कहे हरिगिरधर नागर, हरिचरणा गुणगाऊँजी कन्हैया।६

गोपीभाव १५७

छींकतड़ा पाणी निसरीजी डाँवे बोल्यो काग ।
कन तो गागर फूटसी कन मिले नंदलाल ।
जमुना गई थी जी महाराज लाई फूलण (चंदणं) को हार ।।०।।
क्यारे क्यारे गूजरीजी धोरे धोरे कान ।
छुटा लटा की गूजरी जी सोवन पटा का कान ।।१।।
चढ़ कदम कलकी करी जी सब ग्वाल्या लिया बुलाय ।
भर भर दोवन्या पी गया रहितो महीड़ो ढुलाय ।।२।।
वृषभान की डीकरीजी मोहन वर की नार ।
मीराँ तो दासी आपकी जी सुणजो सरजनहार ।।३।।

प्रेमालाप १५८

कनैया प्यारे आवज्यो छाने छाने ।।
रस्तो छोड गली से आज्यो सभी पिछाणे थाने ।
मैं समझाऊँ तोय साँवरा बात करूँली छाने ।।१।।
काली कमली ओढ कर आज्यो कोई न पिछाणे थाने ।
पाडोसन के आय बैठज्यो वा कह देसी माने ।।२।।
दाऊदयाल को खबर पड़े ना मैया देगी ताने ।

माखन-चोरी १६२

मारग रोक्यो सांवरा खडो काऊ छैल ॥०॥
अश्यो अनीतो जाणती जी मोहना ।
सखियाँ ने लाती मोरी गैल ॥१॥
मटकी फोडी मेरो महिडो ढुलायो ।
चुंदड म्हारी कीधी रेला पेल ॥२॥
छोड द्यो पलो घर जाणे दो मोहना ।
काहे को लगाया झूंठा फैल ॥३॥
मीरां बाई के हरि गिरधर नागर ।
हरि चरणा में चित मेल ॥४॥

राधा-विनोद १६३

वंशी की चोर हमारी, तुम लेगई राधा, मुरली की चोर
हमारी ॥०॥
में जल जमना पाठ करंता तुम जल भरने आई ।
मेंने जल में चमकी मारी तें मेरी वंशी चुराई ॥१॥
लाल जरी का लेहँगा सोहे, सिर चपला की साडी ।
साडी ऊपर थरमा लाग्या, गल बिच हार हजारी ॥२॥
पाँवन में तेरे अणवट विछियाँ, घूंघर की छब न्यारी ।
सर पर तेरे विंदली सोहे, नाकन में नथ भारी ॥३॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी, अध बीच जमुना लहरी ।
मीराँ के हरि गिरधर नागर, आप जीत्या में हारी ॥४॥

राधा-भाव (वंशी चोरी) १६४

श्याम की वंशी बन पाई ॥०॥
उठो री जसोदा मैया खोलो किंवाड़ी ।
तेरा काना की वंशी देने कू आई ॥१॥

गोपी-भाव १६६

म्हारे पीछे कृष्ण रे कदम की शाख हिलावे ॥०॥
आधी आधी रेन नगर सारो सूतो, मोको आन जगावे ।
नन्दसुत होवे तो क्यों नहीं आवे, क्यूं जीया ललचावे ॥१॥
फुलन की माला फुलन का गजरा, फुलन की सेज बिछावे ।
मीराँ कहे प्रभु आज्यो म्हारे, मैं दासी हरि पावे ॥२॥

कुब्जा-भाव १६७ (गुज०)

छेने धुतारी रे पेली छेने धुतारी रे,
मथुरा में कुब्जा, छेने धुतारी ॥०॥
मथुरा मां जाऊ तो आडी फरे छे वाला,
वीठ राखो हेने वारी रे ॥१॥
ऊचा ऊचा मोहोल, वाहाला हेना देशे छे,
बेठी जरूखे एतो वारी रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर वाला,
हरीना चरण कमल पर वारी रे ॥३॥

राधा-भाव १६८

थारा चरण कमल की दासी नजर भर न्हाळो लालजी ॥०॥
चार मास ऊन्हालो निकल्यो चार मास बरसालो ।
अठे टालो देगयाजी आयो रतन सियालो ॥१॥
इत गोकुल इत मथुरा नगरी अध विच जमुना रो नालो ।
विण नाले राधाजी भूले नित आवे नखरालो ॥२॥
थें छो सबला म्हे छाँ निबला नहीं मिलन को सारो ।
किरपा कर प्रभु मंदिर पधारो जब जाणूं पतियारो ॥३॥
आप बिना म्हारे हिवड़े अंधारो आप करो उजियालो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बिना अगन मति जालो ॥४॥

जमुना रे किनारे धेनु चराता,
बैठ कदम की छांय रूडी बंशी बजाता ॥३॥
मीराँ के प्रभु शरण तुम्हारे आता,
आप मोटा राजवी ने सभी जुगन्ता ॥४॥

बाल-लीला १७३

मोहि बडो करले मोरी मैया, मोहि बडो करले मोरी० ॥०॥
मधु मेवा पकवान मिठाई, जब मांगू जब दे री ॥१॥
सब लडकन में बडो कहावुं, तेरो पुत्र बडे री ॥२॥
बडो होवुँगो टहल करूंगो, मारूंगा सब वैरी ॥३॥
मार मल्ल अखाडे जीतूं, कंस को मारूं वैरी ॥४॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर, मथुरा राज करो री ॥५॥

राधा-भाव १७४

पोढण समय भयो री, श्री राधे रानी, पोढण समय भयो री ॥०॥
इत दूर गये द्रुमन की छैयाँ, इत दूर चन्द्र गयो री ॥१॥
झमक चढ़े सुरंग पलंग पर, नयो रंग बढ़े री ।
एरी एरी नयो रंग बढ़ेरी ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, यो सुख दगन लयो री ॥३॥

बाल-लीला १७५

अब म्हाने सोवण दो म्हारी मांय ॥०॥
कनक कटोरे लाल अमृत भर्यो, पीय न पोढो मारा लाल ॥१॥
अभी तो माता म्हाने कछु नहीं भावे,
अब म्हाने पोढण दो म्हारी मांय ॥२॥
ऊठ सवेरे माता करां रे कलेवो, पिछे चरावुं थांरी गाय ॥३॥
नो लख धेनु बाबा नन्द के चरैये, डोलत दुखे म्हारा पांव ॥४॥

राधा-भाव १७७

पांवां रा खुरताळा बाजे कूण छे माझल रात जी ॥०॥
मैं जगजीवन कैये राधे खोलोनी किंवार जी ॥१॥
जगजीवन मैं इन्द्र ने जानूं जग में सारी जोत जी ॥२॥
मैं वनमाली कैये राधे खोलोनी किंवार जी ॥३॥
मैं वनमाली माली ने जानूं फूल लावे प्रभात जी ॥४॥
मैं मुरलीधर कहिये राधे खोलोनी किंवार जी ॥५॥
मैं मुरलीधर मोरचो ने जानूं बोले मोर प्रभात जी ॥६॥
मैं वादीगर कहिये राधे खोलोनी किंवार जी ॥७॥
मैं वादीगर वादी ने जानूं नाग पिटारो लावे प्रभात जी ॥८॥
मीरां वाई के प्रभु गिरधर नागर, झगड्या सारी रात जी ॥९॥

उद्धव-लीला १७८

ऊधो कैसे विसरूं रे, गिरधारी गोपाललाल ने पल पल
सुमरूं रे।
मैं वरजुं म्हारो कह्यो न माने आँगन वैरी रे ॥०॥
माय खिजावे वृज उवारे वे दिन दुर्लभ रे।
इन्द्र कोप करचो वृज ऊपर नख पर गिरिवर धारचो रे ॥१॥
कृष्ण कठोर गोपियां त्यागी जबहि न जान्यो रे।
दया छोड मथुराजी श्रो चाल्या जब का वैरी रे ॥२॥
वृन्दावन में रास रच्यो है गोपियां सारी रे।
एक कृष्ण एक गोपियो नाचे रास बनायो रे ॥३॥
एक समय हरि चालो वृज में केवुं सब मन की रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल लिपटानी रे ॥४॥

गोपी-उलहाना १८२

राज जाण्यां निरमोही, थांरा सरीखा थे ही राज जाण्यां निरमोही ॥०॥
गोकुल छांड वृन्दावन छांडी, द्वारिका में जाय छाई ॥१॥
राधा जो रूखमण और सतभामा, कंस की दासी जाइ जोई ॥२॥
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे, गल वैजयंती माल सोई ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, घणा गाढ़ा रंग देऊँ तोई ॥४॥

गोपी-प्रेम १८३ (गुज०)

आवो आवो जसोदा रा लाल, माखन खावा ने ॥०॥
कनक कटोरे अमृत भरियो, मिश्री भरियो थाल
ऊभी रहीने जोवुं वाटडी, क्यारे पधारे नन्दलाल ॥ माखन० ॥१॥
ऊँचा मंदिरियां म्हारा श्री जी ना, नीचे अटारी म्हारी रे
थांरे मन्दरिये मूं नथी आवुं, थूं छे न्यारो धूतारो रे ॥ माखन०।२।
अब तो प्रभु मोको नाय मिलो तो प्राण तजूं निरधार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार ॥माखन ॥३॥

जल-भरन १८४

नटनागर नंदकिशोर गागर ढोर दई ॥०॥
हा हा खात मेरी एक न मानी, पैयां परत कर जोर ॥१॥ गागर०
ऐसी मसखरी करो लालजी, चलो सांखरी खोर ॥२॥
वृन्दावन की कुंज गलियन में, मच रह्यो शोर ॥३॥
मीराँ की या विनती सुणजो, नागर नन्दकिशोर ॥४॥

जल-भरन १८५

मारग मेरो छोड दियो गिरधारी ॥०॥
संग की सहेजी मेरी दूर गई है, मेरे सिर गागर भारी ॥१॥

हाथी ने घोडा माल खजाना तारी संगे न आवे जरी ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, वर तो विट्ठल ने वरी ॥६॥

उद्धव-लीला १८६

अपणे करम को वो छै दोस, काकूँ दीजै रे ऊधो अपणे० ॥०॥
सुणियो मेरी बगड़ पड़ोसण, गेले चलत लागी चोट ॥१॥
पहली ग्यान मान नहिं कीन्हौ, मैं ममता की बाँधी पोट ॥२॥
मैं जाणूँ हरि नाहिं तजेंगे, करम लिख्यो भलि पोच ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारो नी सोच ॥४॥

चीर-हरन १९०

आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदम की डारी, हे माय ॥०॥
म्हारे गेल पड्यो गिरधारी, हे माय ।
मैं जल जमुना भरन गई थी, आगयो कृष्ण मुरारी, हे माय ॥१॥
ले गयो सारी अनारी म्हारी, जल में ऊभी उघारी हे माय ।
सखी साइनि मोरी हँसत है, हँसि हँसि दे मोहि तारी, हे माय ॥२॥
सास बुरी अरू नणँद हठीली, लरि लरि दे मोहि गारी, हे माय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की वारी, हे माय ॥३॥

कुब्जा-व्यंग १९१

एरी मा खड़ी निहारूं वांट ।
चितवन चोट कलेजे कर गई सुन्दर श्याम सुघाट ॥०॥
मथुरा में कुबजा कर राखी महाजन जैसी हाट ।
केसर चन्दन लेपन कीना सुन्दर श्याम लिलाट ॥१॥
हमरा पलंग जड़ाऊं छोड़्या वढ़िया रेशम पाट ।
किस पर राजी भयो रे सांवरा चेरी के नहिं खाट ॥२॥
अजहुं न आयो कुंवर नन्द को किससे लागी चाट ।
छोड़ गयो मझधार सांवरो बिना अकल को जाट ॥३॥

कागद ले राधा बाँचण बैठी, भर आई छाती ।
नैन नीरज में अंब बहै रे (बाला), गंगा बहि जाती ।।२।।
पाना ज्यूँ पीली पड़ी रे (बाला), अन्न नहीं खाती ।
हरि बिन जिवड़ो यूँ जलै रे (बाला), ज्यूँ दीपक सँग बाती ।।३।।
साँचा कुछ चकोर चंदा झोलै बहि जाती ।
व्रजनारी की बीनती रे (बाला), राम मिले मिल जाती ।।४।।
मनै भरोसौ राम को रे (बाला), डूबत तारयो हाथी ।
दास मीराँ लाल गिरधर, साँकड़ा रौ साथी ।।५।।

दधि-वेचन १९६

कैसे आवौं हो लाल तेरी व्रज नगरी गोकुल नगरी ।।०।।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहै यमुना गहरी ।
पांव धरयां मेरी पायल भींजै, कूदि परौं बहि जाउँ सगरी ।।१।।
मैं दधि वेंचन जात वृन्दावन मारग में मोहन झगरी ।
बरज यशोदा अपने लाल को छीन लई मेरी नथली ।।२।।
रहु रहु ग्वालिनि झूठ न बोलो, कान अकेलो तुम सगरी ।
मेरो कन्हैया पाँच बरस का, तुम ग्वालिन अलमस्त भई ।।३।।
जाय पुकारौं कंसराय से, न्याय नहीं गोकुल नगरी ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, बांह पकर राधे झगरी ।।४।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साधु संग करि हम सुधरी ।।५।।

दधि-वेचन १९७

कोई स्याम मनोहर ल्यो री, सिर धरैं मटकिया डोलै ।।०।।
दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो,हरिल्यो' बोलै ।।१।।
कृष्ण रूप छकी है ग्वालनि, औरहि औरै बोलै ।।२।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोलै ।।३।।

वृन्दावन क्रीड़ा करै, गोपिन के साथ ।
सुर नर मुनि सब मोहे हो, ठाकुर जदुनाथ ॥४॥
इन्द्र कोप घन बरखो, मूसल जलधार ।
बूड़त ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार ॥५॥
मीराँ के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चितलाय ।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय ॥६॥

दधि-बेचन २०२

या ब्रज में कछू देख्यो री टोना ॥०॥
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नँदजी के छोना ॥१॥
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी,
'ले लेहु री कोई स्याम सलोना' ॥२॥
बिन्द्रावन की कुंज गलिन में,
आँख लगाय गयो मन मोहना ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
सुन्दर स्याम सुघर रस लोना ॥४॥

गोपी-भाव (सेवा भावना) २०३

स्याम ! म्हाने चाकर राखोजी, गिरधारीलाल ! चाकर राखोजी ॥०॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसण पासूँ ।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, गोविंद लीला गासूँ ॥१॥
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची ।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनूँ बाताँ सरसी ॥२॥

विरह २०६

हो गये स्याम दूइज के चंदा ॥०॥
मधुवन जाइ भये मधुवनिया, हम पर डारो प्रेम को फंदा ॥१॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा ॥२॥

बाल-लीला २०७ (पं०)

हो कानाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ ॥०॥
सुघर कला प्रवीन हाथन सूँ, जसुमतिजू ने सँवारियाँ ॥१॥
जो तुम आओ मेरी बाखरियाँ, जरि राखूँ चन्दन किवारियाँ ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ ॥३॥

राधा-भाव २०८ (गुज०)

राजना दृग चित चोर छे रंगभीना। राधा ए किशोरी,
ए राधा राजना० ॥०॥
नेक तो नजरभर झाँको छो जी राज ओ प्रभुजी,
मैं तो थांरा काळजा नी कोर छे ॥१॥
कोटीने कुवाण खेंच मारो छो जी राज साँवरिया,
थे तो म्हारा जीवना आधार छो ॥२॥
याही वृन्दावन की कुंज गली में,
रंग भर रासडी रमावजो ॥३॥
मीराँ दासी गिरधरलाल को जी ओ राज,
चरण कमल चित चोर छे ॥४॥

गोपी-भाव २०९

नन्दकुँवर अलबेला श्याम तेरो मुखडो जोवण आई ओ।
मुखडो जोवण आई लालजी, दर्शन थांरा पाई ओ ॥०॥

वियोग २१२ (गुज०)

क्यां गयो पेलो मोरली वाळो अमारा घुंघट खोली रे ।
क्यां गयो पेलो वांसली वाळो अमने रंग मां गोळी रे ॥०॥
हमणां वेणी गुंथी हती, पेहेरी कसुंबल चोळी रे ।
मात जसोदा शाख पुरे छे, केशर छांट्यां घोळी रे ॥१॥
जळ जुमना मां भरवा गयां तां, बेडु नांख्यु ढोळी रे ।
पातळीओ परपंचे भदीओ, अमे ते अवला भोळी रे ॥२॥
प्रेमतणी प्रेमदाने तर, गेत्रनी मारी गोळी रे ।
मीरां वाई कहे प्रभु गीरधर ना गुण, चरण कमळ चित चोरी रे ॥३॥

जसोदा-भाव २१३ (गुज०)

काले परणावशुं गोपी, कुंवर ने काले परणावशुं गोपी रे ।
लाज मरजादा सर्वे लोपी, कुंवर ने काले परणावशुं गोपी रे ॥०॥
कान कुंवर मारो घोडे चडशे, माथे मुगट आरोपी रे ॥१॥
राधका ज्यारे मंदीर पधारशे, मंदिर रहेसे ओपी रे ॥२॥
मीरां वाई कहे प्रभु गीरधर ना गुण, लीला वाधा ने पीळी टोपी रे ॥३॥

राधा-भाव २१४ (गुज०)

अजव सलुणी मरघा नेणी, तें मोहन वश कीधो जी ॥०॥
मकनो सो हस्ती ने लाल अंबाडी, अंकुश वश कीनो जी ॥१॥
लविंग सोपारी ने पान नां बीडा मां, कछु कीधुं जी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गीरधर नागर, चरण कमळ चित लीधुं जी ॥३॥

गोपी-भाव २१५ (गुज०)

चालने सखी मारो श्याम देखाडुं, व्रन्दावन मां फरतो जी ॥०॥
नख शीख सुधी हीरा ने मोती, नीत्य नवा शणगार धरतोजी॥१॥

चीर चुराय कदम पर बैठा, सखियाँ खड़ी छे घनश्याम ॥१॥
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में, महिड़ो लुटे छे घनश्याम ॥२॥
तट जमुना पर धेनु चरावे, वंशी बजावे घनश्याम ॥३॥
वृन्दावन में रास रचायो, गोपियाँ नचावे घनश्याम ॥४॥
कालीदह में नाग जो नाथ्यो, फण फण नाचे घनश्याम ॥५॥
अध गोकुल अध मथुरा नगरी, अध बीच जमुना बहे जी ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि का चरणा में बलिहारी जी॥७॥

विरह २२०

बालापन में बैरागन कर गयो रे ॥०॥
खाँदे कामलिया हाथ लकरिया, जमुना के पार उतर गयो रे ॥१॥
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावत, बंसी की टेर सुनाय गयो रे ॥२॥
मीरां बाई के प्रभु गिरधर नागर,साँवरी सूरत दिखाय गयो रे ॥३॥

झूला २२१

हो पड्यो री मेरो झांझर छटक पड्यो ॥०॥
चंपे की डार हिंडोरों जी घाल्यो, रेसम की गज डोर ॥१॥
झूलतडां म्हारो झांझर छटक्यो, मोहन कपट करो री ॥२॥
दो वृजराज म्हारी दया देखो, घरां म्हारी सासु लडे री ॥३॥
सवा सवा लाख रो झांझर घडाज्यो, बिच बिच जडाव जडाय॥४॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणा चित लाव ॥५॥

दर्शनानन्द (युगल-झांकी) २२२

दोउ मिल करत आली बावरी मानों बतियाँ ॥०॥
नंद के गोपाल लाल, कँवरी श्री राधेजी ।
भर भर अंग धरत मोरी छतियाँ ॥१॥
ऐसी उजियारी मानों, छटक रही है ।
पूरण चंद शरद की ओ रतियाँ ॥२॥

घाटे घाटे वहालो पाणीडां मांगे, लोको देखे ने केम पाउं रे—
जशोदा०

लालजी तो प्रभु निरलज्ज थया छे,
हुं निरलज्ज केम थाउं रे—जशोदा०

सोना ते केरूं वेडलुं अमारूं,
ऊंढणीए रत्न जडावुं रे—जशोदा०

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
अणमूले हुं वेचाउं रे—जशोदा०

जल-भरन २२५

गागरियां फोरी, जाके मथुरां हा काना ने, गागरियां फोरी …
हां……हां……जाके

ऐसी रीत तुजे कौन सीखावे,
किसन करत बलजोरी, हां…हां…जाके०

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल बलिहारी. हां…हां…जाके.

दान-लीला २२६ (गुज०)

मेलोनी मावा, मारगडो मेलो नी मावा ॥०॥
वाटे ने घाटे रोको शामळीया, हांरे मारा पालवडा शावा ॥१॥
रसियाजी शुं स्होर करो छो, जीवण दो जावा ॥२॥
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, गुण तो गोविंद ना गावा॥३॥

मान-लीला २२७ (गुज०)

नाव रीसायो रे वेनी मारो नाव रीसायो रे ॥०॥
चोरा मां जोयो ने चौटा मां जोयो, फळीमां जोयो फरी-
फरी ने ॥१॥

उपालम्भ (कुब्जा-भाव) २३२

कानो भयो रे दूर को दुवारका वासी ॥०॥
निरमल जळ जमुना को छाँड्यो, जन्मभूमि मथुरासी ।
गुवाळ वाल सब बिलखत छोड्या, गऊयें छोड दई प्यासी ॥१॥
ये ठाकुर हैं तीन लोक के, कुबज्या कंस की दासी ।
स्याम तुम्हारे कारण राधा, सूक गई तिँणकासी ॥२॥
सोलह सहस्र गोपिका त्यागी, रंग महल से कासी ।
कुबज्या के संग बिलम रह्यो है, मात छोडी जसोदासी ॥३॥
झूंठी थाली को पाँणी पीयो, राँणी करी कुबज्यासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुँण सुँण आवे हाँसी ॥४॥

दान-लीला २३३

छैल गैल मत रोकै तू हमारी रे ॥०॥
चाल कुचाल चलो जिन चंचल ।
ऐसी अनीति तैंने करनी विचारी रे ॥१॥
सखी संग की देखत ठाडी,
चरचा करैंगे सब पुर नर नारी रे ॥२॥
मैं सुकुमार खड़ी काँपत हों,
सिर पर दधि की मटुकिया भारी रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
तुम्हरे चरण कमल बलिहारी रे ॥४॥

दान-लीला २३४

छोडो चुनरिया, छोडो चीर, मनमोहन मन मोहन लिया री ॥०॥
नंदजी के लाल, संग चलै गोपाल,
धेनु चरत चपाल, बीन बाजे रसाल, चीर छोडो ॥१॥

वृंदावन में गउएँ चरावैं।
तोड़ लियो मोरे गरवा को हार ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। मैं तो तेरे गई बलिहार ॥३॥

विरह (कुब्जा-भाव) २३८

बाटड़ली निहारूँ जी मैं हारी ठाड़ी ठाड़ी ॥०॥
आप न आवै पतियाँ न भेजै, छतियाँ करी अति गाढ़ी ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, जमुना वह रही आडी ॥२॥
आप जाय मथुरा में बैठे, प्रीतड़ली वोह बाढ़ी ॥३॥
हमको लिख लिख जोग पठावै, आप दुल्हे कुब्जा लाडी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कहाँ कहूँ जमना आडी ॥५॥

जल-भरन २३९

बंसी बजावै नित जमुना तट आवै ॥०॥
हों जमुना जल भरन जात ही, चित दे चित्त चुरावै ॥१॥
भोर भई वहैं बोरैं सजनी, बावरीसी जाँनी मोहि बोरावै ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ठगपैं कौन ठगावै ॥३॥

उद्धव-लीला २४०

मत कर माधोजी की बात, एजी तुम सुण ऊधो महाराज ॥०॥
ज्यो कोई बात करे माधो की, हिये (में) करोत वह जात ॥१॥
एक समै हरी रास रचायो, छै महिना की रात ॥२॥
एक समै कालिन्दी तट पर, ग्वाल बाल सब लार ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल बलिहार ॥४॥

गोपी-भाव २४१

मत आवै रे नंदका म्हाँकी गली ॥०॥
म्हांकी गली की बाँकी गुवालिन, मतना लोग हँसावै रे ॥१॥

पहली प्रीति करी हरि हमसूं, प्रेम प्रीति कौ झोलो ॥१॥
प्रेम प्रीति की गांठ्यां घुलि गई, याने कुँण विध खोलो ॥२॥
कुबज्या दासी कंसराय की, उँकी सरभर तोलो ॥३॥
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, हिवड़ारी गांठ्यां खोलो ॥४॥

वृंदावन-महिमा २४५

राधेजी को लागे वृंदावन नीको ॥०॥
वृंदावन में तुलसी का बिड़ला, जाके पान चरीको ॥१॥
वृंदावन में धेनु बहुत हैं, भोजन दूध दही को ॥२॥
वृंदावन में रास रच्यो है, दरसण कृष्णजी को ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिना रंग सब फीको ॥४॥

लीला २४६

वाह वाहरे मोहन प्यारे कहाँ चले जादू करिकैं ॥०॥
रूप सरूप सलूनी सी डारी मेरो मन लीनूं हरकैं ।
मोर मुकट सिर छत्र विराजै नख पर गिरवर धरकैं ॥१॥
दमन कियो नाग काली को आप घुसे मध सरकैं ।
फण फण निरत करत यदुनन्दन अभै कियो खगवर कैं ॥२॥
सब व्रजलोग छांडि निज घरकूं जाइ बसे तर गिर कैं ।
सात दिवस लग सूँड धार जल इंद्र परयो पग डरकैं ॥३॥
कातिक मास बाल सब मिलकै नांचैं जल में तिरकैं ।
चीर चोर पुनि वगल डारकैं जाय चढ़े छल करिकैं ॥४॥
वृंदावन की कुंज गलिन में रास रच्यों छलबल कैं ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी पानैं पड़ी गिरधर कैं ॥५॥

उद्धव-लीला २४७

सहेल्यो उद्धोजी आया हे ।
आया पठाया स्याम का मेरे मन नहिं भाया हे ॥०॥

उपालम्भ २५०

सुण लीजे हे जसमत अम्मा । अम्मा ए म्हारा प्याराजी ने
घणी ए खम्मा ॥०॥
आप न आये द्वारिका छाये, लिख भेजै म्हाँने दम्मा ॥१॥
हमें न बुलावै पतियाँ न भेजै, कबलग राखाँ म्हे गम्मा ॥२॥
मीठा बोला छाती छोला, साँच नहीं छे वाँमें जम्मा ॥३॥
चुण चुण कलियां सेज बिछाई, कुब्ज्या के संग रम्मा ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बाबांजी पग ने नम्मा ॥५॥

विनय २५१

अजीये ललाजू आज गोकुल वासी ॥०॥
गोकुल वासी प्राण हमारे, हाँ ललाजी ।
श्याम आये भला, श्यामसुन्दर अविनासी ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हाँ ललाजी ।
बीच ये भला, बीचे नदी यमुनासी ॥२॥
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावें, हाँ ललाजी ।
हाथ लिये नौलासी ॥३॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में, हाँ ललाजी ।
सँग दुलहिन राधासी ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हाँ ललाजी ।
तुम ठाकुर मैं दासी ॥५॥

विरह २५२

उड़जारे काग बन का, मेरा स्याम गया वोहो दिन का रे ॥०॥
तेरे उड्या सूँ राम मिलैगा, धोखा भागै मन का रे ॥१॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हरि है गाठे दिल का रे ॥२॥

आम की डार कोयलिया बोलै हमरो मरन लोग की हाँसी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मैं तो जनम जनम की दासी ।।२।।

उद्धव-लीला २५६

ऊधो म्हारे मनकी मनमें रही ।।०।।
एक समैं मोहन घर आये, मैं दधि मथत रही ।
या दुनियां को झूंठो धंधो, मैं हरि कूं बिसर गई ।।१।।
या कपटी की कहा कहूँ ऊधो, वचन प्रतीत नहीं ।
नैंन हमारे ऐसैं झूरैं उलटी गंग बही ।।२।।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी बीच में जमुना बही ।
आप मोहनजी पार उतर गया हमसे कछू ना कही ।।३।।
व्रजवनिता को संग छाँडि कै कुबज्या संग लई ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी चरणां लिपट रही ।।४।।

उलाहना २५७

एरी बरजो जसोदा कान, मेरे घर नित्य आता है।
जिधर को मैं मुड़ जाती हूँ, बगद मेरे सामा ही आता है ।।०।।
मैं जल जमुना भरन जात हूँ, मेरे सामा ही आता है ।
कँकरी दे मोरी बहियाँ मरोरी, बाराजोरी मचाता है ।।१।।
मैं दधि बेचन जात बृन्दाबन, चला पीछे से आता है ।
दधि की मटकी फोड़ माखन, मेरा लूट खाता है ।।२।।
रास विलास करत गोकुल में, बँसियाँ सुनाता है ।
मीराँ को गिरधर मिलिया, चरणों में लगाता है ।।३।।

प्रेम-लीला २५८

तैं मेरी गेंद चुराई, गुवालन ।।०।।
अबही आन परी तेरे अंगना, अंगियाँ बीच छुपाई ।।१।।
ग्वाल बाल सब मिल कर आये, झगरत झोंका आई ।।२।।

उलाहना २६२

काल की रैण विहारी, महाराज कौन विलगायो ॥०॥
काल गया ज्यां जाहो विहारी, ओंही तोही कौन बुलायो ॥१॥
कौन की दासी काजल सारचो, कौन तन रंग रमायो ॥२॥
कंस की दासी काजल सारचो, उन मोहि रंग रमायो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कपटी कपट चलायो ॥४॥

दान-लीला २६३ (गुज०)

जमीन पर जलनां ते दाण कोण ले छे ॥०॥
जलनां ते दाण काने सांभल्या नथी (नहीं) जो ।
एवो कोण आवी अहींयां रहे छे ॥१॥
मथुरा थकी वहाला गोकुल न आवियो ।
ढोर चारी वळी (फिर) दाण ले छे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दाण देतां चरत चित्त रहे छे ॥३॥

उद्धव-लीला (उपालम्भ) २६४

जान्यो मैं राज को वहेवारा ओधवजी ॥०॥
आंबा करावो, लींब करावो, बावल की करो वाड ।
चोर धरावो सावकार दंडावो, नीति धरम रसवार ॥१॥
मेरो कह्यो सत नहिं जाण्यो, कुबजा के किरतार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अंधाधुंध सरकार ॥२॥

गोपी-भाव २६५

तुम कीं करो या हूँ जानी ॥०॥
वृन्दावन की कुंजगलिन में, गोधन की चरैया हूँ मानी ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर शोभे, मुरली को बजैया हूँ जानी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दान दिन ले तब हूँ जानी ॥३॥

वृन्दावन की कुंजगली मों, गौअन की चरण धुलाई ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, घर घर लेऊँ बलाई ॥३॥

प्रेम २७० (गुज०)

आवतां आवतां आवतां रे, वाण वाग्या मोहन ना आवतां ॥०॥
जल रे जमना नां अमे पाणीडां ग्या ता,
शिर पर गागर चडावतां रे ॥१॥
वाडा मां जई व्हाला वाछरडां छोड्या,
खोळे मेल्यां छे बाळ धावतां रे ॥२॥
घरना काम काज विसर्यां सर्वे,
चुले मुक्यां छे घी तावतां रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण,
हैयामां हरि झुलावतां रे ॥४॥

गोपी-भाव २७१ (गुज०)

राम छे राम छे राम छे रे, मारा हृद्या मां व्हालो राम छे ॥०॥
आरे मंदिरे मारी सासु ने ससरो, सामे मंदिरीए श्याम छे रे ॥१॥
सासु जुठीने मारी नणदी हठीली, न्हानो देवरीओ नकाम छे रे ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, वचमां गोकुळीयुं गाम छे रे ॥३॥

प्रेम २७२ (गुज०)

उभा कद्म वन वेली मां, छबीलो लाल, उभा कद्म वन
वेली मां ॥०॥
जमुना ने कांठे व्हालो धेनु चरावे, मेघली बर्षानी हेली मां ॥१॥
श्रीमुख निरखवाने मनडुं तपे छे,
घडी नथी गोठतुं हवेली मां ॥२॥
जो प्रभु म्हारे मंदिरे पधारो,
तो राखीश गुलाब्र चंबेली मां ॥३॥

आगळ्थी मारो पालवडो साह्यो, महीनी मटुकी फुटी ॥२॥
पाछल पडे तेनो केडो न मुके, न्हासी शकाय नही छुटी ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, कहीए तो लोको कहे जुठी ॥४॥

उपालम्भ २७७ (गुज०)

झुमकहार शीद तोड्यो, हो राज मारो झुमकहार शीद तोड्यो।
हारनी पडी छे त्रण ओळो, हो राज म्हारो० ॥०॥
जलरे जमनाना भरवाने ग्यातां, पनघट तीरे हार तोड्यो ॥१॥
वृंदावन ने चोके रमतातां, कूडा वचन कोण बोल्यो ॥२॥
प्रीत करी पण करतां न आवडी, नंद अहीर नो छोरो ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, समजे नहीं श्याम तुं तो भोरो ।४।

उद्धव-लीला २७८ (गुज०)

कहो मनडा केम वारीए, ओधवजी कहो मनडां केम वारीए ॥०॥
जेरे दा'डाना मोहन गया मेली, ते दा'डाना आंसु ढाळीए ॥१॥
अमने विसारी वस्या जई मथुरा, वश कर्या कुब्जा काळीए ॥२॥
कूप जो होय तो गाळीए नीर कूपना, सागर ने कई पेर गाळीए ।३॥
कागळ जो होय तो वांचीये वंचावीए, कर्मने कई पेर वांचीए ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, वीत्या वितक केम टाळीए ॥५॥

उद्धव-लीला २७९ (गुज०)

प्रेमनी वात छे न्यारी ओधवजी प्रेमनी वात छे न्यारी ॥०॥
प्रेमनी वातो मां ओधा तमे शुं जाणो, बीजा शुं जाणे संसारी ।१।
प्रेमनी वातो मां ओधा ब्रह्माजी भूल्या, वेद मेल्या छे विसारी ।२।
प्रेमनी वातो मां ओधा शंकर भूल्या, बेठा कैलासे ध्यान धारी ।३।
प्रेमनी वातो मां ओधा भूल्या छे भक्तो, तन मन धन ने ओवारी ॥४॥
तमारो रंग ओधा रंग छे पतंग नो, अमारो रंग छे करारी ॥५॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल बलीहारी ॥६॥

बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, तमने भजीने थई न्याल,
वाटडली जोई रही छु ं ॥४॥

गोपी-प्रेम २८३ (गुज०)

प्रभु मारी दृष्टि सन्मुख रहेजो, प्रभु मारी आंखो आगळ
रहेजो ।०॥

हुं छु ं दासी आपनी व्हाला, पोतानी करी लेजो ॥१॥
फुलडा मधुरनी सय्या बीछावु ं, सेवा चरणनी देजो ॥२॥
वृन्द्रावन ने मारग जाता, दर्शन नीत नीत देजो ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हृदय कमळ विचे रहेजो ॥४॥

गोपी-भाव २८४ (गुज०)

वाछरडी आ रेडी रे, लाल तारी वाछरडी ॥०॥
एवड वेवड वळ दीधेली, त्रेवड दोरडी तोडी रे ॥१॥
दोणी लईने दोहवा बेठी, मटका नाख्या फोडी रे ॥२॥
घर आंगणीये बंधाय ना, वंसी सुणी वन मां दोडी रे ॥३॥
वाछरडी ना पगज बांध्या, तोय एणे पाटु मरोडी रे ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, वाछरडी दीधी छोडी रे ॥५॥

श्रीकृष्ण जन्म २८५

जसुमति पुत्र जायो, रूप गुण अगरो ।
गोविंद पुरणचंद, तारण जुग सघरो ॥०॥
मेरे श्रवण भनक पड़ी, वाजत है घुघरो ।
आधि रेन अंधियारी में, आयो तारण जुगरो ॥१॥
श्री गोकुल में भीड भई, मीलत नहीं डगरो ।
एक आवे एक जावे, एक मचावे झगरो ॥२॥
प्रात समे धुम ऐसी मची, चल सके ना पगरो ।
मीराँ मुखार्विंद निरखे, जीवननंद नन्द रो ॥३॥

गोपी-भाव २८६

वीसर गई मेरो हार, जमना तीरे विसर गई मेरो हार ॥०॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, कैसे उतरूं पार ॥१॥
मैं जल यमना भरन जातरी, मिल गये नन्दकुमार ॥२॥
वन्द्रावन की कुंज गलिन में, नृत्य करत है मुरार ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल वलिहार ॥४॥

प्रेम २६०

नेण सलुणे प्रेम जगायो, मेरो चित गोविंद से लगो हो मेरो० ॥०॥
घडी पल मोहे नींद न आवे, कान विना मोहे कछु न सुहावे,
एक ही ध्यान लगो ॥१॥
वंद्रावन में गोधेन चारे, वंसी वजावे, तन भान भुलावे,
त्रट जमना को आरो लगो ॥२॥
वाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, वारी वारी जाऊं करुणा सागर,
चरण कमल में चित लगो ॥३॥

राधा-भाव २६१

मुगट पर वारी वारी वारी ॥०॥
जल जमना पर वंगला वनाऊं, फरती लगाऊं वारी ॥१॥
नित्य प्रभात में दर्शन पाऊं, तेरा कृष्ण मुरारी ॥२॥
में तो पहेरूं कसुंबल साडी, तेरी पीतांबर छत्र न्यारी ॥३॥
मैं ओढुं जरकसी पछेडो, तेरी वंसी की धुन भारी ॥४॥
मैं तो पहेरूं मोती की माला, तेरी वंसी की धुन भारी ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर चरण कमल पर वारी ॥६॥

जल-भरन २६२ (गुज०)

देजो मारी इंढोणी श्री नागर नन्दकुमार देजो० ॥०॥
रत्नजडीत इंढोणी अमारी, हीरा जड्या हजार ॥१॥

दादुर मोर पपैया बोले कोयल करे सोर जी ।
राधाजी रे संग झूले नन्द के किशोर जी ॥२॥
फूलन हारन गूंथन लाज्यो गल पहराज्यो जी ।
म्हांने बाग बगीचा री सैलाँ साँवरा फेर कराज्यो जी ॥३॥
राधा और चन्द्रावल रूकमण लारा लीजो जी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर दर्शन दीजो जी ॥४॥

उद्धव-लीला २६७

प्रीति टूटी नहिं जानी रे ऊधवजी ॥०॥
राधा व्रजवनिता छांडी, कुबजा की पटरानी ॥१॥
पहली प्रीति करी हरि हमसों, अब तो भये जात बिडानी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल लिपटानी ॥३॥

गोवर्धन-धारण २६८

गिरिवर गिर ना पडे रे गोपाल ।
सब सखियन मिल पूजन चालो भर भर मोतियन थाल ॥०॥
दादुर मोर पपैया बोले पीऊ पीऊ की पुकार ॥१॥
इन्दर कोप कियो व्रज ऊपर बरसे मूसलधार ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर कबकी करे रे पुकार ॥३॥

प्रेमालाप २६९

खबर मोरी लेजारे चंदा । जावत तुम उन देस ॥०॥
हो नंद के नंदजी सूं यूं जाई कहीयो ।
एक बार दरसन देजा रे ॥१॥
आप बिहारे दरस तिहारे ।
कृपा दृष्टि करीं जारे ॥२॥

विरह ३०३

जा संग मेरा नेहा लगाया। वांकों मैं ढुंढने जावुंगी ॥०॥
जोगन होके वन वन ढूंढूँ। अंग वभूत रमायो रे ॥१॥
गोकुल ढूंढूँ मथुरा ढूंढूँ। ढूंढ फिरूं कुल गलियां रे ॥२॥
मीराँ दासी शरण जो आई। शाम मिले तहाँ जावुं रे ॥३॥

प्रेमालाप ३०४

नंदकिशोर सें प्रीत कीनी, ब्रीज में वदनाम होइ चूकी ॥०॥
प्रीत के वान लगे मेरे तन में,
जिंदगानी से हाथ मंय धोइ चूकी ॥१॥
एक कहो कोई लाख कहो,
अब होने वाली सो होइ चूकी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
सुध वुध सब में खोइ चूकी ॥३॥

राधा-भाव ३०५ (गुज०)

भार तु धणीनी दीन था। वत्तुं अमे केम करिये।
लटकामा आवुंने लटकामां समजावुं रे ॥०॥
एक ठकाणुं तमनें एवुं वतावुं ते। वे घडी उभा रेजो रे।
सुख दुखनी आपण वातो करिये। वालम जोवन जाय रस लेवा रे ॥१॥
सोना इंढाणीने रूपलानुं वेड़ु। हाथ मां जल जमुना नी झारी।
राणी राधाजी जाणे पाणिडां चाल्यां। जाणे सोल वरस नी नारी ॥२॥
सोले शृंगार तारे अंगे विराजे। ने हातमां सोना केरो चूडो।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वाला गोविंद वर छे रूडो ॥३॥

दासी को राणी कर छांडि छांडि कुल मर्याद ।
मीराँ कहे महाराज ने रे तुम बिन ये सब बेकार ॥३॥

प्रेमालाप ३०९ (गुज०)

शामळिया व्हाला पातळिया रे म्हारी सेज आवोने शामळिया ॥०॥
लालने माथे जड़ियाला टोपी रे व्हाला ।
तमारे जोवा मेलियो व्रजनी गोपियाँ ॥१॥
लालने हिंचोले रेशमनी डोरी रे व्हाला ।
तमे हिंचोले राधा गोरी ॥२॥
लालने काने हींचा मोती व्हाला ।
तमे वळती आडा घूंघट में जोती ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
तमे सेजे पधारो म्हारा रंगना रसिया ॥४॥

गोपी-भाव ३१० (गुज०)

नहीं करिये रे नेहडा नुगराथी नहीं करिये रे नेहडा नहीं करिये।०।
सासु सपूती म्हारी नणँद धुतारी व्हाला,
सोकडलियाँ में वळी मरिया ॥१॥
आनी कोरे गंगा व्हाला पेली कोरे जमना,
सासुना संगाती अमी जल भरिया ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
तां गुण वरतो विट्ठलराय तमने वरियाँ ॥३॥

दानलीला ३११

मा मारी नंदजीरा गोपाल महीडा रो दान मांगे ॥०॥
छोटी से मोटी भई ए माय ।
कदियन न दीधा महिडा रो दान ॥१॥

दधि-बेचन ३१४

मोर मुकुट की देख छटा मैं होगई सजनी लतापताँ ॥०॥
मैं दधि वेचन जाती वृन्दावन। मारग रोक्यो नाहि हटाँ ॥१॥
रपट झपट मेरी बैंया मरोरी। ढोळ दियो मेरो दही-मठाँ ॥२॥
बिसर गई मेरी तनकी सुध-बुध। देख गगन की और छटाँ ॥३॥
खाय मुरछा मैं पडी धरणि पर। बिखर गया मेरा केश लटाँ॥४॥
सखियाँ सुनेगी मेरी हँसी करेगी। पुरुष सुने मेरो मान घटाँ॥५॥
जो सुन पावे पीहरिया में। माय बाप को लगे बटाँ ॥६॥
सासु सुनेगी मेरी रार करेगी। नणदल बोले बोल खटाँ ॥७॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। राधे कृष्ण ही रटाँ रटाँ ॥८॥

प्रेम ३१५ (गुज०)

विट्ठल रहोरे वशी, मारे मन विट्ठल ॥०॥
चितडांमां चटकावी मुजने, सुध न रही रे कशी ॥१॥
ओशडीआं अळगां करी मुको, शीदनी पाओ छो (घ) गशी ॥२॥
विन्द्रावन की कुंज गलन में, गोपी सन्मुख रही हशी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सघळां दुःख गया वशी ॥४॥

दधि-बेचन ३१६ (गुज०)

कांनुडे ते गेलडा कीधलां जी ॥०॥
महीनी मटुकी लीधी वाले धुकी, गोरश हमारडां पीधा जी ॥१॥
माये बापनी माया मुकावी, पोताना रे हरिये कीधांजी ॥२॥
वन्द्रावन की कुंज गलन में, कारज हमारा सीध्यांजी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तन मन हमारां लीधांजी ॥४॥

प्रेम ३१७ (गुज०)

कर गयो कर गयो कर गयो।
मेरो मनवो उदासी कर गयो ॥०॥

कनक कचोलांमां केसर छोळ्यां ।
गोपी केसरी तिलक बनावे ॥३॥
सिर पर कलस कलस पर झारी ।
गोपी जुमना ना जळ भरि लावे ॥४॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
तारा चरण कमळ बलिहारी ॥५॥

प्रेमालाप ३२० (गुज०)

केसरीयो परणायरे । माडी मारे ए वर रूडो, केसरीयो
परणाय० ॥०॥
वृंदावन ने मारग जातां । हींडे छे मोडा मोड रे ॥१॥
मोर मुगट ने काने कुंडळ । अणियाळा लोचन रे ॥२॥
पाये पीयुजी मोजडी पहेरे । खीटलीआळा केश रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण । शामळीओ वर रूडो रे ॥४॥

उद्धव-लीला ३२१

उद्धवजी महाराज सुणो तमे उद्धवजी ॥०॥
कपटी मित्र सुं प्रीत न कीजे छोड चले अधरात ॥१॥
वृन्दावन में रास रच्यो है । कोई आवत कोई जात ॥२॥
वृंदावन की कुंज गलन में । छीन छीन दधि खात ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । प्रीत करी पस्तात ॥४॥

विरह ३२२ (गुज०)

जाय छे जायछे जायछे रे माहारा वालो मथुरां जाय छे ॥०॥
वाहाला विजोगे गोपी व्याकुल फरे छे रे ।
सूनां मंदिर खावा धाय छे रे ॥१॥
हाथमां लाकडियां खभे कामरियां ।
मारो वालो गोवाळीयो थाय छेरे ॥१॥

कृष्णः—काचा सूतरने आगडे रे हिंचको बंधाव्य (बंधावो)
तेरे हिंचके अमे हिंचकीए करीए धीज ने पतीज···हार रे ॥५॥
राधाः—काचारे सूतरनो आगडोरे परभु तमेरे बनाव्यो
बनाववारा बावन वीर······हार रे ॥६॥
पाशेर अन्न रे जेने खावा जोईए
वजन मां कशुं न देखाय···हार रे ॥७॥
रहीदासनी चेली मीराँ बोलियां राखो चरणो मां वास
राखो चरणोनी मांहरे······हार रे ॥८॥

प्रेम ३२५ (गुज०)

लटकाळो रे गिरवरधारी, मने मारी छे प्रेम कटारी रे ॥०॥
जमुनाजी नी वाटे मळ्यो' तो, रूप रसिक छबी न्यारी रे ॥१॥
वंद्रावन नी वाटे रे जातां, सुंदर मुख पर जाउं वारी रे ॥२॥
सान करी समजावी शामळीए, गणी छे प्राण थकी प्यारी रे ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ बलिहारी रे ॥४॥

प्रेम ३२६

हांरे, मेरी सलाम कहीए, विंद्राबन छेल छबीला ठाकोर कुं ॥०॥
सब गोकुळमें गोवालन मंडळ, राधा मिशरी साकेर कुं ॥१॥
जीवते रहीओने चोखां करीओ, निभाव करीयो आखर कुं ॥२॥
तुम प्यारे की मोहोबत सुन कर इशक लग्यो मेरे चाकर कुं ॥३॥
खुब बनायो रे मे खुब बनो है, क्या करूं गुण-सागर कुं ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, निहाल लियो मुज नागर कुं ॥५॥

दान-लीला ३२७ (गुज०)

हुं तो वात कहुं उभां ते रहोनी अलबेली,
नथी जबाब देतां मन मेली ॥० ॥

तत्व हतुं ते ताणी लीधुं, छाश मूकी भरवा ॥४॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित हरवा॥५॥

चीरहरन ३३१

सखी आये कारतक मास, परब हय भारी ।
घर घर सें करी शणगार, निकसी व्रजनारी ॥०॥
सखी चीर घाट में आई, सखीआं सारी ।
क्या जानुं किधर से आये कृष्ण मोरारी ॥१॥
सखी ! ले गयो अपना चीर, चला भय छांडी ।
जलदी से दौड कर बैठे, कदम की दांडी ॥२॥
तुम दियो हमारा चीर दया नहीं आती ।
शरदी सें मरूं महाराज, न मेरी जाती ॥३॥
कृष्ण कहे कहां जाओ, पडी मेरे वस में ।
तुम ले जाओ अपना चीर, समज आपस में ॥४॥
सखी परनारी के अंग, मोहन मत लागे ।
में जाई पोकारूं, कंसराय के आगे ॥५॥
सखी महिपासुर कों मार, आंख भई हे राती ।
तें कंसराय को जोर, क्युंहीं बतलाती ॥६॥
सखी ! वन में रचियो रास, रंग बहु छायो ।
कहे मीराँ दरशन आये, प्रेम पद पायो ॥७॥

गोपी-भाव ३३२ (गुज०)

साचुं बोलोने मारा श्याम रे मोरली वालाजी ॥०॥
कई रे नारीए तमने भोळव्या, ओली कोण मळी धुतारी रे ॥१॥
राधा राणीए अमने भोळव्या, एली कुबजा मळी रे धुतारी रे ॥२॥

वनरा रे वनमां का'ने, रास रचाव्यो ।
सोळसें गोपीमां खेले का'न हरि रे ॥२॥
जमना ने तीरे व्हालो, गौधन चारे ।
मोरली बजावे पेलो, का'न हरि रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे छे प्रभु गिरधर नागर ।
कानुडानी मोरली में तों बहुते सुणी रे ॥४॥

उद्धव-लीला ३३६ (गुज०)

कवन गुन्हे परहरी रे उधो, परम सनेही प्यारे प्रीतमे ॥०॥
इण जुमना के घाट पर, उधो ! मोहन मिलता आय ।
विण जमुना को नीर, उधो ! नैण न देख्यो जाय ॥१॥
ऊंचा मिंदर शाम का, उधो ! फूलडां सेज बिछाय ।
सो मिंदर खाली भया, उधो ! देख्या ही न सोहाय ॥२॥
भंवर तजी उधो ! केतकी, कली रही कुमलाय ।
सो गत तो म्हांरी भई उधो ! विधि सुं कछु न वसाय ॥३॥
सुन ऊधो म्हांरी विनति रे वा'ला, माधव कहियो जाय ।
मीराँ व्याकुल बिरहनी, वेग दरस द्यो आय ॥४॥

प्रेम-संस्मरण ३३७ (गुज०)

का'नजी विना केम चाले माडी ! मारे कानजी विना केम चाले ।०।
गौ हेरावा हुं रे गई'ती, करमदां वीणी वीणी आले ॥१॥
काचां पाकां ने मीठां मधुरां, वीणी वीणी मुखमां घाले ॥२॥
गोकुलथी वृंदावन सीधारयां, जई मथुरा मां म्हाले ॥३॥
मीरांबाई कहे प्रभु गिरधर नागर, बोलडा हृदे मां साले ॥४॥

कुब्जा-भाव ३३८ (गुज०)

कुबजा नो शिखाव्यो मुने लूंटे, तमे लूंटो छो व्रजराज आज ॥०॥
पचरंगी पाघ केशरिया वाघा, कमर कसी ना छूटे रे ॥१॥

राधा-गोपी ३४१ (गुज०)

चाल तो वृंदावन जईये राधे प्यारी, चाल तो वृंदावन जईये ॥०॥
जल जमुना को शीतल पाणी, चंदन लेकर घसिये ॥१॥
वृंदारे वन की कुंज गलन में, ताली लेकर हसिये ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मोरली बजावी पेले रसिये ॥३॥

दर्शनानंद ३४२ (गुज०)

छानो मानो आवे कहान, पाछलीज राते रे ॥०॥
वेणुं मांहे भेरव गायो, आवेने प्रभाते रे ॥१॥
सम खाईने सूती हती, नहीं बोलुं हरि साथे रे।
द्वार उघाडी पाये लागुं, मोरली केरा नादे रे ॥२॥
एवुं सुख में कदी नव दीठुं, नंदजी ने राजे रे।
दास मीराँ नो स्वामी मळीओ, आहिरडांनी जाते रे ॥३॥

प्रेम-ज्ञान ३४३ (गुज०)

गिरधारी रे, अमने गेलां करी मत जासो रे गिरधारी ॥०॥
सेवा बहु नामी रे अमने, माया लगाडी मत जासो रे ॥१॥
तमारे हमारे प्रीतडी वा'लीडा, तमारे हमारे नेडो लाग्यो रे ॥२॥
त्रागडो होय तो तोडीए वा'लीडा, प्रीतु तोडी केम जाय रे ॥३॥
गोकुळ गामनी गोवालणी, मथुरां नगरमां घेलां किधां रे ॥४॥
कूवो होय तो गाळीए वा'लीडा, समदर गाळ्या केम जाय रे ॥५॥
खेतर होय तो खेडीए वा'लीडा, डुंगर खेड्या केम जाय रे ॥६॥
पोपट होय तो पाळीए वा'लीडा, काग पाळ्या नव जाय रे ॥७॥
ऊंडा जळनी माछली वा'लीडा, पलकमां निकल गई वारी रे ॥८॥
वृंदावन मां रास रच्यो छे वा'लीडा, मोरली लागे पियारी रे ॥९॥
बाई मीराँ कहे पिया गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी रे ॥१०॥

मेरे श्रवण वनक पडी, वाजत है घुघरो ।
आधी रेन अंधियारी, वरसत है वादरो ॥१॥
श्री गोकुल में भीड भई, मिलत नही डगरो ।
एक आवत विदायत होत, एक करत झगरो ॥२॥
प्रात समे कहे मीराँ, चल न सके पगरो ।
पुरण प्यारो प्राण-आधारो, जीवननन्द नन्द रो ॥३॥

गोपी-भाव ३४८ (गुज०)

जावो मां जावो मां रे, मारा वा'ला मथुरा मां ॥०॥
माधोंरी पुरी नो लोक ठगारो, विसवासै नै तुम ध्यावो मां ॥१॥
उले पाये गंगा ने पेलै पाये जमना, वीच में वांसुरी वजाव मां ॥२॥
कंस राजा नी कुवजा दासी, जूठडा सम शिद खाव मां ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, अमृत पाव विप पाव मां ॥४॥

गोपी-भाव ३४९ (गुज०)

तुं तो आवने सहियर, मारी गावलडी दोवा,
मीसे मीसे मोहनजीनुं मुखलडुं जोवा ॥०॥
सांज सवारे मध्यान्ह काळे, धारा नव चूके ।
कामधेनु नुं दुभणुं कोई, काळे ना खूटे ॥१॥
दुभणा मां मोज घणेरी, जाणे ते माणे ।
वाखडलीना दूध मां तो, जमे ते जाणे ॥२॥
जेने संपत शामळीयानी, तेने शानी खोट ।
वाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मोटी थारी ओथ ॥३॥

मयुर-प्रशंसा ३५०

देखोरी माई, ए वडभागी मोर ॥०॥
उंचे सिखर पर घमड करत है, वैठा करत किलौर ॥१॥

कहाना, आजे तमने दाण नहीं दऊं,

तारो जुलम ते हुं केम सहुं रे ॥१॥

आवडो जुलम शोरे करे छे, मारी पूंठे पूंठे फरे छे रे ॥२॥

लाख टकानुं गोरस मारूं, वेपार करीने खोट केम सहुं रे ॥३॥

पाधरे मारग जाओ पातळीआ, झाझुं करशो कंस ने कहुं रे ।४।

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमळ चित्त हुं रहुं रे ॥५।

उद्धव-लीला ३५४

प्रीति तूही नही जानी रे, उद्धवजी ॥०॥

राधा अरू व्रज वनिता छांडी, कुबजा की पटरानी ॥१॥

पहिली प्रीत करी हरि हमसुं, अब तो जाप जापे ब्रेहानी ॥२॥

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल लीपटानी ॥३॥

दर्शनानन्द ३५५

निशदिन लाग्यो रे तेरो ध्यान गोपाल ॥०॥

वंसी की धूनि सुनी भई बावरी, सर्वस त्यागो रे ॥१॥

वृंदावन की कुंज गलन में, आनंद जाग्यो रे ॥२॥

मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, ए भव भय हवे भाग्यो रे ॥३॥

निश्चय ३५६ (गुज०)

मथुरा मां जावाने हरि नहिं दऊं जो,

मने मुकीने कां तमे जाओ छो ने ॥०॥

मने तम विना घडी गांठे नहिं जो ।

जळ विना तलपे छे जेम माछली जो ॥१॥

का'ने गोकुळ मां कपट घणां कीधलां जो ।

गोपीनां गोरस चोरी ने पीधलां जो ॥२॥

घणा लोक कहे छे कानुडो कपटी छे जो ।

एना हाथमां कपटनी चपटी छे जो ॥३॥

प्रेम ३६० (गुज०)

मागेलो मागेलो देजो, राधानो कानुडो मागेलो देजो ॥०॥

आजनी रजनी अमे रंग भरे रमीए वाहाला ।
प्रभाते उठीने पाछा लेजो ॥१॥

हाथी ने घोडा वळी माल खजाना ।
वेल तो सजुती मारी लेजो ॥२॥

कल्लां ने कांबी वळी अणवट विछुवा ।
हार तो हैया नो मारो लेजो ॥३॥

चुन चुन कलिये वा'ला सेजतो बिछावु ं ।
सेज पर पावल धरजो ॥४॥

बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल चित रहेजो ॥५॥

उपालम्भ (कुब्जा-भाव) ३६१

क्यूं कर म्हे दिन काटाँ (नाथजी) थे तो म्हाँसूं अंतर राखौ (नाथजी)
राखौ कपटी आँटाँ ॥०॥

कुबज्या दासी कंसराइ की, फिरती कपड़ा फाटाँ ।
वाकूँ तो पटराणी कीन्ही, पहरै रेसम पाटाँ ॥१॥
बाजूबंद मूँदड़ी अँगुली, नख सिख गहणौं साटाँ ।
पहर कूबड़ी न्हावण चाली, जल जमुना कै घाटाँ ॥२॥
धाँन न भावै नींद न आवै, चिंता लगी निराटाँ ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, देख देख हियो फाटाँ ॥३॥

राधा-भाव ३६२

भली जु बनी वृषभाननंदनी प्रात समे रणजीत आवे ॥०॥
मुख पर स्वेद अलक लर छूटी मधुरी चालि गजगति लजावे ॥१॥

बिन्द्रावन में धेनु चरावे खेलत गेंद पड्यों जमुना में ।
पैठ गयो पातालाँ माँही नागण मलगी कारी ।
नागण उभी अरज करे छे ।
गोविंद हरी की या शोभा, काली नागज नाथ कहवाये ॥४॥
कारे आंगन कारे मोहन, कालींदी के तीराँ प्यारो ।
कालो नागज नाथ्यो उसके फण पर नृत्य करत है ।
गोविंद हरी की या शोभा, काली नागज नाथ कहवाये ॥५॥
धोली सेली शाल दुशाला, धोली कोर बनी दुपटा की ।
दोनों हाथ कडां बिच सोहे ।
गोविंद हरी की या शोभा, मीराँ उभी मंगल गावे ॥६॥

रास-रहस्य ३६५

रास रच्यो बंसीवट जमुना तादिन कीनो कोलरे ॥०॥
पूरब जन्म की मैं हूँ गोपिका अधबिच पड़ गयो झोल रे ॥१॥
तेरे कारन सब जग त्यागयो अब मोहें करसों लोल रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चेरी भई बिन मोल रे ॥२॥

कुब्जा-भाव ३६६

गिरधर मीठा लागे थारा बोल ॥०॥
बालपने अमां भेला रमता, कदही न पायो तोल ॥१॥
एक संदेसो कहियो सजनी, कुबजा के संग मत डोल ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, कैसे बजावुं ढोल ॥३॥

उत्कठा ३६७

किसविध देखण जाऊ ए माय ।
किस विध निरखण जाऊ ए माय० ॥०॥

सोने की गगरी रूपला ईंढोणी, भर गई राधे प्यारी ॥२॥
जल जमना की चीकनो मट्डी, लस गई राधे प्यारी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, नजर कारे की कारी ॥४॥

उपालम्भ ३७२

कहाँ वसीयां मोहन रातरडी ॥०॥
कोण तमारो नाम कहीजे, कोण तमारी जातरडी ॥१॥
भक्तवत्सल मेरा नाम कहीजे, जादु अमारी जातरडी ॥२॥
का सतभामा के मेहेल पधारे के कुबजा से लागे वातरडी ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर आय मिले परभातड़ली ॥४॥

नटखटपन ३७३

जसोदा मैया तेरो लड़को नीको ॥०॥
बछवा छुडाय मोरी गउवाँ चुखाय दीनी ओर उतारयो महीको॥१॥
दूध दही की मथनिया फोरी माँट फोरयो गह छींको ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि विन सब जग फीको ॥२॥

प्रेम ३७४

काना कांकड़ी मत मार श्याम मारी फूटे गागरी ॥०॥
आंधा जो डोले बैहरा जो डोले हाथों में लाकरड़ी ।
रस्तो वतावन में गई रे प्रभु छुट गई लाकरड़ी ॥१॥
एक समय में वन में निकली संग में साथरली ।
साथरलो तो विछुर गई रे प्रभू रह गई एकरली ॥२॥
एक समय में सेजां में सूती सूती एकरली ।
कृष्ण मुरारी बाँह मरोरी खुल गई आँखरली ॥३॥
माता जसोदा मयो बिलोवे उवी एकरली ।
माखन मिश्री कानो खाग्यो ढुल गई छाछरली ॥४॥

मथुराजी में जन्म लियो है जशोदाजी गोद खिलायो रे ।
काली दह में नाग को नाथ्यो फण पर नृत्य करायो रे ॥३॥
डांवा नख पर गिरवर धारयो इन्द्र को गर्व मिटायो रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चित लायो रे ॥४॥

राधा-भाव ३७८ (गुज०)

राधेजी ! थांरे पाछे कई जादु छे, जादु छे कई टोनाए ॥०॥
थें जवरी गोरी पुजीए थें जवरी गौरी पुजीए,
थारे वस गयो प्रभुजीए ॥१॥
थें कस्या देव ने साध्योए, विठल वर बस कर बांध्योए ॥२॥
म्हारे वांरे घर वांने नथी गमतो, थांरे पुठल पुठल फिरतोए ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित धरतो ॥४॥

गोर जन सब वरजि को उपाय कीजे ।
मीरां प्रभु गिरीधर बिनु कोहो किसे करी जीजे ।।४।।

विशेषः—यह पद हृदय में व्रजरस की प्रेम तरङ्गों के उठते समय मीरांबाई ने गाया हो ऐसा प्रतीत होता है । भक्तराज उद्धव जी ने भी गोपियों के विलक्षण प्रेम का अनुभव कर इसी प्रकार की अभिलाषायें व्यक्त की हैं:—

आसामहो चरणरेणु जुषा महं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजन मार्यपथं च हित्वा,
भेजु मुकुन्द पदवीं श्रुतिभि र्विमृग्याम् ।।

श्री मद्भागवत १०।४७।३१

इन महाभागा गोपियों ने कठिनता से छोड़े जा सकने वाले बन्धुओं और लौकिक व्यवहार मार्ग को त्याग कर श्रुति जिसकी खोज करती है, उस मुकुन्द पदवी का अनुसरण किया है । अहो ! क्या ही उत्तम हो, यदि मैं आगामी जन्म में इस वृन्दावन की लता, औषधी या झाड़ियों में से कोई होऊँ, जिन पर इन गोपियों की चरण धूलि पड़ती हो।

४-विशेषः—महात्मा चरणदास जी की शिष्या सहजो बाई भी इसी भाव में अपना स्वर मिलाती है—:

मुकुट लटक अटकी मनमाहीं ।
नृत्यत नटवर मदन मनोहर कुंडल झलक पलक बिथुराई ।।१।।

६—पाठान्तरः—

प्रथम पंक्ति 'सांवरिया' के स्थान पर 'हरिया' ।

विशेषः—भगवान के अनन्त ऐश्वर्य की ओर लक्ष्य करके सन्त सहजो बाई भी इसी भाव में पुकार उठती है:—

२२—जीवण जोवाने=प्यारे को देखने को। महीनी.........लई=दही की मटकियाँ शिर पर लेकर। सहु=सब। तेणे.............शमावशेरे=वह सब दुःख मिटा देगा। मावजी=प्रियतम।

२३—हेमनी=स्वर्ण की। काचे ते तांतणे=कच्चे धागे से। जेम खेंचे.........तेमनी रे=जिधर खींचेंगे उधर उधर की।

पाठान्तरः—

प्रेमनी प्रेमनी० इस कडी के आगे

हैडा मां मूंने हरि वर पां लारे

जांउ छुं जेमनी तेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी रे ॥०॥
जल भरवामां गरवा गमाया, माथे गागर रही हेमनी रे ॥१॥
बाजुबंद गोडा बरखा बिराजे, हाथे वींटी छे हेमनी रे ॥२॥
सांकडी शेरी मां वहालोजी हु जाई, खबर पूछुं छुं खेमनी रे॥३॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति करूं छुं नित तेमनी रे ॥४॥

२५—तारे.....शुं छे=तुम्हारे और मेरे क्या है। आगल......घेरे=आगे आकर क्यों घेरते हो। पालव............मेरे=आकर पल्ला क्यों पकड़ते हो। गोपीओ ने.........लडावे=गोपियों को लाड़ लडाते हैं।

२६—आठ.........हरि ने=आठ दिन की अवधि कह कर गये थे श्यामसुन्दर को छः महीने हो गये।

२७—ताली=स्नेह, प्रेम।

३०—आंबो मोर्यो=आम को बौर आया। मारे.........वेड़े=मेरे आंगन में आम को फल आये हैं देखकर कन्हैया ने आकर उन्हें गिरा-लिया-मेरे हृदय के प्रेमांकुरों को फले फूले देखकर कन्हैया ने अपना कर मेरा जीवन सफल किया। पड्यो छे.........केड़े=मेरे पीछे लगा है।

३१—खोटी थाऊँ तो=देर होने पर। वढे=कलह करती है।

में जलते ही बीती, तब कहीं वर्षा ऋतु की प्राप्ति पर श्यामसुन्दर पधारे और मेरे हृदय को हरा भरा कर मुझे आनन्द में सराबोर कर दिया-मेरे मरु-भूवत् संतप्त हृदय प्रदेश पर आनन्द की झड़ी लगा दी।

सारो=सहारा। परम·········कारो=जिस प्रकार काले नाग का विष रग रग में व्याप्त होता है उसी प्रकार सांवरे की मोहनी का प्रभाव रोम रोम में छा गया है। मोरचन्दो·········डारो=श्यामसुन्दर हाथ में मोरछल लेकर झाड़ फूंक करने लगे।

पाठान्तर:—

नहीं कोई वेद न वारो। विण आया विष उतरे ॥०॥
लहर आई वृंद व्याणी। जैसे डस गयो कारो॥
जावो सखी तुम वेद लावो। एक नन्द को प्यारो॥१॥
मोर पंख हरि हाथ लीनो। देवे कृष्ण झारो॥
मीराँ ने श्री कृष्ण मीलीया। विष कीदो न्यारो॥

४६—बल जाऊँ=बलिजाऊँ। होडे=ओढ़े, ओढ़ते हैं। कहान=कान्ह। गलनमें=गलि में। घेर=घर। गोवालन=ग्वालिन। गोवाल=ग्वाल। हजु=अभी तक। जंजीर=लड़, लड़ी। त्रट = तट। भींते=भीत में। बेर बेर=वार वार। चणाऊं=चुनावूं। ख्याल=पीछे।

५०—विशेष:—जिस प्रेम की भंग को पीकर श्यामसुन्दर की परम आराधिका और अनन्य प्रेयसी मीरांबाई अपनी ही मस्ती में छकी फिरती हैं, उस भंग की उन्होंने स्वानुभव से इस पद में क्या ही मार्मिक सुन्दर और भाव पूर्ण व्याख्या की है:—

भावार्थ:—गढ·········मंगायो=व्रज लीलाओं का समस्त प्रेम वैभव और भावोत्कर्ष एक मात्र श्री राधारानी पर ही अवलम्बित है। एक प्रकार यों कहा जा सकता है कि व्रज रस की भित्ती ही एकमात्र श्री वृषभानु किशोरी जी हैं। श्री राधा के विना श्याम सुन्दर का व्रज-जीवन ही नीरस व फीका पड़ जायगा। क्योंकि श्री राधाजी का प्राकट्य बरसाने में हुआ इसलिये समस्त व्रजरस का मूल स्रोत बरसाने में ही है। जमुना·····बोवाईं=व्रज लीलाओं में यमुना का बहुत अधिक

मन की जो कुंडी राम जी तन का यह घोटा,
　　　　पण सखीयां म्हारी सुरता की छवियां लाई ॥३॥

मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर,
　　　　पण सखीयां म्हारी रोम रोम छवि छाई ॥४॥

५३—झाझूँ = अधिक। थोड़े........जणायरे = थोड़े में ही प्रेम समझ लिया जाता है।

५५—छींकतड़ा = छींक होते हुये।

५७—महीड़ो = दही। सेवरो = सेहरा, पुष्पादि विनिर्मित मस्तक पर धारण करने का अलङ्कार विशेष।

विशेष:—इस पद की और भी निम्न नई कड़ियाँ पाई जाती हैं:—

फाडूंगी चीर करूंगी भगवा
　　　　जोगण होय घर जाऊँ मोरी माय ॥

क्रीट मुकुट कानों बिच कुंडल
　　　　सोनण होय घर जाऊँ मोरी माय ॥

मीरां बाई के हरि गिरधर नागर
　　　　हरि चरणा गुण गाऊँ मोरी माय ॥

५८—वयणागी = अनुरागिनी, वैरागिनी। ताणी ने मार्‌यां = खींचकर मारे। बाळी ने = जलाकर। कानुड़े........खाख = श्यामसुन्दर ने हमें विरहाग्नि में पूर्ण रूप से जला दिया।

५९—नाखेल = डाली। नाखे फेरी = घूमता फिरता है।

६३—तेड्यां = बुलाया। शाख पुरावे = साक्षी देती है, छांट्या चोळी = बोलकर उछाला।

६४—झाला = गुप्त संकेत।

६६—श्याम तमाल = वृक्ष विशेष। ग्वाल.....मण्डल =

श्याम घटा सम गात निरखि के कूकोंगी चहुँ ओर । (१)
मोर मुकुट माथे के काजें दैहों पंखा टोर । (२)

६१—विशेषः—ये दो चरण अधिक पाये जाते हैं:—

एक अचम्भों हमको आवे कुब्जा बड़ी श्याम छोटो ॥१॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर मत हो हमसे ओटो ॥२॥

६५—पाठान्तरः—

१—चरण में—बीच लिये । २—चरण में—विधना आप सँवारी । ३—चरण में—हौं हारी ।

६६—विशेषः—भक्तराज सूरदास जी का एक पद जिसकी टेर है "उधो हम वैरागिन श्याम की" तथा सन्त निर्भयराम जी का भी "उधोजी मैं वैरागिन हरकी" टेर वाला पद है । इन दोनों पदों में मीरांबाई के इस पद के अनुसार भाव साम्य व्यक्त है ।

१००—सुसगया........गार=सरवर के सूख जाने से अब केवल कीचड़ ही रह गया इसलिये वहाँ से हंस उड़ गया अर्थात् श्याम सुंदर के पधारने से गोपियाँ निराधार और अनाथिनी हो गईं और उनकी प्रसन्नता अदृष्ट हो गई । कोई दिन......नीहार=किसी दिन मोती चुगने वाले हंस अब हिमकण--तुषार विन्दुओं पर ही निर्भर रहते हैं । अमृत........जाय=सर्वत्र श्याम मयी दृष्टि वाली अनन्य प्रेयसी गोपियों को छोड़ कर उस कुब्जा दासी से प्रेम किया । यमुना युक्त सुहावने व्रज प्रदेश को छोड़ कर द्वारिका के खारे जलनिधि के आश्रय में जा बसे ।

१०५—आड़ी-भीतड़ली=आड़ में दीवार आगई, कृष्ण और गोपियों के बीच में कुब्जा रूपी दीवार खड़ी हो गई ।

१०८—चोलना=चोला, साधुओं के पहनने का वस्त्र विशेष । घर घर........जागै=भंवर के समान स्थान स्थान पर प्रेम रस चखता है ।

पाट पीतांबर हमणां तु प्हेरे, आगे ओढवा न ती धावरी रे।।२।।
मेडी ने म्हेल तारे हमणां वन्या छे, आगे ता छाई न ती छापरी-रे ।३।
बाई मीरां कहे प्रभु गिरधर ना गुण, शरणे राखो तों करूं चाकरी ।४।

११६—विशेषः—इसी भाव में बहते हुये महात्मा सूरदासजी अपने एक पद में किसी गोपी द्वारा गवाते हैः—
"उधोजी मैंने सब कारे अजमाये" । मीरांबाई के उक्त पद की ३ री कड़ी के भावानुसार वह गोपी उद्धव जी से सुनाती है "कारे भँवरा मद के लोभी कली देखि मंडराये, जब यह खिलकर गिरी धरनी पर फेर दरस नहीं पाये" और जैसा कि मीरांबाई ने "कारे को विश्वास न कीजै" कह कर श्याम वर्ण के प्रति कटाक्ष रूप से अपना अरुचि का जो भाव व्यक्त किया है, अपने पद के अन्त में सूरदासजी भी इसी प्रकार गा उठते हैं "कारे की परतीति न कीजे" ।

१२६—पाठान्तरः—

मैया ले थारी लकरी, ले थांरी कांवरी
लेने लकडी रे लेने तुरी कामली
गायो तो चराववा नहिं जाउं मावलडी ।।०।।
अंतमें–मीराँ··················नागर
चरण कमल चित राख लडी रे ।।

१२७—कोइ क दिनां·······भरगार=किन्हीं दिनों जो हंस मोती चुगते थे आज उन्हें जुवार खाने को बाध्य होना पड़ रहा है, और जो हंस किन्हीं दिनों सागर के अनन्त जल में विहार करते थे उन्हें ही अब नदी तट पर आना पड़ा है जहाँ कि जल के सूख जाने से केवल कादौं—कीच ही शेष रह पाया है अर्थात् किन्हीं दिनों श्याम सुन्दर की मधुर लीलाओं का आनन्द लेने वाली हम गोपियों को, आज उनके वियोग में तड़प तड़प कर रहना पड़ रहा है ।

साथ-साथ कुब्जा से मन लगने की श्याम सुन्दर की बातें सुनकर ही गोपियाँ हताश होकर मृतवत् सी होगईं।

पाठान्तरः—

कुबजा ने जादू डारो, जेणे मोह्यो श्याम हमारो रे ॥०॥
निर्मल नीर जमुना को छांड्यो (नाह्यो)
जाय पिवे जल खारो रे (जई ने पीओ जल खारोरे) ॥२॥

ये तीन चरण नये पाये जाते हैं।

जादु की पूड़ियां भर भर मारे, क्या करे वद विचारो रे ॥१॥
मोर मुकुट पीतांवर शोभे, जीवन प्राण हमारो रे ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
आखर श्याम हमारो रे (विरह समुन्दर सारो रे) ॥३॥

१५०—विशेषः—किसी भी परिस्थिति में अपने चित्त को संयत कर संतोप वृत्ति से सब सहते हुये संसार में निद्वन्द्व विचरना ही साधु सन्तों का प्रधान लक्षण है। इसी को लक्ष्य करके मीरां बाई के इस पद भावानुसार भक्त कविवर सूरदास जी ने भी यही गाया है—

"जैसे राखहु वैसे ही रहौं।
कबहुक भोजन लहौं कृपानिधी, कबहू भूख सहौं।
कबहुक चढ़ौं तुरङ्ग महागज, कबहुक भार वहौं॥"

१५३—हमरो........दीनो=हमारा सख उन्हें दुःख रूप प्रतीत हुआ और कुबजा को जाकर सुखी किया।

१५५—विशेषः—श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध-रास पञ्चाध्यायी में, श्री कृष्ण भगवान की वंशी ध्वनि को सुनकर पगली सी होकर दौड़ी जाने वाली गोपियों का जो वर्णन है उसी भाव को लेकर मीरां बाई ने गोपियों की मनोदशा का इस पद में क्या ही सुन्दर व मार्मिक चित्रण किया है।

चाउर चबैया, कहूँ रहे हैं सुदामा पास।
विप को अहारी कहाँ, पूतना के घर में।
सिन्धु-सुता आनि मिली तर्क सों तर्क करी।
गिरिजा मुसिक्यात जात भारा लिये कर में।

१७८—मैं बरजु·········दुर्लभ रे=जिन दिनों मेरे बरजने पर भी वे नहीं मानते थे और अपनी मनमानी नटखट पन भरी लीला जहाँ किया करते थे वही आँगन आज सूना-वैरी सा लग रहा है। तथा उनकी चञ्चलता को लेकर किये गये गोपियों के उलाहने सुन सुन कर माता जसोदा बार बार खीजती थी और सङ्कट के प्रसङ्गों में जिन्होंने अनेकों बार व्रज की रक्षा की थी वे दिन अब दुर्लभ हो गये। कृष्ण·········जान्यो रे=गोपियों को चिरकाल पर्यन्त त्यागने जैसे श्याम सुन्दर कठोर–निर्मोही हो जायँगे ऐसा उस समय हमने नहीं जाना था। जब·········वैरी रे=तभी से पराये वैरी से हो गये हैं।

१८०—अकन कुंवारी=अखण्ड कुँआरी।

१८२—राज·········थे ही=आपके निर्मोही पने की प्रतीति अब हमें हो गई, तुम्हारे समान निर्मोही तो तुम ही हो। घणा·········तोह=तुम्हें प्रेम के बहुत गहरे रँग से रँग दूंगी।

१८८—जोता मां·········ठरी=दर्शन करते ही दृष्टि स्थिर हो गई।

१९१—चितवन·········सुघाट=मदन मोहन श्याम सुन्दर के नयन बाण कलेजे में घाव कर गये। मथुरा में···········हाट=हम गोपियों के प्रेम को छोड़कर श्याम सुन्दर मथुरा में जाकर उस कुब्जा पर रीझ गये जो कि कंस की एक तुच्छ दासी मात्र है और अपने व्यवसाय को लेकर जिसे कई मनुष्यों के सम्पर्क में आना पड़ता है। हम व्रज गोपियों के प्रेम को तोड़ कर श्याम सुन्दर ने मथुरा में जाकर कुब्जा से प्रेम बाँधा यह उनकी कैसी अनोखी रीत! प्रेम भी क्या कोई महाजन की हाट के जैसे भाव-ताल-लेन देन की वस्तु है।

१९५—आवत·····राती=श्याम सुन्दर की प्रतीक्षा में इधर उधर

जप करवा ने ब्राह्मण सरज्या, तप करवा सन्यासी ।
भजन करवा संत सरज्या, वृन्दावन ना वासी ॥
चाकर रहेशुं ने बाग बनावशुं, नीत्य नीत्य सेवा करशुं ।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, राधे गोविन्द गाशुं ॥

विशेषः—निम्न तीन चरण अधिक पाये जाते हैं:—

चौकी देऊँगी झारी देऊँगी, गोबर उठाऊँगी बासी ।
साँझ सवेरे जल भरि लाऊँ, सब सन्तन की दासी ॥१॥
प्रेम प्रीत से ध्यान लगाया, राम कृष्ण लौ लाग्यां ।
सुरतमूरत जागीरी पाया, निरभय पटा लिखाया ॥२॥
राठोडा घेर दीकरी ने, राणा जी घेर नार ।
शामलीआ तारा कारणे में, छोड दीधो संसार ॥३॥

२०४—इन्द्र के.......बागाँ आय=उद्धव जी द्वारा श्याम सुन्दर का सन्देश श्रवण करके उपस्थित गोपियों में से हताश होने के कारण कइयों के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई, कइयों के मुख मण्डल मलीन हो गये और कई गोपियों के हृदय में निराशात्मक भावों की बाढ़ सी आगई। इस प्रकार का दृश्य उपस्थित हो गया मानो घनघोर घटाओं से व्याप्त आकाश में बिजलियाँ कड़क रही हों और उपवन में (जहाँ उद्धवजी के समीप गोपियाँ बैठी हुई थीं) मूसलाधार वर्षा हो रही हो।

विशेषः—भक्त सूरदासजी ने भी यही गाया है—

श्याम का संदेशा उधो पाती लेके आयो रे ।
पाती तो उठाय लीनी छाती सों लगाय लीनी ।
घूँघट की ओट देके उधो समझायो रे ॥

मीरांबाई के इस पद की चौथी कड़ी का भाव भी सूरदासजी के उपरोक्त पद की :—

२१५—पांपणं·······कलगी तोरे=कलगी युक्त पाग भौंहों तक वँधी हुई।

पाठान्तरः—

चाल सखी तने श्याम देखाडुं।
रूप संभारं गुण संभारं, मन मारा ने हरतो जी।
पाघ कलंगी तोरो फुलनो, मोर मुकट सिर धरतो जी।

२१६—दाझे वळे=ईर्ष्या करती है। राड़ करे=हठ झगड़ा करता है।

२१७—कामण गारो·······मेले=अपने मन माने ढँग से कामण करने वाला। आहीरडां=गुजरियाँ, गोपियाँ। सघलां=सब। मेलो=कपटी।

२१८—चन्दन·······दीठड़ा रे=तिलक किये व पुष्प माला पहने हुए दुपट्टा वाले श्याम सुन्दर को बात करते हुए देखा।

२२३—गोती=ढूँढ कर। भळावी'ती=संभलाई थी। नो'ती=नहीं थी। आंखे·······होतीरे=काली अंजन लगी सी आँखों और सुन्दर मुखवाली, देखते ही चित्त में समा जाय ऐसी वह गौ थी। सोना शिगड़ीओ=स्वर्णजटित सींग वाली। रूपानी खरीओ=रूपे के खुरवाली। हीरलानी······· ···होतीरे=हीरों से गूँथी हुई रस्सी वँधी थी। गोठणमां=घुटनों में। घोणीओ=दोहनी। लटके शं=छटा से, नखरे के साथ। गाय·······मोतीरे=प्रचुर लाभ कराने वाली गौ।

२२६— ल्होर=हँसी ठट्ठा।

२३१—राधावर·······कासी=श्री कृष्णचन्द्र का सान्निध्य प्राप्त कर लिया—एक मात्र जब उन्हीं का आश्रय लिया तब काशी आदि और धाम के आश्रय की आवश्यकता ही क्या!

२३२—झूँठी·······कुबज्या सी=कंस की दासी कुब्जा को अपना कर उसे अपनी चहेती (पटरानी) बनाकर श्यामसुन्दर ने उच्छिष्ट थाली का जल पिया है।

विशेषः—गाते गाते पद की मूल भाषा पर पंजाबी भाषा का प्रभाव छाया दिखाई देता है।

२६२—पाठान्तरः—

कालों की रैंन विहारी, महाराज कोण विलमायो ॥०॥

२६६—चिल=चमक।

२६७—विशेषः—इस पद के समान भावात्मक भक्त सूरदास जी के भाव मय पद का यह अंश भी देखने जैसा है:—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो ।
मोसों कहत मोलको लीनो तुहि जसुमति कब जायो ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तातु ।
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत श्याम सरीर । आदि ।

२७२—नथी गोठतुं=चैन नहीं पड़ता । तम माटे=तुम्हारे लिये । खपी=कहलाई ।

२७३—नंदाशे=फूटेगा । आळी=छेड़ छाड़ । बहुवारूं=कुलिन वधुएँ । फुल·········गुंथे=मूल में तो क्या बात होती है उस पर संसारी जन मनमाने तर्क-वितर्क, कुतर्क किया करते हैं ।

पाठान्तरः—

मही ढोळाशे मारूं मोहन जी, मही ढोळाशे मारूं ॥०॥
लाख ये लाखनुं बेडुं नंदाशे, शोभित छे बहु सारूं ॥१॥

२७४—माने=माँ को । व्हाणा नो=प्रभात का । वढवाड करे छे=झगड़ा करता है । रवि·········भाण=सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यंत । बीवडावे=डराने पर । लोढु·········पाषाण=लोहा और पाषाण जैसे कठोर हृदय वाली हैं । हलकुं·········पान=केवल सच्चे प्रेम-भाव के साधन से ही रीझने वाले । वाव्यां·········वान=हमारा किया हम ही को भोगना होगा ।

३०५—भार·········था=दीन-नम्र होकर स्वामी की शरण में जा, उन्हीं पर तेरी रक्षा का उत्तर दायित्व है।

३१०—नुगराथी=हरि विमुखसे।

३११—कलकी करी =आवाज दी, संकेत किया।

३१४—लता पताँ=मुग्ध। रपट झपट=झक झोर कर। खाय·········पर=मूर्छित हो मैं पृथ्वी पर गिर पड़ी।

३१८—वगोई=निन्दित की। पेरे पेरे=युक्ति से, समझा बुझाकर।

३१९—कचोला मां=घिसे हुए चन्दन को रखने के पात्र विशेष में।

३२०—खीटलीआळा=घुँघराले।

३२७—रंग·········झबोली=कृष्ण प्रेम-रंग में और उस मधुर रस में गोपियाँ सराबोर हो गईं।

पाठान्तरः—

हुं वात कहुं उभां रहोनी अलबेली।
हाँरे नथी जवाब देतां मन मेली
रूमक झुमक करतां आवो ने जाओ छो,
हांरे नथी जवाब देतां मन मेली॥१॥
हांरे तारी कांहां गई ते संगनी सहेली।
हांरे दाण आपे छे राधा घेली॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर।
हांरे वाला चरण कमल चित चोरी॥३॥

३३३—सजो जोग=योग के उपकरणों को-साधन को स्वीकार करो। वसती·········जात=वसे हुए घरों को उजाड कर गये और उजडे हुए को वसा दिया अर्थात् गोपियों को निराधार बनाकर चले गये और मथुरा में कुब्जा को अपनाकर उसे सनाथ कर दिया।

३३४—तमे·········लगाई=भांग पीकर ऐसे मतवाले बनो कि

३६६—कैसे·········ढोल=संकेतात्मक सन्देश के सिवा और अधिक कुछ किया भी क्या जाय, जो अपने हैं उन्हें संकेत से समझाने के अतिरिक्त और कुछ भी करना उचित नहीं जिससे कि समाज में लाञ्छना हो।

३७४—काकड़ी=कंकर। लाकरडी=लकड़ी। साथरली=साथिन। एकरली=अकेली। मयो=दहीं। वाकरली=कुछ महिनों की व्याई अच्छा दूध देने वाली। साँकरली=शकर।

३७५—हो·········मासडली=मुग्ध हो गई, तन्मय होगई। कस·········पावडली=(चलते चलते) पैर रुक गये। मतकर आकड़ली=अकड़ना मत।

३७६—थें·········प्रभुजीए=तुमने ऐसी समर्थ गौरी का पूजन किया है कि जिससे प्रभु तुम्हारे हृदय में बस गये। म्हारे············गमतो=मेरे घर उसे सुहाता नहीं। पुठल=पीछे।

भीतर चंद्रमुखी अवलोकत बाहर भूप खरे न समाते ।
ऐसे भये तो कहा तुलसी जो पै जानकीनाथ के रंग न राते ॥

संसार के सभी प्राणी सुख-आनंद चाहते हैं परन्तु सुख प्राप्ति के साधन का विवेक न होने से सुख की अपेक्षा दुःख ही प्राप्त होता है। समर्थ रामदास स्वामी ने 'मनाचें श्लोक' में कहा है—

'जगीं सर्व सुखी असा कोण आहे ।
विचारी मना तूंचि शोधोनि पाहें ॥

हे मन ! तू ही विचार पूर्वक ढूँढ के देखले, संसार में क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति है कि जो सर्वथा सुखी हो ?

कोई धन को सुख का साधन समझता है तो कोई सुन्दर स्त्री को, कोई पुत्र को तो कोई मित्र को, कोई सत्ता को तो कोई कीर्ति को, कोई स्वादिष्ट भोजन को, तो कोई भूमि को, कोई कला को तो कोई गुण को और कोई विद्या को तो कोई वैभव को।

परन्तु भर्तृहरि जी ने कहा है,—

भोगे रोग भयं कुलेच्च्युति भयं वित्ते नृपालाद्भयम्
मौने दैन्य भयं बलेरिपुभयं रूपे जराया: भयम् ॥
शास्त्रे वाद भयं गुणे खल भयं काये कृतान्ताद्भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भूवि नृणां वैराग्य मेवाभयम् ॥

वास्तव में सांसारिक विषय-भोगों से न कभी तृप्ति हो सकती है न कभी शांति ही मिलती है।

अपने छोटे पुत्र से यौवन पाकर वैषयिक सुख में सहस्रों वर्ष पर्यन्त रचे-पचे रह कर राजा ययाति ने अंत में अपना यही अनुभव व्यक्त किया है, :—

न जातु कामः कामाना मुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

हृदय में पर ब्रह्म की झलक आ जाती है। प्रभु के ध्यान, चिन्तन व स्मरण करने से एवं उनके आनंद मय रूप का प्रकाश होते ही हृदय के सारे विकार व अज्ञानांधकार नष्ट हो जाते हैं।

सारांश यह है कि भ्रमवश अपनी न्यारी न्यारी सुख प्राप्ति की धारणा करने वाले प्राणियों को किसी दिन अनुभव द्वारा अपने सुख के दृष्टि बिन्दु को बदलने को बाध्य होना पड़ता है। बालपन में खिलौने से सुख मानने वाला बालक युवावस्था में किसी और वस्तु में सुख देखता है, फिर वृद्धावस्था का सुख का अनुभव तो कुछ और ही होता है।

भला नाशवान् संसार में, नाशवान्, अस्थिर व क्षणिक विषय सुख से भी क्या कभी तृप्ति, शांति व आनन्द प्राप्त हो सकता है? नाशवान् वस्तु के चिन्तन से व उपभोग से नाशवान् पदार्थ ही प्राप्त होंगे जिसके लिये बार बार जन्म-मरण के चक्र में आना पड़ेगा जब कि अविनाशी के चिन्तन व ध्यान से मोक्ष व प्रभु की प्राप्ति होगी। यह प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त है।

'यद् दृष्टं तन्नष्टं' के अनुसार समस्त संसार व दीखने वाला नाम-रूपात्मक सब प्रपंच मिथ्या है। शरीर की एक दिन यह गति होगी—

यो देहः सुप्तोऽभूत्सु पुष्प शय्योपशोभिते तल्पे।
सम्प्रति स रज्जुकाष्ठै र्नियंत्रितः क्षिप्यते वन्हौ॥

जो शरीर किसी समय पुष्प शय्या पर सोता था, अब काष्ठ व डोरी में बाँधा जाकर वह अग्नि में डाला जा रहा है।

स्वयं के नष्ट होने के साथ-साथ 'आप मुए पीछे डूब गई दुनिया' के अनुसार उसका माना हुआ—भोगा हुआ सारा संसार भी उसके लिये नष्ट हो जाता है।

श्री शंकराचार्य ने यही कहा है—

बद्धो हि को, यो विषयानुरागी ।
का वा विमुक्ति, र्विषये विरक्तिः ॥

किसी कवि ने मन पर क्या ही अच्छी कोटी की है ? श्वेत केश जो पहले काले थे, अपने कुटिल, कपटी काले मन को उपदेश करते हैं—

रे मन तज तू श्यामता, केश करे उपदेश ।
हम पलटे तू त्यों रहा, हा हा बड़ा अँदेश ॥

मनुष्य यदि अपने सम्बन्ध में विवेक विचार नहीं करेगा तो उसमें और पशु में अन्तर ही क्या ? क्योंकि—

खादते मोदते नित्यं शूनकः शूकरः खरः ।
तेषा मेषां को विशेषो वृत्ति-र्येषां तु तादृशी ॥

खाना, पीना, विषयोपभोग करना आदि तो मनुष्य क्या, पशु पक्षियों में भी हो जाता है परन्तु आध्यात्मिक उन्नति का अवसर मनुष्य योनि के सिवा और कहीं नहीं है ।

मनुष्य-जन्म बार बार नहीं मिलता ।

इसके खोने पर—

नर देहातिक्रमणात् प्राप्तौपश्वादि देहानां ।
स्वतनो रप्यज्ञानं परमार्थस्यात्र का वार्ता ॥

अर्थात् नरदेह के छूटने के बाद, पशु आदि योनि के प्राप्त होने पर जब स्वयं के शरीर का ही अज्ञान होता है तब फिर परमार्थ साधन की तो बात ही क्या !

ऐसी परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य का विचार करना परमावश्यक है ।

के विना नहीं हो सकता। इसलिये सत्संग ही सर्वप्रधान साधन है।

सत्संग व कुसङ्ग का जीवन पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता है। कहा भी है कि--

जैसा खावे अन्न वैसा बने मन। जैसा पीवे पानी वैसी बोले बानी। जैसा करे संग वैसा चढ़े रंग।

जिसकी संगति से सात्विकता की अपेक्षा रजोगुण व तमोगुण की ओर आत्मा का पतन होता हो उसे मित्र नहीं शत्रु समझना चाहिये। आवश्यक कर्त्तव्य जितना सम्पर्क रखने के अतिरिक्त उसका अधिक संग कदापि नहीं करना चाहिये। जो हित करने वाला है और उच्च विचारों की ओर जिसके मन की गति है, जिसकी संगति से मन को सात्विकता की ओर अग्रसर होने का अनुभव होता हो उसे ही अपना मित्र समझना चाहिये और उसी के सम्पर्क में रहना चाहिये।

बिना सत्संग के प्राणी का उद्धार नहीं। भले ही वह--

= 'मथुरा जावे द्वारिका जावे जावे जगन्नाथ।
साधु संगति हरि भक्ति बिन कछू न आवे हाथ'॥

सत्संग का माहात्म्य अपार है। भगवान वेदव्यास ने कहा है--

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(श्रीमद्भागवत १।१८।१३)

अर्थात्

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला इक संग।
तूल न ताहि सकल मिल, जो सुख लव सत्संग॥

सत्संग कई प्रकार से होता है। शास्त्रों और महापुरुषों के स्वानुभूत वचनों पर श्रद्धा कर उनके उपदेशानुसार आचरण

साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसी को नहीं जानते और मैं उन्हें छोड़कर और किसी को नहीं जानता।

श्री भगवान ने स्वयं भक्तों की प्रशंसा करते हुये उद्धव जी से यहाँ तक कह दिया है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनि र्न शंकरः।
न च सङ्कर्षणो न श्री नैवात्मा च यथाभवान्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१५)

मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, शंकर, श्री बलरामजी और श्री लक्ष्मीजी भी नहीं हैं, अधिक क्या, मेरा आत्मा भी मुझे उतना प्रिय नहीं है।

वास्तव में संत महात्मा की कृपा से ही सत्संग का रहस्य समझ में आकर जीव भगवच्चरणारविन्दों का आश्रय-अनन्यभाव से शरण लेता है और तभी प्रापंचिक-मायिक जगत से छुटकारा होता है। ब्रह्मा ने कहा है—

तावद्भयं द्रविण गेह सुहृन्निमित्त
शोकः स्पृहा परि भवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥
(श्रीमद्भा० ३।६।६)

जब तक पुरुष आपके अभयप्रद चरणारविन्दों का आश्रय नहीं ले लेता, तभी तक उसे धन, घर और बन्धुजनों के कारण प्राप्त होने वाले भय, शोक, लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ आदि सताते हैं और तभी तक मैं, मेरेपन का असत् आग्रह रहता है जो दुःख का एक मात्र कारण है।

अन्य संत व शास्त्रों के 'सत्सङ्ग-उपदेश' वचन

=धर्मं भजस्व सततं त्यज लोक धर्मान्
सेवस्व साधु पुरुषान् जहि काम तृष्णाम्।
अन्यस्य दोष गुण चिन्तन माशु त्यक्त्वा
सेवा कथा रसमहो नितरां पिवत्वम्॥
(श्रीमद्भा० माहात्म्य ४।८०)

लोकाचार को अधिक महत्व न देकर धर्म की उपासना करो। कामना व तृष्णा का त्याग कर संत-महात्माओं की सेवा करो और अन्यों की निंदा-स्तुति को शीघ्र त्यागकर निरन्तर भगवत् सेवा व भगवत्कथामृत का पान करो।

=न भोगाद् राग शांति मुंनिवत्।
(सांख्य दर्शन)

मुनि के सदृश्य (सौभरि) भोग से राग की शांति नहीं होती।

=सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(श्री गीता १८।६६)

सब धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानंद घन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।

=सुख दुःखेच्छा लाभादित्यक्ते काले
प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्ध मपि व्यर्थं न नेयम्।
(ना. भ. सू. ७७)

'सत्सङ्ग-उपदेश' मीराँ की वाणी में

संसार के समस्त प्राणी कर्म के बन्धन में फँसे हुए हैं। क्योंकि—

(२७) कर्मन की जो गति न्यारी ॥ और—

(४२) करम गति टारे नांहि टरे ॥

अपने अपने शुभाशुभ कर्मों से प्राणी उलझता है व सुलझता है। उसको यह विवेक–विचार तो होता नहीं कि,

(७) जूठी रे काया ने जूठी रे माया, जूठो सब संसार ॥

(४६) जेताई दीसे धरण गगन बीच, तेताई सब उठ जासी

(१५) संसार सागर नो भै छे भारे, माँहे भरयो बहु भार॥

और इस संसार में वास्तव में कोई किसी का नहीं, न कुछ साथ में ही जायगा।

(६) जीव रा संगाथी जग में ना मिल्या हो जी ॥

(८१) स्वारथ नी रे सगाई संसार मां ॥

(६६) हाथी ने घोड़ा माल खजाना, कोई न आवे साथ ॥

प्राणी को यह भी ज्ञान नहीं कि—

(१) नहिं ऐसो जनम बारंबार। जीवणा दिन चार ॥

(४) जग में जीवणा थोड़ा। दिया लिया तेरे संग चलेगा।
भज उतरो भव पार ॥

(११) आवो रूडो मनखो ते एळे गुमायो,
रामजी को नाम कायक्रुं न लियो ॥

(५६) काहे को देह धरी भजन बिन जननी भार भरी ॥

(२१) लगन लगी को पेडो (मार्ग) ही न्यारो, पाँव धरत तन छीज्ये। जें तू लगन लगाई चावे, तो सीस की आस न कीज्ये।

निष्कपट भाव से प्रभु शरणागत होना चाहिये क्योंकि--

(४६) गिरधर के सरणौं जीव परम पद पावै ॥

एक मात्र उन्हीं से हृदय से प्रेम करना चाहिये--

(६३) नेहडलो (प्रेम) करीयें कोई साचा नी साथे।
आपने मळीये साँवरीया वरनी साथे ॥

इस मर्त्य संसार में एक मात्र भगवद्भजन व भगवत् प्रेम ही सार है।

(४५) कोउ उतरयो नहिं भजन बिना ॥

(३१) मीराँ कहे बिना प्रेम से नाँहि मिले नंदलाला।

(७५) ज्यों कुछ मजा भजन हरि के में, सो सुख नहीं अमीरी में। साहब मिलेगा सबूरी में।

(८६) कोई न दीठां में सुखिआँ, जगत में कोई न दीठां रे सुखिआँ। हरि को भजे सो नर सुखिया ॥

जो प्राणी इस प्रकार अनन्य प्रेम पूर्वक भगवद्भजन करते हुए प्रभु के पावन चरण कमलों की शरण लेता है, भक्तवत्सल भगवान की उस पर पूर्ण कृपा होती है। इतना ही नहीं उनकी तो यहाँ तक प्रतिज्ञा है कि--

(३५) जो जन ऊधो मोहि न बिसारे, ताहि ना बिसारूँ पल पाव घड़ी रे। वो मेरा मैं उनका रे ऊधो,
भक्त काज मैं देह धरी रे ॥

ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा यह अज्ञान ।
चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान॥४॥
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजै, बंदी अपनी जान ।
मीराँ गिरधर सरण तिहारो, लगे चरण में ध्यान ॥५॥

निर्गुणभाव ३ (गुज०)

जूनु थयु रे देवळ जूनु तो थयु ।
म्हारो हंसलो नानो ने देवळ जूनु तो थयु ॥०॥
आरे काया रे हंसा डोलवाने लागी रे ।
पड़ी गया दांत मांयलु रेखु तो रह्यु ॥१॥
तारे ने म्हारे हंसा प्रीत्यु बंधाणी रे ।
उडी गयो हंस पांजर पड़ी रे रह्यु ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण ।
प्रेम नो प्यालो तमने पाउँ ने पीउँ ॥३॥

वैराग्य ४

जग में जीवणा थोड़ा राम कुण कह रे जंजार ॥०॥
मात पिता तो जनम दियो है, करम दियो करतार ।
कइरे खाइयो कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार ॥१॥
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरो भव पार ॥२॥

गुणगान ५

भज केशव हरि नंदलाला । भज गिरिधारी गोपाला ॥०॥
मथुरा में हरि जनम लियो है, गोकुल झुले नन्दलाला ।
गोपी के कनैया बलभद्रजी के भैया, भक्तवत्सल रछपाला ॥१॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहे, मुरली बजावे नंदलाला ।
यमुना के नीर तीर धेनु चरावत, गल बैजन्ती माला ॥२॥

हरि ने भजवा सूँ सागे हरि मिले हो जी,
नहीं तो जासी जम के द्वार ॥५॥

निर्गुण-भाव ७ (गुज०)

वागे छे रे वागे छे तारी काया मां घडीयाल वागे छे ॥०॥
आरे काया ना दश दरवाजा, नीतिनी नौबत गाजे छे ॥१॥
आरे काया मां बाग बगीचा, भमरो सुगन्धी मांगे छे ॥२॥
आरे काया मां जोत जले छे, तेजना झींझकार वागे छे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, सन्तो अमरापुर म्हाले छे॥४॥

निर्गुण-भाव ८

धोया न मैला होय, हरिजन धोबिया मन धोय ॥०॥
मोह का फंदा काट मूरख, ताटी तन की तोड़ ।
पांच पचीसाँ ने गारद करले, मंदर दिवला जोय ॥१॥
सूरत साबू प्रीत जल से, कमियाँ शील संजोय ।
ऐसी धोवट धोय धोबिया, फेर न मैला होय ॥२॥
तन का पींजरा मन का सूआ, हिरदा में हरि गुण बोल ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जीवणा दिन दोय ॥३॥

निर्गुण-भाव ९

लग रहना, लग रहना, हरि भजन में लग रहना, लग रहना ॥०॥
साहेब का घर दूर है रे, जैसी लगी खजूर ।
चढ़े सो चाखे प्रेम रस, पड़े तो चकनाचूर ।१।भजन०॥
क्या बख्तर का पहरना रे, क्या ढालों की ओथ ।
शूरे पूरे का पारखा रे, लड़े धणी से जोर ॥२॥
ज्ञान कटारी बड़ी रे, गुरु गोविन्द तलवार ।
वैराग्य रूपी भाला बांध ले, कबहुँ न होवे हार ॥३॥

रतन सो जतन करी तुने राख्यो,
            बड़ो रे भयो तबते कुल लजायो ॥२॥
गुनका को बेटो गली मांही डोले,
            पिता बीन पुत्र ए गुनका को कहायो ॥३॥
बाइ मीराँ के प्रभु तिहारा भजन बीना,
            आवो रूडो मनखो ते एळे गुमायो ॥४॥

ज्ञान १२ (गुज०)

भजीलोनी संतो, भजीलोनी साधो,
            रामजी बीना केसो जीवण रे, हो जी ॥०॥
तन नो बनावुं तंबुरो, जीवनो तार तणावुं राम ।
बन बन बाजे घूघरा, जीवने लाड लडावुं राम ॥१॥
आंगणे आंणीआरा आटला (?), मंदिर लीप्यां ना दीसे राम ।
शेर अनाज ने सेवतां, जीवड़ो जातां ना हीसे राम ॥२॥
काया ने आणां आवीयां, जम पाछा ना फरे राम ।
सात साहेलीना झुमख मां, जीवने आगळ बरावे राम ॥३॥
तल तल देह होमीयां, जरा आज्ञा न मोडुं राम ।
जीवडो जाय तो जावा देउं, हरि नी भक्ति ना छोडुं राम ॥४॥
नदी रे किनारे ' ' नयणे नीर वहेवडावुं राम ।
काया नी करूं वाडी हुं, नदी रे किनारे चंपो रोपावुं राम ॥५॥
कहानजीना हाथनी रेखा अडे, बीन चंपे कळियो आवे राम ।
दास मीरांबाई नी विनति, ठाकोरदास तुज कहावुं राम ॥६॥

वैराग्य १३ (गुज०)

काम नहि आवे तारे काम नहि आवे,
            प्रभु बिना तारे काम नहि आवे ॥०॥

भेदुडा होय ते भेद पीछाणे संतो,
अगम नीगम नी खबरो लइए रे ॥०॥
उंडा रे नीर जोइने मांहे ना धसीए संतो ।
कांठडे बेठां बेठां नाहीए रे ॥१॥
मायानु रूप जोइने मन ना डगावीए संतो ।
प्रभु थी प्रीत लगावीए रे ॥२॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर केरा व्हाला !
चरण कमळ चित लइए रे ॥३॥

भक्ति १७

भजले नंदकुमार मुरख मन में समझ कर भजले नंदकुमार ॥०॥
नंद के लाल सें हेत करले, उतर जा भव जल पार ॥१॥
ओर कछु तेरे काम न आवे प्राणजीवन आधार ॥२॥
निशदिन धावत ओर जगार्पे हरिभजन में नहि प्यार ॥३ ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित सार ॥४॥

ज्ञान १८ (गुज०)

मंदिरया में दीवडा विनानु अंधारूं ॥०॥
खळमळ्यां देवळ उभी रही थांभली रे,
आडुं नहि झीले एनो भार रे ॥१॥
हाथ मां वाटकडी घरोघर घुमती रे,
कोइ द्यो तेल ओधारूं ॥२॥
उठि गयो वाणीयो ने पडी रही हाटडी रे,
जमडा करे छे धींगाणुं ॥३॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
आवतां जमडा ने पाछो वाळुं ॥४॥

गगन मण्डल बाजा बजै ए।
हे म्हारी सुरता बिन झालर झणकार॥
सोवन शिखर दिवलो जगै ए।
हे म्हारी सुरता बिन बाती बिन तेल॥१॥
परायो पुरष भाँव लाख को ए।
हे म्हारी सुरता आपणे रे किण काम॥
घर को पुरप निरधन भलो ए।
हे म्हारी सुरता अड़योड़ा सुधारे काम॥२॥
शाल दुशाला किण काम का ए।
हे म्हारी सुरता त्याग्यो है दिखणी रो चीर॥
घर की तो गुदड़ी भली ए।
हे म्हारी सुरता ओढ़ करो बिसराम॥३॥
अलूणा सलूणा भोजन किसा ए।
हे म्हारी सुरता त्याग्यो है जिनवारो भात॥
घर का तो टुकड़ा भला ए।
हे म्हारी सुरता खाय करो बिसराम॥४॥
हिंगलू रो ढोल्यो किण काम को ए।
हे म्हारी सुरता त्याग्यो है पिलंग निवार॥
घर की तो मचली भली ए।
हे म्हारी सुरता पोढ़ करो बिसराम॥५॥
महल मालिया किण काम का ए।
हे म्हारी सुरता त्याग्यो है रंग रो महल॥
घर की तो टपरी भली ए।
हे म्हारी सुरता बैठ करो बिसराम॥६॥

सुरत सवागण वड़ि कतवारण
तार गगन में लेजावे ए माय ॥४॥
ज्ञान सूत की वंधी गठडिया
सूधि सिखर गड जावे ए माय ॥५॥
सतगुरू म्हारा वड़ा हि सोदागर
सूगी वस्तु दिराइ ए माय ॥६॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर
हरखि निरखि गुण गावे ए माय ॥७॥

हरि भजन-सार २६

भजन विना जिवड़ा दुखी, मन तु राम भजन करी ले ॥०॥
जीव तु जायगो जहुर, मन तु राम भजन करी ले ॥१॥
लख रे चौयासी फेरा फिरेगो, जीव जन्मी जन्मी मरे ॥२॥
मात पिता तेरा दास ने वंधु। वाळे कारज कछु ना सरे ॥३॥
हस्ती ने घोड़ा माल खजाना। धन भंडार भरचो घर में ॥४॥
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। अरे मेरो चित भजन में ॥५॥

कर्म-गति २७

करमन की जो गति न्यारी। मैं कैसे लिखूँ मुरारी॥
खिंच गई कलम हमारी ॥०॥
नागरवेल फूल विन तरसे, फूलाँ लूम हजारी।
उजलो जी पंख वगुले को दीनो, कोयल किस विध कारी ॥१॥
मूरख राजा राज करत है, पंडित फिरे भिखारी।
पतिव्रता नार पुत्र विन विलखे, फूवड़ जण जण हारी ॥२॥
वड़े वड़े नैंन दिया मृगा ने, वन वन फिरत उजारी।
मीरां वाई के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां वलिहारी ॥३॥

साकुट जननो संग न करीए पियाजी, पाड़े भजन मां भंग रे ।२।
अडसठ तिरथ संतो ने चरणे पियाजी कोटि काशी ने कोटि गंगरे।३।
निंदा करशे ते तो नर्क कुंड मां जाशे पियाजी,
थशे आंधळा अपंग रे ॥४॥
मीराँ कहे गिरधर ना गुण गायो पियाजी,
संतो नी रजमां शीर संग रे ॥५॥

प्रेम-वश भगवान ३१

साधन करना चाही रे मनवा, भजन करना चाही ।
प्रेम लगाना चाही रे मनवा, प्रीति करना चाही ॥०॥
नित नहान से हरी मिलें तो मैं जल जन्तू होई ।
फल फूल खाके हरी मिलें तो वानर बन्दर होई ॥१॥
तृण भक्षण से हरी मिलें तो बहुत है मिले अजा ।
नारि छोड़ि के हरी मिलें तो बहुत मिले खोजा ॥२॥
तुलसी पूजें हरी मिलें तो पूजूं तुलसी झाड़ ।
पत्थर पूजें हरी मिलें, तो मैं पूजूं पहाड़ ॥३॥
दूध पिये ते हरी मिलें तो बहुत हैं भक्तीवाला ।
मीराँ कहे बिना प्रेम से नांहि मिले नंदलाला ॥४॥

साधु-संगति ३२

भैय्या मोरे भाग जागे साधु आये पावना ॥०॥
चुवा चंदन घस लियो, अँग कूं लगावना ॥१॥
मथुरा में कंस मारा, लंकापति रावणा ॥२॥
राजा बली द्वारे ठहरो रूप लिया बावना ॥३॥
गोकुल में जाके ठहरो द्वारका बसावना ॥४॥
मीरां बाई हरि की दासी पद कूं लगावना ॥५॥

भक्ति भाव ३६

सुख पाओ रे प्राणी राम भजो, राम भजने भव पार उतरजो,
नीच कर्म परा तजो रे । प्राणी राम भजो० ॥०॥
साध संगत मांहि जाय सुधरजो, दुष्ट कर्म परा तजो रे ॥१॥सुख०
हरिजन मिले जांसुं हरखने मिलजो, दुर्जन से दूरा रीजो रे ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति का आभूषण सजो रे ॥३॥

हरिनाम-सार ३७

यो झूँठो रे संसार, सांचो म्हारो साँवरिया को नाम ॥०॥
कदीयन पाळी चालती रे, चाली सो सो कोस ।
काशीपुरी के चोहटे जी कई हरीचंद वेंचे नार ॥१॥
माणक सोनो पहरती रे तुलती फूलन भार ।
एक दिन झोलो रामजी कांई, घर घर की पनीहार ॥२॥
सोने की लंका बनी रे सोने का दरबार ।
रत्ती भर सोनो ना मल्योजी कांई रावण मरतो बार ॥३॥
मीराँ ने तो गिरधरजी मल्या रे, छिन में कीन्हा निहाल ॥४॥

चेतावनी ३८

अब क्यों करे रे मूर्ख मोडो रे, बटाऊ (पंथी) बाट घणी
दिन थोड़ो रे ॥०॥
उगोरे सूरज पूरब, घर पुगो तो, दोड सके तो दोडा रे ।१।बटाऊ०
करलो किमत हिमत मति हारो, कर चिंता पिछे दोडो रे ॥२॥
नगर पुछ्यां निरभे होसी, बीच रमण को फोडो रे ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मार्ग म्हाने मिल्यो नेडो रे ।४।

ज्ञान ३९ (गुज०)

मान सरोवर जैये कूडी रे काया ॥०॥

सत्य परउपकार कर नर ध्यान प्रभु का धरे ॥३॥
दास मीराँ शरण प्रभु का चरण में आ परे ॥४॥

कर्म-गति ४२

करम गति टारे नाहिं टरे ॥०॥
सतवादी हरिचँद से राजा (सो तो) नीच घर नीर भरे ॥१॥
पाँच पांडु अरू सती द्रोपदी, हाड़ हिमालै गरे ॥२॥
जग्य कियो वलि लेण इन्द्रासण: सो पाताल धरे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, विख से अमृत करे ॥४॥

हरिनाम-सार ४३ (गुज०)

नथी आवणो पाछो संसारिया में नथी आवणो पाछो ॥०॥
काया नगर में फूलों हन्दो भांडो, जामें भँवर लियो वासो ॥१॥
भाई वन्धु थारा कुटुम्ब कवीला, पड़ियो फन्द वासो ॥२॥
चुण चुण कंकर महल वनाया, ओ तो भवन भयो काचो ॥३॥
खायले पीले खूव खरचले, लारे वांधियो थे भातो ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरिजी रो नाम हैं सांचो ॥५॥

चेतावनी ४४

वन्दे वन्दगी मत भूल ॥०॥
चार दिनां की कर ले खूवी, ज्यूं दाड़िम रा फूल ॥१॥
आया था ए लोभ के कारण, मूल गमाया भूल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रहना, वे हजूर ॥३॥

हरिनाम-सार ४५

भजले रे मन गोपाल गुना ॥०॥
अधम तरे अधिकार भजन सूँ, जोइ आये हरि सरना ॥
अविसवास तो साखि वताऊँ, अजामील गणिका सदना ॥१॥

जिण चरण गोवरधन धारचो, गर्व मघवा हरण ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥४॥

पाखण्ड ४८

यहि विधि भक्ति कैसे होय ॥०॥
मन की मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ॥०॥
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोहिं चंडाल ।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिले गोपाल ॥१॥
बिलार विपया लालची रे, ताहि भोजन देत ।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत ॥२॥
आपहि आप पुजाय के रे, फूले अँग न समात ।
अभिमान टीला किये बहु कहु, जल कहाँ ठहरात ॥३॥
जो तेरे हिय अंतर की जानै, तासों कपट न बनै ।
हिरदे हरि को नाम न आवै, हाथ मनिया गनै ॥४॥
हरी हितु से हेत कर, संसार आसा त्याग ।
दास मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग ॥५॥

सांसारिक-मनोवृत्ति-राग ४९

रमइया बिन यो जिवड़ौ दुख पावै । कहो कुण धीर बँधावैं ॥०॥
यो संसार कुबध को भाँडो, साध-सँगत नहीं भावै ॥१॥
राम नाम की निंद्या ठाणै, करम-ही-करम कुमावै ॥२॥
राम नाम बिन मुकति न पावै, फिर चौरासी जावै ॥३॥
साध-सँगत में कबहुँ न जावै, मूरख जनम गुमावै ॥४॥
मीराँ प्रभु गिरधर के सरणैं, जीव परम पद पावै ॥५॥

ज्ञान ५०

रामा कहिये रे गोविन्द कहिये रे ॥०॥

मगन होया दोइ नैण पिया पल खोलो ।
भटकत उड़ गई नींद पिया मुंडे बोलो ॥४॥
केवे मीराँ दास सुता नर जागो ।
मैं तो गया री सांवरिया री लार भरम सभी भागो ॥५॥

संतोष ५३

करना फकीरी तेरी क्या दिलगीरी, सदा मगन मां रहेना जी ॥०॥
कोई दिन गाडी ने कोई दिन बंगला,
कोई दिन जंगल बसना जी ॥१॥
कोई दिन हस्ती कोई दिन घोडा,
कोई दिन पाऊं चलना जी ॥२॥
कोई दिन खाजा ने कोई दिन लाडु,
कोई दिन फक्कम फक्का जी ॥३॥
कोई दिन ढोलीया कोई दिन तळाई,
कोई दिन भोंय पे लोटना जी ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
कछु आय पडे सो सहेना जी ॥५॥

साधन-रहस्य ५४

मना तू तो वृत्तन की लत लेइ रे, थारो कांई करे डर भव रे ॥०॥
काटन वाला सूं वेर नहीं है, नहीं सींचन को स्नेह रे ।
जे कोई वावे कंकर पत्थर, उनको ही भल देइ रे ॥१॥
पवन चलावे इन्द्र झकोले, दुख सुख आपहि सहि रे ।
सीत गहाम तो शिर पर सहि हैं, पन्छंन को सुख देइ रे ॥२॥
आसन अचल मनसा नहीं डोले, तो ध्यान धणी को धर रे ।
जे तूं चावे मोक्ष जीवको, तो नाम निरंजन लेइ रे ॥३॥

ज्ञान ५८

तोती मैना राधा कृष्ण बोल । राधे कृष्ण बोल ॥०॥
एकहि तोती ढूँडत आई, लकट दिवानी मोल ॥१॥
दाना खावै पानी पीवै, पिंजरे में करत कलोल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण चित डोल ॥३॥

सत्संग-महिमा ५९

धन आज की घरी, सतसंग में परी ॥०॥
श्रीमद् भागोत श्रवण सुनी, रसना रटत हरी ॥१॥
मन डूबत लीला सागर में, देही प्रीति धरी ॥२॥
गुरू संतन की सोहनि सूरति उर बिचि आइ अरी ॥३॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सरणैं राखि हरी ॥४॥

ज्ञान ६०

पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवत हांसी ॥०॥
आत्मज्ञान बिन नर भटकत है । कहां मथुरा कहां कासी ॥१॥
भवसागर सब हार भरा है । ढूंढत फिरत उदासी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी ॥३॥

ज्ञान ६१

बोल सूआ राम राम बोलै तो बलि जाऊँ रे ॥०॥
सार सोना की सल्या मँगाऊँ, सूवा पींजरो बणाऊँ रे ।
पींजरा री डोरी सूवा, हाथ सूं हलाऊँ रे ॥१॥
कंचन कोटि महल सूआ, मोतियाँ बँधाऊँ रे ।
मालिया में आय सूवा, पीँजरो बँधाऊँ रे ॥२॥
चंपला री डार सूआ, पीँजरो बँधाऊँ रे ।
घृत घेवर, मोलमा लापसी परसाऊँ रे ॥३॥
आमला रो रस सूआ, घोलि घोलि पाऊँ रे ।
बैठक के तो कारणे सूआ, चानणी बिछाऊँरे ॥४॥

नदिया गहरी नाव पुरानी, समझ समझ पग धरिये री ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,चरन कँवल चित धरिये री ॥३॥

सत्संग-महिमा ६६ (गुज०)

सत्संग नो रस चाख प्राणी तु तो सत्संग नो रस चाख ॥०॥
प्रथम लागे तीखोने कडवो, पछी आंबा केरी शाख ॥ १॥
आरे काया नो गर्व न कीजे, अंते थवानी छे खाख ॥२॥
हस्तीने घोड़ा माल खजाना, कांई न आवे साथ ॥३॥
सत्संगथी बे घडीमां मुक्ति, वेद पुरे छे साख ॥४॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि चरणे चित राख ॥५॥

भगवद्-महिमा ६७ (गुज०)

हो भाग्यशाळी आवो तो राम रस पीजिए ॥०॥
तजी दुःसंग सत्संग मां बेसी, हरिगुण गाई ल्हावो लीजिये ॥१॥
ममता ने मोह जंजाळ जगकेरी, चित्त थकी दूर करी दीजिये ॥२॥
देवोने दुर्लभ देह मळी आ, तेने सफळ आज कीजिये ॥३॥
राम नामे रीजिए, आनन्द लीजिए,
दुरिजनीया थी न बीजिए ॥४॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर , हेते हरि रंग मां भींजिए रे ॥५॥

भजन-महिमा ६८ (गुज०)

मन भजीले मोहन प्यारा ने, प्यारा ने, मोरली वारा ने ॥०॥
सात समुंदर तरी तरी आव्यो, डुबी मर मत आरामे ॥१॥
मनुखां देह मळी छूटवा,,शुं भूल्यो भमे घरबारा में ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि भजीले ये वारा में ॥३॥

भजन-महिमा ६९ (गुज०)

अब तेरो दाव लग्यो है, भजले सुन्दर श्याम ॥०॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणन चित लडा ॥५॥

चेतावनी ७३

लोभी जिवडा युंही जनम गमायो रे ॥०॥
जा दिनते तैं जनम लियो है, हरि को भजन नहिं गायो रे ॥१॥
भटकत फिरचो लोभ के खातिर, हाथ कछू नहिं आयो रे ॥२॥
मात पिता अरू सुजन सनेही, वोहो जनम तैं पायो रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनासी, चरण कमल चित लायो रे ॥४॥

भक्ति-महिमा ७४

नहीं कोई जात को कारण, मन मानै की बात ॥०॥
विना बीज खेती निपजाई, नरसीनो सारचो काज ॥१॥
सैन भगत का सांसा मेटया, आप दिखायो काच ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, भक्तवत्सल ब्रजराज ॥३॥

संतोष ७५

मन लाग्या मेरा राम फकीरी में ॥०॥
जो कुल मजा भजन हरि के में सो सुख नहीं अमीरी में ॥१॥
जो सुख तरूवर की छाया में सो सुख नहीं जगीरी में ॥२॥
सदा रहो मोहन के सरणें क्यों पड़ना दलगीरी में ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर साहब मिलेगा सबूरी में ॥४॥

सांसारिक मनोवृत्ति ७६ (गुज०)

नावडी नावडी नावडी रे, तने हरि भज्यानी रीत नावडी ॥०॥
मोंघो मुनखा देह तें तो धूळ मां गुमाव्यो ।
भारे मारी शीद मावडी रे ॥१॥
प्रभुनुं नाम लेता कदिये ना आवड्युं ।
निंदाओ करतां तने आवडी रे ॥२॥

सरवर पाणी में गई रे, मींडक मारी लात।
चार महिना पडी रही रे, कोई न पूछी मारी बात ॥१॥
सरवर पाणी में गई रे, सरवर चीकट माटी।
घडो पटकू पग रपटीओ रे सासु कहे बहु माठी ॥२॥
सरवर पाणी में गई रे, म्हांने गिरधर बोल्या बोल।
में गिरधर रो काहा बिगारयो, भर भर पाया में डोल ॥३॥
गिरधारी रो देवरो, राणे रो दरवार।
मीराँ नाचे प्रेमशु रे, तज सोळे सिणगार ॥४॥

संत-निष्ठा ८०

संतां! काल रमीज्यो, म्हांरो इतनो जोर,
आज बसोनी म्हारा सहेर में ॥०॥
मारां तो करम कठण हूय लागा,
आप पधारो ज्यारा निरमळ होय ॥१॥
अंचलो बिछाव करूं परणाम,
सीस निवावुं म्हारा दोऊ कर जोड ॥२॥
भोमिका सफल जहां संत पधारे,
चरण पवित्तर कीनी मारी भोम ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
साधुडारो हिवडो बहु कठोर ॥४॥

सांसारिक-मनोवृत्ति ८१ (गुज०)

स्वारथनी रे सगाई संसार मां स्वारथनी रे सगाई ॥०॥
पाडा ने कोई पाणी न पाये, पाडी उछेरे दूध पाई ॥१॥
दुबळा सगाने कोई ना बोलावे, ताजा ने भेटे छे धाई ॥२॥

ज्ञान ८५ (गुज०)

करवो ए गजरो, काया फूलनो गजरो ।
पीत्रा दन को करवो गजरो ॥०॥
आ कायावाडीनां ए फूल करमावा लाग्यां ।
प्राणी लूंटवाने लाग्यो वेरी ओलो जमडो ॥१॥
आ वारे अटारीए झांखो झरूखो राणी ।
वसमो लागे आथमतो दीवड़ो ॥२॥
आ प्रीतुं करी अमने कां तरछोडो ।
प्राणी जोने विचारी तारो जुनो पींजरो ॥३॥
बाई मीराँ कहे ए प्रभु गिरधर ना गुण ।
प्राणी साचे दीले सीताराम ने समरो ॥४॥

दुःखरूप-संसार ८६

कोई न दीठां में सुखिआं, जगत में कोई न दीठां रे सुखिआं॥०॥
राजा भी दुखिया, प्रजा भी दुखिया,
दुखिया सबरे संसारा ॥१॥
जोगी भी दुखिया, जंगम भी दुखिया,
दुखिया भव वसनारा ॥२॥
पाणी भी दुखिया, पवन भी दुखिया,
दुखिया जळ केरी मछीयां ॥३॥
चन्द्र भी दुखिया, सुरज भी दुखिया,
दुखिया नव लख तारा ॥४॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,
हरि को भजे सो नर सुखिया ॥५॥

चेतावनी ६०

मरशे रे माया ने गळशे रे काया, टेक जाशे तारो त्रुटी ।
हो राम कृष्ण भजीले, जोबन जाय जरा फ़ुंटी ॥०॥
सोना न मंदिर तारा मोल अवास, जम ना किंकर लेशे फ़ुंटी॥१॥
काचनो कुंपो जेम जळे रे भरियो, साचवतामां जाशे फूटो ॥२॥
बाई मीराँ कहे जेणे हरि नव जाण्या,तेना जीवनडा मां आग उठी ३।

भगवद्भाव ६१

पलक मत विसरो रामै राम ॥०॥
गले में तुलसी की माला, मुख से राम राम ।
हिरदे में ठसावो श्री सारंगराम ॥१॥
हीरदे में तेरो रामजी बिराजे,
सीताजी की शोध में खेले हनुमान ॥२॥
नोकर चाकर बोत गुलाम रामा,
अंते नहिं आवे कोई तेरे काम ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागुण,
नयणां के पियारे मेरे सुन्दिरशाम ॥४॥

ज्ञान ६२ (गुज०)

पहेली प्रभु शुं प्रीत न बांधी, अन्ते संत मनावो रे ॥०॥
घर लाग्युं ने कूप खोदायो, केम अग्नि होलवाशे रे ।
चोरो तो धन हरी गया पछे, दीपकथी शुं थाशे रे ॥१॥
बालपणुं रमवामां खोयुं, जोबन जुवतीनी जोडे रे ।
वृद्ध थये छैयां छोकरां व्हालां, मरतां मागे मुक्ति मोटे रे ॥२॥
सूके सरोवरे पाळ न बांधी, वारी गयुं ज्यारे वहीने ।
शुं करवा पछी पाळ बांधो छो, साचीशी समजण सहीने रे ॥३॥
तुलसी मंगावोने तीलक बनावो, साहेब नाम सुणावो रे ।
मीराँ कहे अज्ञानी लोको, फोकट फंद करवो रे ॥४॥

कुड़ी कुड़ी काया रामा, झूठी झूठी माया रे
कुडा तो दिलासा अमने दईने गयु ं रे ॥१॥
आरे कायानी साथे प्रीत बंधाणी रामा
पड़ी गया दांत रेखु ं पडी तो रह्यु ं रे ॥२॥
काया नो गढ़ हंस डोलवा ने लाग्यो रे
उड़ी गयो हंस पिंजर पडयु ं तो रह्यु ं रे ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वाला
भजन विना तो आयुष्य एळे तो गयु ं रे ॥४॥

प्रेमपथ ९६ (गुज०)

प्रेम पीयालो में पीधो रे जीहो संतो प्रेम पीयालो में पीधो ॥०॥
आरे जगतड़ा ने, जोईने वारोरे, अमर पछेडो कोणे लीधो रे ॥१॥
आरे शरीर नां, शदवे सुखडा रे, छे अमे त्यागी दीधो रे ॥२॥
मारारे मनड़ाने बहुरे, समजाव्यो रे, जोग जंगलनो में लीधो रे ॥ ३ ॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गीरधर ना गुण, स्वर्गपुरीनो मारग लीधो रे ॥ ४ ॥

———

पाठान्तर :—

आरे कायानी साथे प्रीत बंधाणी रामा।
पडी गया दांत रेखुं, पड्युं तो रह्युं रे ॥
कायानो गढ हंसा डोलवाने लाग्यो रामा।
उडी गयो हंस पांजर पड्युं तो रह्युं रे ॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला।
भजन विना आयुष्य एळे तो गयुं रे ॥

६—विशेष:—एक ही बीज से उत्पन्न हुए दो फलों में अपने अपने संस्कारों के अनुसार किस प्रकार परस्पर विरोधी भावों का परिणाम देखने में आता है इस पद में उसे मीरांबाई ने बड़े ही सुन्दर ढंग से अनेकानेक उदाहरणों द्वारा व्यक्त किया है। बहुत संभव है कुंभलगढ़ किले को देखते समय अथवा अपने मन्दिर के निकट के कुम्भ श्याम मन्दिर के दर्शन कर मीरांबाई को, उसके निर्माता उन महा पुरुषार्थी, अनेक गुण कलानिधि, महान भगवद् भक्त भूत-पूर्व महाराणा कुम्भाजी का स्मरण हो आया हो और तब, उनके पुत्र द्वारा ही किये गये उन जैसे पिता की हत्या जैसे घृणित कार्य की स्मृति आकर यह पद लिखने की स्फुरणा हुई हो। मेवाड़ के इतिहास में जगत् प्रसिद्ध सिसोदीया राज घराने में जो अनेकों विलक्षण और अपूर्व घटनाएँ घटी हैं, उनमें राणा लाखाजी के पुत्र कुमार चुंडा जी के, अपने पिता के लिये किये गये अद्भुत त्याग और उसके सर्वथा ही विपरीत राणा कुम्भा जी के पुत्र उदयसिंह (प्रथम—महाराणा प्रताप के पिता नहीं) द्वारा की गई पिता की नृशंस हत्या, ये दोनों ही घटनाएँ लोगों को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। जहाँ पहली घटना हृदय में हर्ष और अत्यन्त आदर भाव उत्पन्न करती है तो दूसरी हृदय में शोक और घृणा को। एक मेवाड़ के गौरव को बढ़ाती है तो दूसरी कलंक रूप है। इसी भाव को लेकर मीरांबाई ने यह पद बनाया हो ऐसा प्रतीत होता है।

साधन प्रारम्भ होता है तब साधक को दिव्य ज्योति के अनेकों चमत्कार दिखाई देते हैं। संतो·········म्हाले छे=संत व योगी जन इस प्रकार साधन भजन करके ही यह दुर्लभ मानव जन्म सार्थक करके वैकुण्ठ अथवा कैवल्यधाम-आनंद लोक को प्राप्त करते हैं।

विचारिए:--

बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिन ताल जहँ कमल फुलाने तेहि चढि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजर परै।
दसवें द्वारे ताली लागी, अलख पुरुखता को ध्यान धरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूँ न मरै।

८—धोयान ····· मन धोय=मन के विकारादि मैल धोने से ही चित्त निर्मल होता है और साधु व गुरु जन रूप धोबी ही इसे धोने में समर्थ हैं। ताटी·········तोड़=घट का आवरण खोल। पांच पचीसाँ ने=पंच महा भूत सकल इंद्रियाँ उनकी तन्मात्राएँ आदि प्रकृति के तत्व। गारद कर ले=रक्षा के निमित्त नियुक्त कर ले। मंदर ···जोय=देह में ज्ञान की ज्योति प्रदीप्त कर। शील संजोय=शीलादि गुणों को ग्रहणकर।

९—साहेब का ······चकनाचूर=ज्यों खजूर के वृक्ष पर बहुत ऊँचे खजूर लगती हैं, जिसे अत्यन्त परिश्रम और लगन पूर्वक ही कोई उस पर चढ़ कर प्राप्त कर सकता है, परन्तु कष्टों से घबरा कर तथा प्रमादवश बीच में ही लक्ष्य से च्युत होकर जो गिर कर नष्ट हो जाता है वैसे ही प्रभु को प्राप्त करने के लिये लगन और निरंतर दृढ़ साधन करने वाला साधक ही प्रभु को प्राप्त कर लेता है और बीच में ही साधन छोड़ कर श्रद्धा हीन और अकर्मण्य होने वाला तो भवबंधन में अधिकाधिक फँसता जाता है। क्या बख्तर·········धणी से जोर········ होवे हार=बख्तर और ढाल आदि स्थूल शस्त्रादिकों को धारण करना कोई विशेष महत्व नहीं रखता। उस सच्चे शूरवीर की तो तभी परीक्षा होती है कि जब वह ज्ञानरूपी कटारी, गुरू गोविन्द

स्वच्छता पूर्वक सजाने से क्या होगा जब कि मन के मैल को अभी धोया नहीं। इसी प्रकार पर्याप्त आहार करके नाशवान शरीर को पुष्ट बनाने से ही क्या होगा जब कि हरि गुण गान कर जीवन को सार्थक नहीं किया। आणां-आवीयां=बुलाहट आई। झुमखमां=समूह में। कायाने.........वरावे राम=कितनी ही चेष्टा करने पर भी जीव यमपाश में फँसे बिना नहीं रहता। किसी दिन उसे पंच-तन्मात्राएँ, मन और जीव के साथ इहलोक को छोड़ कर परलोक गमन करना ही पड़ता है। तलतल........छोडु राम=यह देह क्षीण होकर छिन्न भिन्न भले ही हो जाय और परिणाम में प्राण भी चले जायँ तब भी प्रभु भक्ति नहीं छोड़ूँ। नदीरे.........रोपावु राम=इस देह का बगीचा बनाऊँ अर्थात् संसार में अनेकानेक विविध कर्म करूँ और प्रभु प्रेम में नयनों द्वारा बहे हुए जल की नदी के किनारे, उपरोक्त बगीचे में चंपा रूप पुण्य कर्मों का बीज बोऊँ।

१३—रुचि.........लगायो=सुन्दर भोजन द्वारा तन मन का पोषण तो किया परन्तु प्रभु की ओर न मोड़ कर भवताप में ही तपाया। रत्न.........लड़ायो=रत्न के समान पुत्र की रक्षा का यत्न करते हुए क्षण क्षण में उसे मोह वश लाड लडाया। तरीया.........पायो रे=अपने पति के तन मन धन को सब प्रकार से लूट खाने वाली और अन्त तक पति के साथ चलने का दावा करने वाली स्वयं अर्द्धाङ्गिनी भी अपने पति के मर जाने पर 'इसे शीघ्र घर से बाहर निकालो' इस प्रकार बार बार कहती हुई वह एक क्षण भर भी अपने पति के शरीर को घर में नहीं टीकने देती। चरणे=चरणों में। रही=रह कर भी। चरण न धरायो रे=चरणारविंदों की शरण न ली।

विशेष:—विचारिए :—

हरि बिन कोई काम न आयो।

तिरिया कहत मैं संग चलूँगी, धोंस धोंस धन खायो।

चलती बेर मोड़ मुख बैठी, कदम एक ना बढ़ायो।

आसा करि करि जननी जायो, बहु विधि लाड लडायो।

शरीर में सर्व प्रकार की शक्ति रहते समय ही यदि जीव भगवद्भक्ति प्राप्त कर ले तभी अन्त समय में वह यम-यातनाओं से मुक्त होता है।

१६—गहरी............रहना=यह जीव जन्मों तक भटकता हुआ इस शरीर को प्राप्त हुआ है और यह भी अब जीर्ण हो गया है इसलिए इस भवसागर से पार होने के लिये भगवद्भक्ति का साधन करना चाहिये।

अधिक चरण:—

पांच तत्व को बन्यो पींजरो, मांहि सहलानी मैना।
राग द्वेष किनसे नहीं करना, तन मन से समता गहना॥

२०—कोई.........हवेली रे=बद्ध जीव हरि-भक्ति की ओर न मुड़ कर अपने भोग-विलास के लिए कोई बाग बगीचे तो कोई हवेली बनाते हैं अर्थात् विचारवान-जिज्ञासु जन कोई तो भक्ति का साधन करते हैं और कोई ज्ञान का। आरे.....वेली रे=इस देह में दया, धर्म, परोपकार आदि सात्विक-दैवी भावों का निवास है त्यों अधर्म, अनीति, काम, क्रोध, लोभ मोहादि रज व तमोगुण-आसुरी भावों का भी। किन्तु सात्विक भाव रूपी केसर का त्याग कर विषय रूप आसुरी भावों की विष वल्ली का ही प्रायः पोषण करता है। पाळ.........पहेली रे=मनुष्य को चाहिए कि अपने में रहे हुए सात्विक भावों को जागृत कर इस देह के कालग्रसित होने के पूर्व ही भक्ति ज्ञानादि साधन करते हुए निर्भय हो जाना चाहिए।

२२—हँसला री सेज=हंस की शय्या, हंस क्षीर विवेक की साधना। हजारी हँसो=सहस्र दल कमल स्थित जीव रूप हंस-प्राण। पावणो=पाहुना, स्थिरता से न टिकने वाला।

भावार्थ:—सुरत............पावणो है=साधन क्रम में प्रथम चित्तवृत्ति में हंस के नीर क्षीर विवेकवत् सदसद्विवेक से संसार में व्यवहार करने का स्वभाव डालना चाहिये अर्थात् निरन्तर सहस्रोंश्वास-प्रश्वास करने वाले असत् शरीर व संसार की ओर से चित्तवृत्ति को मोड़ कर उसे सत् वस्तु-परमात्मा की ओर लगाना चाहिये।

२५—रैंटिया……निकस्यो जाय=मनुष्य जीवन किस प्रकार व्यतीत किया जाय कि जिससे भव-बन्धन छूट सके। सजन……… बनास्यां ए माय=विधाता ने यह मनुष्य शरीर रूपी चरखा बना दिया है जिसमें सात्विक मन की माल बनावें। प्रेम ………भराई ए माय=त्रिगुण युक्त शुभाशुभ संस्कार दिये हैं सो सत्संग द्वारा ज्ञान प्राप्ति करें। पांच………चडावे ए माय=चित्त की पांच वृत्तियों के कारण ही जीव संसार बन्धन में है परन्तु उसका विवेक न होने से बन्धन अधिक दृढ़ हो जाता है। सुरत…… ……ले जावे ए माय=चित्तवृत्ति को प्रभु की ओर लगाने से ही आत्मा आकाशवत् अथवा जल-कमलवत् संसार से ऊपर उठ जाती है। ज्ञान सूत……… सूगी………दिराइ ए माय=पहुँचे हुये सद्गुरू की कृपा से सहज साध्य साधन द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होने पर प्राण शक्ति के ऊर्ध्वमुखी हो जाने से साक्षात् भगवद् अनुभव होता है।

२८—मकनो………हारी रे=इस मन रूप मदमत्त हाथी को सत्संगति-ज्ञान—प्रभु-प्रेम और वैराग्यादि विवेक विचार रूप अंकुश द्वारा प्रयत्न पूर्वक समझाती रहती हूँ।

२६—तमे……आदिल………दीवो करो रे=ज्यों सागर में अनन्त रत्नादिकों का भण्डार है त्यों यह शरीर भी अनेको शुभाशुभ संस्कार और भावों का भण्डार है इसलिए मुमुक्षु को चाहिये कि वह अपने शुभ संस्कारों और सात्विक भावों को जागृत करता हुआ ज्ञान प्राप्त करे। आरे………वाडीओ…………झींगोरा=इस शरीर में अनन्त नाड़ियाँ है जिनकी अनाहत नाद निरन्तर सुनाई देती है। आरे…… ……सरोवर………कल्लोला=इस देह रूप सरोवर में जीव रूप हंस नित्य आनन्द विहार करता है। आरे ; ··· हाटडां………अपरंपारा छे=इस देह शरीर में अच्छे बुरे सभी संस्कार हैं परन्तु साधक को विवेक विचार द्वारा चित्त को प्रयत्न पूर्वक भगवदाभिमुख ही बनाना चाहिये।

३०—भग्यां=खुल गये। साकुट=खल।

विचारिए :—

आज दिवस लेऊँ बलिहारा। मेरे घर आया राम का प्यारा॥

(रैदास)

३६—विशेष—अपने आनंद मय स्वरूप अर्थात् परमात्मा के अंश को लेकर मृत्यु-लोक में अवतरित हुवे जीव को इस पद में उपदेश किया है।

मान.........काया=अपने परमात्म रूपी अमृत भरे मान सरोवर को छोड़ कर हे जीव रूप हंस, तुम इस नाशवान देह रूपी भवसागर में कैसे आये ? इस खारे सागर को छोड़ कर तुम फिर लौट कर अपने मान सरोवर को चले जाओ। हंसलानी......चरणिये=हंस क्षीर न्याय के विवेक को समझने वाले साधु संतों की संगति करनी चाहिये और उन्हीं में बैठ कर हरि भक्ति और ज्ञान चर्चादि सत्संग करना चाहिये।

४०—विशेषः—इस पद में उत्तम जनों की संगति को व्यक्त करने के लिए गरवी गाय ना दूध, आम्बलियानी छाय और नीच जनों की संगति के लिये आकड़ियाना दूध और वावलनो काँटो इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

४१—भावार्थः—भगवत्प्राप्ति का मार्ग और इंद्रियों को वश करने का काम बड़ा ही विकट-दुष्कर है। अपने पुरुषार्थ द्वारा भवसागर पार करने वाला लाखों में कोई विरला ही पुरुष होता है, कबीर जी का भी एक पद इसी भाव का है:—

गुरु बिन कौन बतावे बाट। बड़ा विकट यम घाट ॥०॥
भ्रांति की पहाड़ी नदियाँ बिच मो, अहंकार की लाट ॥
काम क्रोध दो पर्वत ठाढ़े, लोभ चोर संघात ॥
मद मत्सर का मेहा बरसे, माया पवन वहे दाट ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, क्यों तरना यह घाट ॥

श्री गीता जी में भी भगवान ने कहा है:—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्तितत्वतः ॥

अर्थात् सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक ही सिद्ध्यर्थ प्रयत्न

पाठान्तर:—

कोई कहिये तेने कहेवा रे दइए ।
आपणे हरि भजन मां रहिये ॥०॥
हीरा पणुं तव जाणिये आपण घाव घणारे सहियेरे ॥१॥

सासू........लीज्यो रे=योग साधन द्वारा चित्त वृत्ति रूप नारी को शून्य महल में पोढ़े हुए परमात्मा रूप पति को प्राप्त करना है परंतु वहाँ पहुँचने के मार्ग में सुपुम्ना और उसके द्वार पर सोई हुई कुण्डलिनी ये दोनों बाधायें हैं इन्हें पार करके ही जीव ऊपर उठकर अपने ध्येय को प्राप्त कर सकता है। हर की.....लीज्यो=जैसे जैसे चित्त वृत्ति प्रभु मयी होती जाती है वैसे वैसे, स्थिर आसन में ध्यान मग्न बैठे हुए स्थूल शरीर के भीतर जीव अपनी सुध बुध भूल जाता है—योग निद्रा को प्राप्त होता है। भँवर.... ...रंग भींजे=सुषुम्ना साधन के अभ्यास करते समय जैसे जैसे भीतर के दिव्य विषयों का अनुभव होता जाता है वैसे वैसे आत्म प्रतीति होती जाकर जीव अधिकाधिक आनंद को प्राप्त होता है भँवर गफा........संजोयो= सुपुम्ना के बीच न्यूनाधिक अंतर पर अनंत नाड़ी पुञ्ज हैं उनमें पञ्च तत्वों के स्थान बने हैं जिन्हें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत और विशुद्ध चक्र कहते हैं। साधन द्वारा इन्हें जागृत करने की आवश्यकता होती है। मगन...........बोलो=समस्त अविद्यादि क्लेशों के मिटने के पश्चात् चित्त वृत्तियों का निरोध होते ही अपने प्रिय तम प्रभु को पाना होता है—अपने आनंद स्वरूप में स्थित होना होता है। केवे.....भागो=मीरांबाई कहती है कि अज्ञान रूप घोर निद्रा में सोने वाले हे जीवो! अब जग जाओ और सत्वर ही परमात्मा की शरण में चले जाओ। एक मात्र उन्हीं की कृपा से संसार के माया—भ्रमादि क्लेश छूट जाते हैं।

५४-ज्ञत=सिखावन गति विधि से शिक्षा। बावे=फेंकता है। पवन.....सहिरे=आँधी—वर्षा आदि का सुख-दुःख सहता है। आसन........धर रे=वृक्ष के समान स्थिर आसन व चित्त से प्रभु का ध्यान करना चाहिये।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्म बुद्धिप्रसादजम् ॥

'वह सुख प्रथम साधन के आरम्भ काल में यद्यपि विष सदृश भासता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है, इसलिये जो भगवत्-विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ सुख है वह सात्विक कहा गया है।'

गीता १८-३६

वेद·······साख = वेद में भी (इसके लिए प्रमाण है, वेद भी साची है।

७७—सुकानी = कर्णधार।

७८—ओळगणे = प्रभु प्रेमी। मैं············कांई = चित्त प्रभु में ऐसा तन्मय हो गया कि अब उनसे भिन्न कोई दिखाई ही नहीं देता। चढ़ी············आई = ज्यों सागर की लहरों में बहती हुई नाव पर पृथ्वी की कोई बाधा प्रभाव नहीं डाल सकती त्यों प्रभु-प्रेम में मन के रंग जाने पर सांसारिक मनोवृत्ति का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। ज्या का·········कोई = जिसमें अपने प्राणों को न्यौछावर करने का साहस है। शूरा·········मांह्य = रण में अविचल रहकर जूझने वाले ही शूर और रण से भागने वाले कायर होते हैं त्यों प्रभु-प्राप्ति के लिए भक्ति करते हुए सांसारिक प्रलोभनों से संघर्ष करने वाले ही वास्तव में पुरुषार्थी हैं। जग·········होई = संसार सब नाशवान है केवल प्रभु के प्यारे संत ही निश्चित, निर्बाध और कीर्ति रूप से अमर है।

विशेषः—यह पद कुछ अंश में संत कबीर के पद से मिलता है, विचारिये।

शूर संग्राम को देख भागे नहीं,
देख भागे सोई शूर नाहीं ॥०॥
कहत कबीर कोई जूझि है शूर मा,
कायरां भीड़ तहँ तुरत भाजै ॥३॥

७९—विशेषः—इस निर्गुणी ज्ञान के पद का भाव बड़ा ही रहस्य पूर्ण है। संसार को सरोवर की उपमा दी है। संसाराभिमुखी

का बड़े उमंग से विवाह किया वही उन्हें दुःख देने लगा और बहुएँ भी ईर्षा करने लगीं।

८३—कोटे=गले में।

८४—एना ....दईयेरे=उसके हाथ में हीरे जैसी अमूल्य वस्तु नहीं देनी चाहिये, उसे अपने रहस्य नहीं बताने चाहिये।

८५—करवो ....गजरो=इस काया रूप बगीचे के फूलों का गजरा बना लेना चाहिये अर्थात् अपने भीतर के दया-परोपकारादि सात्विक गुणों की वृद्धि करनी चाहिए जिससे काया व मन की सार्थकता होने के साथ संसार में कीर्ति भी हो। आ काया वाड़ी नां .... जमड़ो=काल की गति अव्याहत है। यदि विवेक द्वारा प्राणी शीघ्रता पूर्वक सात्विक गुणों को प्राप्त करने में पूर्ण प्रयत्नशील नहीं रहेगा तो निश्चय ही काल काया को ग्रसने के लिये निकट भविष्य में ही उपस्थित हो रहा है। वसमो लागे=कष्ट कर-असह्य लगता है। आथमतो=अस्त होने वाला। दीवड़ो=दीपक। आवारे ....दीवड़ो=सर्वथा माया मोहग्रस्त जीव एक वार भी तो यह अनुभव करले कि भव-व्याधि से छूटने के लिये कुछ भी उपाय न करते हुए प्राण-ज्योति का बुझ जाना कैसा आत्मघातकारी है। तरछोड़ो=तिरस्कार करते हो। आ प्रीतु ..... पींजरो=प्राणी को देहाशक्ति के कारण पहले के कई शरीरों को छोड़ते हुए नये धारण करने पड़ते रहे।

८६—भावार्थः—गुरु नानक के पद-चरण का सार भी यही है किः—

नानक दुखिआ सब संसारा।
सो सुखिआ जिन नाम अधारा॥

८८—भावार्थः—युवावस्था मोह-माया के चक्र में बीत जाती है और जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं तब कहीं यह ध्यान आता है कि काल अब सिर पर मँडरा रहा है पर तब—'फिर पछताये होत का जब

विशेषः—संसार सत्यासत्य मिश्रित है जिसका रहस्य अनुभव के अंत में परिणाम में ही प्रकट होता है।

६४—कोई..........रहीये=संसार कुछ भी कहे हमें हरि भजन में ही लगे रहना चाहिये। जगत.........सहीए रे=संसारी और भक्त दोनों के सदा से भिन्न मार्ग हैं परंतु भक्त का भक्तपना तो संसारी जन के बोल सहने में ही है। हीरा ने........सहीए रे=हीरा व कंकर समान रंगी दीखते हैं परंतु अनेकानेक प्रहार सहने पर ही हीरे का हीरापन प्रकट होता है ।

६५—(देखिये—पद-३)

६६—मारा.........लीधो रे=मन को अनेक प्रकार से विवेक पूर्वक समझा बुझा कर अब योग-वैराग्य के पथ को स्वीकार किया है।

और भक्तिपथ के भिन्न साधकों को अपनी स्वीकृत साधन प्रणाली के अनुरूप भिन्न भिन्न भावों को उद्दीपन कराने वाली आदि अनेकों अभिलाषायें हुआ करती हैं।

भिन्न साधनों के कारण भाव भिन्नता भले ही दृष्टिगोचर होती हो पर उपर्युक्त अभिलाषाओं की चित्त में प्रेरणा होना भी स्वाभाविक और साधनान्तर्गत है।

अपने साधन की मन्द अथवा तीव्रगति के कारण, चाहे निकट भविष्य में अथवा जन्म जन्मान्तर में अपनी निष्ठा और लगन को धैर्य पूर्वक अखण्ड निभाने वाले साधक को, साधन की सिद्धि होने पर किसी दिन तो अवश्य ही अपनी इष्ट प्राप्ति होकर रहती है। अपनी चिर प्रतीक्षित साध के पूर्ण होने के समय अर्थात् प्रियतम के दिव्य दर्शन और मिलन के मधुरातिमधुर एवं परमानन्दमय मुहूर्त में उनमें सदा के लिये तद्रूप हो जाने की साधक मात्र की परम अभिलाषा रहा करती है। यों तो येन केन प्रकारेण परम दुःख रूप भव बन्धन से मुक्त होकर अपनी वास्तविक आनन्द स्वरूप स्थिति को प्राप्त करने की मानव मात्र की अभिलाषा होती है। किसी भी परम यत्नवान् साधक की अभिलाषाओं के स्वप्न किसी दिन तो अवश्य ही सत्य सिद्ध हो जाते हैं। तब वह पूर्ण काम बन जाता है। ध्याता-ध्येय, आराध्य-आराधक एक हो जाते हैं। प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है।

मीरांबाई के हृदय में भी समय-समय पर भिन्न-भिन्न सुन्दर और मधुर अभिलाषाओं की स्फुरणा हुई है जो कि इस विभाग के पदों से व्यक्त होती है।

सूर्य ग्रहण के पर्व पर कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्णचन्द्र ने द्वारिकापुरी से ही आकर विरहिणी गोपरमणियों को अपने द्दिव्य दर्शन आलिङ्गन द्वारा उन्हें परमानन्दमयी स्थिति का अनुभव कराकर कृतकृत्य कर दिया था।

महाराणीजी श्रीरुक्मिणी देवी ने भी दुष्ट शिशुपाल के हाथ से अपने को बचाने और अपना पाणिग्रहण करने के लिये विप्र के साथ श्रीकृष्ण को श्रीद्वारिकापुरी ही संदेश भेजा था।

द्रौपदी महाराणी ने भी दुष्ट दुशा:सन द्वारा चीर हरण के समय "गोविन्द द्वारिका वासिन् कृष्ण गोपीजन प्रिय" (महाभारत द्यूतपर्व अध्याय ६८ श्लोक ४१) कह कर द्वारिकावासी कृष्ण को ही पुकारा था।

सम्भव है कि उपरोक्त प्रसंगों का स्मरण होने पर मीरांबाई को द्वारिका जाने की प्रेरणा हुई हो। वैसे ब्रज की अनन्य निष्ठा को तो यह भी स्वीकार नहीं कि श्याम सुन्दर ब्रज वा वृन्दाबन के बाहर एक भी पग धरते हैं।

मन का समाधान करने की चेष्टा करते हुए भले ही उपर्युक्त बातें कही जांय फिर भी वास्तव में देखा जाय तो मीरांबाई जैसी महान् विभूति को, उसके यथार्थ मानस को एवं उसके लीला रहस्य को भला ब्रजरस की साधना व अनुभव हीन सामान्य जन समझ ही कैसे सकते हैं!

श्री मद्भागवत् रूप प्रेम सुधा सागर में जिसने गोते लगाये हैं, गहराई में जाकर उसके रहस्य को पाया है और ब्रज की अलौकिक व अनन्त महिमा को तथा उसके वास्तविक व्यापक स्वरूप का अनुभव किया है वह प्रेमी भक्त तो स्थूल दृष्टि से ब्रज के बाहर रहते हुए भी वास्तव में ब्रज में ही रहता है।

वैसे ही यहाँ भी उस परमात्म तत्व रूप सुवा को अपने हृदय रूप पिंजर में वन्द कर, वड़े लाड़ से अपनी भिन्न प्रेम सेवाओं द्वारा रिझाकर उसे अपना बनाने की अभिलाषा इस पद से व्यक्त होती है।

सुवे और खिलौने के रूप में भले ही न हो पर उस परमात्मा को प्रबल प्रयत्न पूर्वक किसी भी प्रयोग द्वारा सन्त नामदेव भी रिझाते दिखाई देते हैं, यथाः—

प्रेम फांसा घालुनि गळां। जित धरिले गोपाळा ॥
एक्या मनाची करुनी जोड़ी। विट्ठला पायीं घातली वेड़ी ॥
हृदय करुनी बन्दी खाना। विट्ठल कोंडुनि ठेविला जाणा ॥
सोहं शब्दे मार केला। विट्ठल काकुलति आला ॥
'नामा' ह्मणे विट्ठलासी। जीवेंन सोड़ी सायासी ॥ मराठी छं०॥

प्रेम पाश गले में डालकर गोपाल को पकड़ लिया है, मन की वेड़ी विट्ठल के पैर में डाल दी है, हृदय रूप कारागार में विट्ठल को वन्द कर दिया है। सोहं शब्द की ताड़ना से विट्ठल हत वीर्य हो त्राहि त्राहि पुकारने लगा। 'नामा' कहता है कि प्राण-पण से भी विट्ठल को नहीं छोड़ा जायगा।

दोनों में अन्तर यही है कि जहाँ उकताकर अधीर नामदेवजी अपने विट्ठल को किसी भी निर्गुण प्रयोग द्वारा नतमस्तक कराने को कृत संकल्प दिखाई देते हैं, वहाँ मीरांवाई ने अपने सुवा को वश करने के लिये कितने सुन्दर और मधुर सेवा भाव के प्रयोग को अपनाया है और यह रहस्य नामदेव के पद में जितना प्रकट है उतना ही वह मीरां के पद में प्रछन्न (देखो पद १३ वाँ का विशेप-गूढ़ार्थ)।

(११) शामळोवरेणुं मारे साचुं रे ।

वह श्यामसुन्दर की है और श्यामसुन्दर उसके हैं, उसके प्रियतम हैं। एक बार इस प्रकार की श्याममयी भावदृष्टि जब मीराँ की बन गई तब वह साधारण साधक की भाँति केवल प्रभु के दर्शन मात्र से ही भला कैसे संतुष्ट रह सकती है ? वह तो स्पष्ट रूप से अधिकार पूर्वक ठाकुर जी को सुनाती है कि—

(१०) दरसन द्यो तो सनमुख दीज्यो,
जद आवे पतियारो ।

यही नहीं द्वारिका से डाकोर में पधारे हुए ठाकुरजी से वह अपने हृदय की, उनमें समा जाने की (सदेह सारूप्य मुक्ति की) अपनी परम अभिलाषा को व्यक्त करते हुए गाती है—

(५) हांरे चालो डाकोर मां जई वसिये ।
हांरे अंगों अंग जई मळियेरे ।

इसके लिये 'द्वारिकावास' और 'दासी' होकर सेवा करने की उसकी अभिलाषा है—

(६) द्वारिका को वास हो मोहि ।
(७) बन जाऊं चरण की दासी ।

मीराँबाई के प्रभु गिरधर ना गुण,
तारा चरण कमळ पें मन राखुं रे ॥४॥

भक्तिभाव ४ (गुज०)

ध्यान धणी केरूं धरवुं रे, बीजुं अमारे शुं करवुं ।
शुं करवुं रे सुंदिर श्याम बीजुं अमारे शुं करवुं ॥०॥
नित्य उठीने अमे नाहीए ने धोइए रे,
ध्यान धणी तणुं धरीए रे ॥१॥
संसार सागर महा जळ भरीयो रे,
तारे भरोसें अमे तरीये रे ॥२॥
साधुजनो ने व्हाला भोजन जमाडीये रे,
जुठुं वधे ते आपण जमीए रे ॥३॥
वृन्दावन मां व्हाले रास रच्यो'तो रे,
रासमंडळ मां अमे रमीए रे ॥४॥
हीरना चीर अमने काम न आवे रे,
भगवां प्हेरीने अमे फरीए रे ॥५॥
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमळ मां चित धरीए रे ॥६॥

रूपासक्ति ५ (गुज०)

हांरे चालो डाकोरमां जइ वसिये,
हांरे मने लेह लगाडी रंगरसिये रे ॥०॥
हांरे प्रभातना पहोरमां नोबत वाजे,
हांरे अमे दरशन करवा जइये रे ॥१॥
हांरे अटपटी पाघ केसरियो वाघो,
हांरे काने कुंडळ सोइये रे ॥२॥

खीर खांड पकवान मिठाई, ऊपर घीना लाइूँ ।
म्हारा मनमां येही वसे छे, अपने हाथ जमाइूँ ॥२॥
सोना रूपा नो भूलो बंधावूँ, रेशम नो वँध बाँधूँ ।
म्हारा मनमां येही वसे छे, अपने हाथ भुलावूँ ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नित नित ध्यान लगाऊँ ।
म्हारा मनमां येही वसे छे, चरण कमळ गुण गाऊँ ॥४॥

ज्ञान ९

भजन कटारी मारी रे मेवाड़ा राणा ॥०॥
म्हारे तो आंगण रामा तुलसी नो क्यारो भाई, सींचत २ हारी ॥१।
म्हारे तो आंगण रामा गुड़ला हींसे भाई, चाबुक दे दे हारी ।२।
म्हारे तो आंगण रामा हस्तीडा घूमे भाई, अंकुश दे दे हारी ।३।
म्हारे तो आंगण रामा तपसी तापे भाई, सेवा कर कर हारी ।४।
मीराँ ने प्रभु गिरधर मिलिया भाई, चरण कमल बलिहारी ।५।

द्वारिकावास-विनय १०

पुरी में श्याम है म्हारो ।
असी कोस की झाडी लगत है, चलणा रो काम करारो ।
पुरी में श्याम है म्हारो । जहां वसे मोहन मुरलीवारो ॥०॥
आस पास रतनागर सागर अध विच सोना रो क्यारो ॥१॥
दरसन द्यो तो सनमुख दीज्यो जद आवे पतियारो ॥२॥
मीराँबाई के हरि गिरधर नागर शरण हि राख उबारो ॥३॥

भगवद्भूषण ११ (गुज०)

मुज अबळा ने मिरांत मोटी शामळो घरेणुं मारे साचुं रे ॥०॥
वाळी वडावुं विट्ठलवर केरी, हार हरिनो मारे हइए रे ।
चित्त माळा चतुर्भुज चुडलो, शीद शोनी घेर जइए रे ॥१॥

केसर भरियो वाटको सूवा अंग चरचाऊं रे।
मीराँ दासी सूवा की राम राती चरणां चित्त लगाऊँ रे ॥६॥

सेवाभाव (प्रभाती) १४

जागो कृष्ण जागोजी जागो हो बलदाऊ वीर ॥०॥
सोनारी तो झारी मंगाय दऊँ मांय गंगाजल नीर जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, मुख मंजन कराऊँ जी ॥१॥
जगमगियो थांरे जामो सिवाय दऊँ राता रंग की टोपी जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, मेरे हाथ पेराऊँजी ॥२॥
माखन मंगाय दऊँ मिश्री मंगाय दऊँ, और मंगाय दऊँ मेवा जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ जिमाऊँजी ॥३॥
लाड्डू मंगाय दऊँ पेडा मंगाय दऊँ, और मंगाय दऊँ गुंजाजी।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ जिमाऊँ जी ॥४॥
सोनारी तो झारी मंगाय दऊँ, मांय गंगाजल नीर जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ पिलाऊँ जी ॥५॥
काथो मंगाय दऊँ चूनो मंगाय दऊँ, और मंगाय दऊँ पानजी।
मेरे मन में ऐसी आवे, अपने हाथ जिमाऊँ जी ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ बलि जाऊँ जी।
मेरे मन में ऐसी आवे, चित चरणाँ में लाऊँजी ॥७॥

प्रेम १५

साँवरिया प्यारा में तेरे रंग राती।
गोविंदा प्यारा में तेरा गुण गाती ॥०॥
हाथाँ का तो ढकला बना दूँ, आँगल्या की जोदूँ बाती।
ज्ञान सुरत का तेल पुरादूँ, निरत करूं दिन राती ॥१॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेष आदि

२—नैनन·······पाऊँ=जो मैं अपने प्रियतम श्यामसुन्दर को पालूं तो अपने नेत्र कमल में स्थिर करदूं। नाऊँ=गिराती हूँ। इन ······नाऊँरी=मेरे नेत्रों में प्रभु की ही छवि बसती है, इसलिए उस दर्शन सुख से कहीं वञ्चित न रह जाऊँ इस भय से पलकें भी नहीं गिराती हूँ। सुरत जमाऊँ=चित्तवृत्ति स्थिर करती हूँ। त्रिकुटी······ ···बिछाऊँ=जहाँ इड़ा पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ मिलती हैं उस स्थान को त्रिकुटी महल-सुन्न महल-शून्य महल और ब्रह्म रन्ध्र भी कहते हैं। वहाँ प्राणों की शक्ति द्वारा चित्त वृत्ति को लेजाकर स्थिर करके अखण्ड सुख समाधि में मग्न हो जाऊँगी।

३—चुन-चुन·········नांखु'रे=कलियों की शय्या पर भ्रमर जैसे रसिक श्यामसुन्दर के मिलन सुख पर और सब सुख वार डालूं।

५—विशेष:—किंवदन्ती है कि मीरांबाई जब ५ वर्ष की थी तब उसके पिताजी और दादाजी उसे श्री डाकोर जी ले गये थे। तब से श्री डाकोरनाथ जी के प्रति उसके हृदय में गहरा श्रद्धाभाव जम गया था। कहा जाता है कि मेवाड़ त्याग के समय ब्रज में जाने के पहले मीरांबाई के मन में श्री डाकोर जी जाने की लहर हो आई थी। उसी समय के भाव इस पद में व्यक्त हैं। पद की अंतिम कड़ी "अंगो अंग जइ मळिये रे" अर्थात् अपने स्थूल शरीर से साक्षात् श्री विग्रह में समा जाने की उसकी उत्कट अभिलाषा, अंत में अपनी अनन्य निष्ठा व प्रेम के बल पर द्वारिका में उसने पूर्ण करके ही छोड़ी।

६—विशेष:—मेवाड़ त्याग के पश्चात् श्री भगवान श्यामसुन्दर के शरण में श्री द्वारिकापुरी के वास के लिये मीरांबाई जी के हृदय में कितनी उत्कण्ठा थी वह इस पद से व्यक्त होती है।

६—भजन·········मारी=चित्त के अशुभ संस्कारों को छेदन करने के लिये भजन रूप तीक्ष्ण शस्त्र का उपयोग किया अथवा प्रभाव-

नूतन शृंगार पूर्ण संसार रूपी सुसराल में अब कोई त्रुटि नहीं रही; जीवन सार्थक हो गया।

१२—विशेषः—केशरी रंग आत्म बलिदान का द्योतक है इसीलिए वीर क्षत्रिय युद्ध में केशरिया बाना धारण कर मर मिटते थे परन्तु कभी शत्रु के अधीन नहीं होते थे। उनका आत्मोत्सर्ग "केशरिया करना" सर्वत्र विदित है। इस पद की अन्तिम कड़ी में भी यही भाव है। अंगों में केशरी रंग का लेपन करना ही अपने नाम रूप को मिटाना है।

गूढ़ार्थः—अपने हृदय पिञ्जर में सुवा रूप परमात्मा को बसाने (च० १) श्रवण कीर्तनादि द्वारा उसे रसामृत पान कराने (च० २), प्रेम मन्दिर में पधराकर हृदय के मधुर भावों द्वारा स्वागत करने (च. ३) संकीर्तनादि आनन्द महोत्सव मनाकर गीत वाद्य नृत्यादि द्वारा उसे रिझाने (च० ४) सात्विक गुणों को आत्मसात् करके तदानुसारी भावों द्वारा उपासना करने (च० ५) और इस प्रकार अन्त में अपनी कायापलट करके सर्वभावेन आत्मनिवेदन कर उसमें समाजाने की साधक की उपासना पद्धति इस पद में व्यक्त है अथवा हृदय रूप पिंजर में बद्ध हुए जीवात्मा को—उस प्राण तत्व को (च० १), प्राणायाम व खेचरी साधन द्वारा (च० २), मूर्च्छित कुण्डलिनी शक्ति को शनैः शनैः सुषुम्नान्तर्गत भिन्न चक्रों में प्रवेश कराने (च० ३), अनाहत नाद तथा दिव्य रूपादि द्वारा चित्त वृत्ति को सर्वथा अन्तराभिमुखी बनाकर (च० ४-५), अन्त में दशम द्वार ब्रह्म रन्ध्र में पहुँचाकर अहं शक्ति को क्रिया शून्य बनाकर परमात्मतत्व में एक रूप हो जाने की—वास्तविक आनन्द स्वरूप में मिला कर जीवात्मा को कैवल्य लाभ प्राप्त कराने की अभिलाषा इस पद में व्यक्त है।

इस पदानुगत रहस्य भरे भाव को परम भक्त नरसिंह महेता ने इसी के समान भावात्मक अपने पद में, देखिए किस प्रकार व्यक्त किया है:—

ज्ञान कटारा कस कर बांधूँ, सुरत कमान चढ़ाऊँ ।
कस कस बाण मारूँ भीतर को भरम के बुरज ऊडाऊँ ॥४॥
चन्द्र सूर्य दोउ समकर राखूँ, सुख मन सेज बिछाऊँ ।
कहत कबीर सुनौ भाई साधो, ज्योत से ज्योत मिलाऊँ ॥५॥

—※※※—

मानव मात्र में 'आनन्द' एवं 'स्वतंत्रता' का अभाव है। इस अभाव की निवृत्ति के लिये जीव अपने मन-बुद्धि तथा तर्क से नाना कर्मों में प्रवृत्त होता है परन्तु सुख के स्थान पर वह अधिकाधिक दुःखमयी स्थिति को प्राप्त होता जाता है। संसार नाशवान, क्षण भंगुर, असार और दुःख रूप है ऐसा ज्ञानोपदेश वृद्ध और अनुभवी संत-महात्मा करते आये हैं व शास्त्रों में भी यही लिखा है परन्तु यह सब सुनते-पढ़ते हुए भी जीव को जब तक स्वानुभव नहीं हो जाता तब तक उसकी प्रत्येक कर्म प्रवृत्ति के पीछे संसार के शाश्वत और सुखमय होने की ही भावना काम करती है। मानव अपने पुरुषार्थ से मनोवाञ्छित सुखमयी परिस्थिति का निर्माण कर अपने संसार को स्वर्ग बनाने की अभिलाषा रखता है परन्तु अंत में इसके विपरीत उसे यह अनुभव होता है कि इस संसार में सुख की आशा रखना मृग-मरीचिका के समान है। मानव प्रयत्न ही केवल अपने वश की बात है कर्म फल नहीं, सुख मात्र के पीछे दुःख की परम्परा लगी है। प्रियजनों का सहवास स्थिर नहीं, देह के पीछे व्याधि अवश्यम्भावी है और निरन्तर सिर पर काल-चक्र घूमता रहता है। तभी जीव को शाश्वत शान्ति एवं आनन्दानुसंधान करने की प्रवृत्ति होती है परन्तु तब उसे अपनी अल्पताओं का अनुभव होता है कि सांसारिक स्वार्थी मनोवृत्ति, मोहादिक प्रबल प्रलोभन, तृष्णा की दावाग्नि और माया की प्रचण्ड आंधी में अपने आपको अविचलित बनाये रखने की उसके मन की क्षमता नहीं और भवसागर के प्रलयंकर थपेड़ों के बीच में अपने आपको सुरक्षित और अक्षुण्ण बनाये रखने की साधना भी नहीं। इस प्रकार सर्वतोभावेन असहाय और दीन होकर वह मुमुक्षु प्राणी

के वास्तविक स्वरूप को समझने आदि की सच्ची पारमार्थिक जिज्ञासा उत्पन्न होती है। संसार में अब तक कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ होगा कि जिसने प्रकट या अप्रकट रूप से कभी किसी को गुरु न बनाया हो। श्रीराम-कृष्णादि अवतार भी इसके अपवाद नहीं। १४०० वर्ष जीवित रहने वाले महान् योगीराज श्री चांगदेव को भी संत ज्ञानेश्वर की छोटी बहन ११ वर्षीय मुक्ताबाई से ज्ञान प्राप्ति करनी पड़ी थी और "नामदेव कीर्तन करी पुढ़ें नाचे पांडुरंग।" अर्थात् जिनके कीर्तन में स्वयं पांडुरंग भगवान प्रकट होकर नृत्य करते, उस योग्यता वाले भक्त नामदेव को भी भगवदादेश से श्री बिसोवा खेचर को गुरु बनाना पड़ा था।

वास्तव में जो स्वधर्म परायण, दैवी संपत्ति युक्त, पूर्णानुभवी और साधन संपन्न होते हैं, वे ही गुरु हैं। ऐसे ही ज्ञानी महात्माओं की ओर संकेत करते हुए भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने आदेश किया है:—

> तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
> उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः॥
>
> (गीता अ० ४ श्लोक ३४)

"इसलिये हे अर्जुन! तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान। मर्म को जानने वाले ज्ञानी जन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।"

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त सद्गुरु की शरण में जाने की विधि का दिग्दर्शन कराते हुए भगवान श्री शंकराचार्य भी विवेक-चूड़ामणि में उपदेश करते हैं:—

अपनी अन्तर्वृत्ति को भगवदाभिमुखी बना लेना चाहिये। अपने आपको योग्य पात्र सत् शिष्य बना लेने पर ही प्रभु कृपा से सद्गुरु की प्राप्ति होना सुगम और सुलभ हो जाता है।

निःसन्देह गुरुभक्ति निष्ठ शिष्य ही अपने सेवा, अनन्य लगन और गुरु-उपदेशानुसार आचरण, कर्म कौशल और दृढ़ साधना द्वारा गुरु को प्रसन्न करके अपनी इष्ट प्राप्ति कर लेता है।

उसकी दृष्टि में तो गुरु और ईश्वर दोनों अभिन्न हैं। यही क्या एक प्रकार से गुरु ईश्वर से भी बढ़ कर है, यथाः—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े किसके लागूँ पाय ॥
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो बताय ॥

और इसीलिये कहीं पराकाष्ठा की श्रद्धा भरा यह शास्त्र वचन भी सुना जाता है कि—'आज्ञा गुरुणाम् विचारणीया' गुरु आज्ञा के पालन में कोई भी विचार करने की आवश्यकता नहीं।

इस सम्बन्ध में उपनिषद् वाक्य भी विचारणीय है कि 'यानि अस्माकं सुचरितानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि' अर्थात् 'गुरु कहे सो करना गुरु करे सो नहीं।'

गुरु आज्ञा अथवा गुरु उपदेश के विपरीत आचरण करने वाले गुरु द्रोही अथवा गुरुनिंदक के लिये भी शास्त्र वा संत वचन प्रसिद्ध हैः—

=कबिरा ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर ॥
=शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन।

शेप रह गया है। न गुरु में ही शिष्य के प्रति वह प्रेम, अपने उत्तरदायित्व को वास्तविक रूप से समझने का विवेक विचार, पवित्रता, आत्मबल, साधन-सिद्धि और दिव्य सामर्थ्य है न शिष्य में ही गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा, सेवा-भाव, साधना को निभाने का धैय, चारित्र्य-बल, आत्मविश्वास और वह त्याग ही रह गया है। क्या गुरु में क्या शिष्य में अधिकतर स्वार्थ का ही संबंध देखा जाता है। किसी को कण्ठी बाँधने मात्र से ही उसके गुरु बनने का अधिकार प्राप्त हुआ समझा जाता है और वर्ष भर में गुरु पूर्णिमा के दिन गुरु को यथा शक्ति भेंट पूजा करने से ही शिष्य अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। ऐसी परिस्थिति में आज का तर्क प्रधान और भौतिक वादी मानव यदि ऐसे ही धार्मिक और पवित्र कर्त्तव्यों को अश्रद्धा की दृष्टि से देखता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अस्तु।

मीरांबाई के पदों में भी 'गुरु' व 'सद्गुरु' नाम का उल्लेख कई स्थानों में किया गया है, जिसमें यह 'सत्गुरु-महिमा' का पद-विभाग तो केवल तत्सम्बन्धी भावों का ही दिग्दर्शन है। उक्त उल्लेख जिन पदों में है वे विभाग इस प्रकार हैं:—

१–विरह	२२, ३४,	इन २३ पदों में
२–स्वजीवन	१, १८,	'सद्गुरु' नाम
४–निश्चय	२०, ३३, ३६, ८५,	का उल्लेख है।
११–सद्गुरु-महिमा	१, २, ४, ५, ६, ७, ६,	
	११, १२, १३, १५, १७, १८, १६,।	
१२–नाम-माहात्म्य	३,।	

उपर्युक्त 'गुरु' 'सद्गुरु' वा 'परमगुरु' नामोल्लिखित पदों में से अधिकतर पद तो ऐसे हैं कि जिनमें मीराँ द्वारा अपने प्रियतम प्रभु के लिये ही 'गुरु' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

वस्तुतः देखा जाय तो मीरांबाई को अपने स्वामी वा प्रियतम के पास पहुँचने के लिये किसी मध्यस्थ-विशेष की ऐसी कोई अनिवार्य आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि वह नारी है– भगवान् श्यामसुन्दर की अनन्य प्रेयसी है और वह स्वयं भी अपने को पूर्व जन्म की गोपिका समझती है जैसा कि ब्रजभाव के उसके कई पदों से व्यक्त होता है। अब यदि प्रेमिका-पत्नी अपने प्रियतम-पति को ही गुरु-सद्गुरु अथवा अपना सर्वस्व समझती है तो इसे किसी भी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता। साधक अपनी श्रद्धानुसार भाव प्रभु पर आरोपित कर उपासना करता है और 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' के अनुसार वही फल पाता है।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने भी श्री गीता जी में यही आदेश किया है:—

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(श्री गीता अ० १७ श्लोक ३)

'हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है, तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष

'सद्गुरु-महिमा' पर सन्त-महात्मा व शास्त्र के उपदेश वचनः—

★

अविद्या हृदय ग्रन्थि बन्ध मोक्षो यतो भवेत्।
तमेव गुरु रित्याहु गुरुशब्देन योगिनः ॥

'हृदय में अविद्या ग्रन्थि के कारण हुआ भव-बन्धन जिसकी कृपा से छूट जाता है, योगी लोग उसी को गुरु कहते हैं।'

=न गुरोरधिकः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
=नास्ति तत्वं गुरोः परम्।

—(योग शिखोपनिषत्)

=तीरथ न्हाये एक फल, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनेक फल, कहें कबीर विचार॥
=गुरु कुंभार शिष कुंभ। गुरु धोबी शिष कापड़ा॥

—(कबीर)

=गुरु कृपा जेहि नर पर कीन्ही, तिन्ह जग जुगति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविन्द सँग, ज्यों पानी में पानी॥

—(नानक)

=चिंतामणि लोक सुखं सुरेन्द्रः स्वर्ग सम्पदम् ।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगि दुर्लभम्॥

श्री भागवत-माहात्म्य १।१८॥

'चिन्तामणि ऐहिक सुख को और सुरेन्द्र स्वर्गीय सम्पत्ति को दे डालता है किन्तु प्रसन्न हुए गुरु तो योगियों को भी दुर्लभ वैकुण्ठ की भी प्राप्ति करा देता है।

भव व्याधि को मिटाने वाले वास्तव में सत्गुरु ही सच्चे वैद्य हैं:—(६) सत्गुरु औषध ऐसी दीन्ही, रूम रूम भइ चैना, सतगुरु वैद नहीं कोई पूछो वेद पुराना।

इस आत्म कल्याण की प्रतीति होने पर श्री गुरु चरणों के प्रति ऐसी लगन लग जाती है कि जिससे जीव भवबन्धन की मुक्ति का अनुभव पाकर निश्चिंत हो जाता है—(३) मोहि लागी लगन गुरु चरनन की। भौ सागर सब सूख गयो है फिकर नहीं मोहि तरनन की।

इस प्रकार—(७) सत्गुरु भेद बताइया खोली भरम किंवारी हो। सब घट दीसै आतमा, सबही सूं न्यारी हो ॥

श्री सतगुरु की कृपा से भेद बुद्धि व भ्रम की निवृत्ति होने पर भगवद्-लीला के रहस्य एवं आनन्दस्वरूप स्थिति का परम अनुभव पाकर जीव कृतार्थ हो जाता है।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।

आस वही गुरू सरनन की ॥३॥

विरह ४

म्हाँरा सतगुरू वेगा आज्योजी, म्हारे सुखरी सीर बुवाज्यो जी।
तुम बिछुड़्याँ दुख पाउँ जी, मेरा मन माँही मुरझाउँ जी ॥१॥
मैं कोयल ज्यूँ कुरलाउँजी, कुछ बाहरि कहि न जणाउँजी।
मोहि बाघण बिरह सतावैजी, कोई कहिया पार न पावै जी ॥२॥
ज्यूँ जल त्यागा मीना जी, तुम दरसन बिन खीना जी।
ज्यूँ चकवी रैण न भावै जी, वा ऊगो भाण सुँहावै जी ॥३॥
ऊ दिन कबै करोलाजी, म्हारे आँगण पाँव धरोला जी।
अरज करै मीराँ दासी जी, गुरु पद रज की प्यासी जी ॥४॥

दर्शनानन्द ५

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले इक छिन में ॥०॥
पिया मिल्या मोहि किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि ने ॥१॥
सतगुरू सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में ॥३॥

विरह ६

री मेरे पार निकस गया सतगुरू मारचा तीर।

विरह भाल लगी उर अंदर व्याकुल भया सरीर ॥०॥

इत उत चित चलै नहिं कबहूँ डारी प्रेम-जंजीर।

कै जाणे मेरो प्रीतम प्यारो और न जाणै पीर ॥१॥

कहा करूँ मेरो बस नहिं सजनी नैन झरत दोउ नीर।

मीराँ कहै प्रभु तुम मिलियाँ बिन प्राण धरत नहीं धीर ॥२॥

ज्ञान ७

लागी मोहिं राम खुमारी हो ॥०॥

रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी ।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी ॥२॥
ऐसा वैद मिलै कोइ भेदी, देस विदेस पिछानी ।
तासों पीर कहूँ तनकेरी, फिर नहिं भरमों खानी ॥३॥
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी ।
रैदास संत मिलै मोहि सतगुरू, दीन्हा सुरत सहदानी ॥४॥
मैं मिलि जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ।
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ॥५॥

ज्ञान ११ (गुज०)

ए कहता जाजो, अमारा महियर नी वात-सद्‌गुरू कहता जाजो ।०।
साधुड़ा ने जोइ रे तुलसी जी माळा-तिलक छाप तुलसी नी माळा
—सोहाये अमरापुर वाला ॥१॥
ए भवसागर मां भय घणेरो, नथी उतर्या नो आरो ।
मारा गुरू ने एम जाइ कहेजो-आणां मोकलजो ने वहेलां ।२।
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण हरि चरणे चित राखो ।
संत शब्दों ने ओळखो ने प्रेम नो रस तमे चाखो ॥३॥

आनन्दोल्लास १२

आज मेरो भाग जागो साधू आये पावणा ॥०॥
अंग अंग फूल गये, तन की तपत गये ।
सद्‌गुरू लागे रामा, शब्द सुहावणा ॥१॥
नित्य प्रति नैणाँ निरखुं, आज अति मन में हरखूं ।
बाजत है ताल मृदंग, मधुर से गावणा ॥२॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, छबी देखी मन मोहे ।
मीरांबाई हरख निरख, आनंद बधामणा ॥३॥

जमुना के धोरे धोरे, गऊ का चरावणा ।
बाई मीराँ ने गिरधर मिलग्या, बंशी का बजावणा ॥४॥

ज्ञान १५

सुरता सत्रागण नार कुंवारी क्यूं रही ।
सतगुरू मिलिया नांय कुंवारी चीरा यूं रही ॥०॥
सतगुरू वेगि मिलाय छिन में सात्रा सोदिया ।
झटपट लगन लखाय ब्याव वेगो छेड़िया ॥१॥
अड़द सुड़द के बीच रतन चंवरी रची ।
हर हतलेवा जोड़ सुरत फेरा फरे ॥२॥
भाभल दीजो डाइजो रतन धन चार पदारथ प्रेम रा ।
गेणो म्हारे ज्ञान रो पैराव हार हर नाम रा ॥३॥
छोड़या छोड़या मामा मोसाल भुवा दस वेनड़ी ।
छोड़यो म्हारी सहेल्यां रो साथ गुरां आगे जा खड़ी ॥४॥
परण परणाय घणा दिन रही म्हारा बाप रे ।
अब म्हूँ चढ़ गई ढोल बजाय घर चाली आपणे ॥५॥
भँवर गफा रे मांय पुरुष एक सार है ।
सत सत कह मीराँ दास वही भरतार है ॥६॥

प्रेम-लगन १६

लागन रा वोपार प्यारी करलों गुरां संग यारी ।
यारी हो कटारी मारी ॥०॥
प्रेम कटारी म्हारे अंगड़ा में बींदी वाला,
निकली कलेजा पार प्यारी, प्यारी हो कटारी० ॥१॥
काम काज म्हांने कछु न सुहावे वाला,
विरथा विघन कर डारी, डारी हो कटारी० ॥२॥
अनड़ो न भावे नैणा नींद न आवे वाला,
रात दिवस विच जागी, जागी हो कटारी० ॥३॥

अपने मंदिर में ढोलक बजावे,
ढोलक के नाद में राम नाम गावे ॥१॥
फूट गया कलसा बिखर गया पाणी,
उड़ गया हंसा ये काया बिरानी ॥२॥
हाट बजार में मीराँ की बानी,
सद्गुरू के चरणों में मीरांबाई राणी ॥३॥

निश्चय २०

कोई कछू कहे मन लागा रे ॥०॥
मीराँ तो संतो में मिल गयी, ज्यों सोने में सुहागा रे ॥१॥
मीराँजी तो ऐसी मिल गयी, ज्यों गुदड़ी में धागा रे ॥२॥
लोग कहे मीराँ बिगड़ चुकी है, बांका भरम बांने खागा रे ॥३॥
हंस की चाल हंस ही जाने, क्या जानेगा कागा रे ॥४॥
मीराँ तो सूती श्याम भवन में, सतगुरू आय जगागा रे ॥५॥
मानुप जन्म ले हरि नहीं गायो, काल उसको खागा रे ॥६॥
सतसंगत और राम भजन कर, जन्म जन्म भी भागा रे ॥७॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जन्म-मरण भव भागा रे ॥८॥

शरणागति २१

म्हाने संतां में रमती ने मती बरजो म्हारी माय ।
सतगुरू सरण में जास्याँ ॥०॥
राम नाम की जहाज बणास्याँ ।
में तो भवसागर तीर जास्याँ ए माय ।१
अड़सठ तीरथ गुरजी के चरणां ।
सड़सठ तीरथ न्हास्याँ ए माय ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
म्हारे सतगुरू घणा दयालु ए माय ।३।

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

३—पाठान्तर :—

मोहे लागी लटक गुरू चरनन की ।
गुरू चरनन की भव तरनन की ॥०॥
संत चरण बिन और न रुचे कछु ।
जुठ माया ये सब स्वप्नन की ॥१॥
संसार सागर सूक गया सब ।
फिकर मिटी है अब मरनन की ॥२॥
बाई मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर ।
उलट भई मोरे नयनन की ॥३॥

४—सुख········बुवाज्योजी=आनन्द का शीतल स्रोत बहा देना । कुरलाऊँ=व्यथित स्वर से पुकारती हूँ । खीना=खिन्न, क्षीण । भाण=सूर्य ।

५—दीदार दिखाया=दर्शन दिये । सतगुरू········धुन में=सद्गुरु ने कृपा करके परमात्मा-जीवात्मा में अभेद भाव की प्रतीति कराई, उस ज्ञान की धुन में ध्यान लगाया है ।

७—खुमारी=नशे का मद । दामणी=बिजली । सतगुरू········न्यारी हो=भिन्न-भिन्न देह में वर्तमान जीवात्मा वस्तुतः एक ही है और वह अलिप्त निर्द्वन्द्व और अविनाशी है, सद्गुरु ने ज्ञान के इस रहस्य का अनुभव करा कर भ्रम को मिटा दिया । जोउँ=प्रज्वलित करूं । अगम=अगम्य । अटारी=शून्य-शिखर, भ्रकुटी महल ।

१३—सेवरो=सेहरा, पुष्पादि विनिर्मित मस्तक पर धारण करने का अलङ्कार विशेष । धराऊँ=उत्तर दिशा में । धूँधलो=अस्पष्ट । गेरोजी=गहरा । अम्बर=मेघ । मोटड़ीई=बड़ी-बड़ी । हाली=चली ।

विशेषः—यह निर्गुण भाव का पद है । योगी सद्गुरु द्वारा योग साधन में दीक्षित साधक उनके निर्देशानुसार अपने साधन में उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ प्रत्याहार व धारणा के पश्चात् ध्यान साधन द्वारा समाधि के सन्निकट की स्थिति तक पहुँच गया है । इस अवसर पर सद्गुरु के शुभागमन की भनक सुनी जाती है, अर्थात् अविलंब आत्म साक्षात्कार अथवा भगवद् साक्षात्कार होने का आभास हो रहा है । इस परिस्थिति में सद्गुरु के पदार्पण करने पर उनके योग्य किस प्रकार उनका प्रयत्न पूर्वक भव्य स्वागत करना चाहिये सो मीरांबाई ने इस पद में बताया है । प्रकृति अपनी जीव सखी से अपने पुरुष (परमात्मा) के स्वागत के लिये अथवा जीवरूप साधिका अपनी सखी (सुरता) चित्तवृत्ति (जो भगवदाभिमुखी परमार्थ साधन में तत्पर है) से सद्गुरु (परमात्मा) के स्वागतार्थ आदेश करती है ।

भावार्थः—गुंथ········लबीजे (लीजे)=सर्व प्रथम वह सद्गुरु के योग्य एक ऐसा सेवरा गूँथ लाने को कहती है जो कमल और केवड़े के पुष्प लाकर बनाया गया हो । सद्गुरु का स्वागत करना क्या है, परमात्म-साक्षात्कार के लिये किये जाने वाला विधिक्रम-अथवा प्रक्रिया मात्र है । प्रभु-प्राप्ति पर आत्म निवेदन करने की साधना है । ज्यों भव सागर-भव नदी त्यों यह भव सरोवर । इस संसार रूप सरोवर की पालपर कमल और केवड़ा प्रफुल्लित हो रहे हैं । दोनों ही कादों-कीचड़ में उत्पन्न होते हैं । संसार में रह कर उससे अलिप्त रहना यह जल में रह कर जल से अलिप्त रहने वाले कमल के समान साधन है और चहुँ ओर तृष्णा और वासनाओं के बीच में रहकर भी प्रभु की ओर चित्तवृत्ति को अखंड लगाये रखने का यह साधन अपनी काया पर अनेकों सर्पों के लिपटे हुये होने पर भी अपनी ओर से सदा मधुर सुगंधि का प्रचार करने वाले केवड़े के समान है । वास्तव में यह आश्चर्य कारक और विलक्षण होने पर भी परमार्थ-साधन के लिये इसे अनिवार्य रूप

१५—विशेषः—जीव सद्गुरु द्वारा उपदिष्ट साधन को सिद्ध करके किस प्रकार प्रभु की प्राप्ति करता है, सुन्दर रूपक बांध कर यह भाव मीरांबाई ने बड़े ही मार्मिक ढङ्ग से इस पद में व्यक्त किया है।

भावार्थः—सुरता.........यूं रही=मन का सुरता रूप सुहागिन नारी से प्रश्न है कि वह दीर्घकाल तक अविवाहित क्यों रही अर्थात् जो चित्तवृत्ति अब परमात्मा-साक्षात्कार का अनुभव कर रही है वह पहले दीर्घकाल तक भक्ति विहीन क्यों रही। इसके उत्तर में वह अपनी स्थिति को प्रकट करते हुए कहती है कि सांसारिक प्रपंच में फँसे रहने के कारण और योग्य अवसर पर साधन निष्णात सद्गुरु की प्राप्ति न होने से ही वह उस अवस्था में रही। सतगुरु.........छेड़िया=सद्गुरु की प्राप्ति होने पर उन्होंने सुमुहूर्त्त पर लग्न पत्रिका भेज कर विवाह समारंभ प्रारंभ कर दिया अर्थात् सद्गुरु की प्राप्ति होने पर उन्होंने अनुकूल संयोग में आवश्यक साधन सामग्री को जुटाकर यथा शीघ्र योग साधन का अभ्यास प्रारम्भ करा दिया। अड़द.........फरे=उबड़ खाबड़ भूमि को समतल बना कर उस पर सुन्दर रत्न जटित लग्न वेदिका बनाई गई जिस पर वर कन्या का पाणिग्रहण संस्कार होकर दोनों को फेरे फिराये गये अर्थात् वर्षों के संसारोन्मुख संस्कारों को यम नियम द्वारा क्षीण करते हुए, तथा शनैः शनैः आसन प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को उर्द्ध मुखी बनाते हुए सुषुम्ना में प्राणशक्ति का संचार करा कर उसमें स्वतन्त्र रीति से विचरना सिखाया। भाभल.........नामरा=साधन करते करते जीव रूप पिता ने अपनी परिणित कन्या (चित्त वृत्ति) को दहेज में प्रेम से धर्म अर्थ काम व मोक्ष ये चार पदार्थ और ज्ञान वैराग्य हरि नामरूप रत्न धनादि बहुत आभूषण दिये अर्थात् सतगुरु के सत्संग और तन्निर्दिष्ट साधन के अभ्यास से ज्ञान वैराग्य के रहस्य को समझने की योग्यता प्राप्त हुई तथा प्रेम के चार पदार्थ-नाम (हरिनाम-प्रणव जप), रूप (दिव्य ज्योति का साक्षात्कार), लीला (नाद व प्रकाशादि सूक्ष्म सृष्टि के चमत्कार), और धाम (स्वरूप स्थिति) के रहस्यानुभव और विवेक की प्राप्ति हुई। छोड्या.........जाखड़ी= इस योग्यता को प्राप्त होने पर मन के भाव संस्कार व इन्द्रियादि सह

भला तमोगुणी जीव कैसे जान सकता है। काल.........खागारे= जन्म वृथा चला जायगा।

२२—तन.........मोलास्याँ= अपना तन-मन-धन-अर्पण करके बदले में सतगुरु-दर्शन, सत्संग व प्रभु-प्रेम आदि दुर्लभ वस्तुएँ पाऊँगी। अड़सठ.........न्हास्याँ= अड़सठ तीर्थ सब गुरु के चरणों में हैं जिनके दर्शन, चरण-स्पर्श व सत्संग से ही गंगाजी नहाने का फल प्राप्त है। मैं तो.............चढास्याँ= अपने मस्तक रूप श्रीफल की भेंट चढ़ाऊँगी, आत्म-समर्पण करूँगी।

आलोड्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः ॥

सब शास्त्रों को उलटा कर बार बार विचार करने पर यही सारभूत तत्व पाया कि नारायण-हरि ही एक मात्र ध्येय–उपासनीय हैं।'

उपरोक्त सार वस्तु भगवदुपासना के ध्येय को चाहे सगुण भक्ति की साधना से अथवा योग व ज्ञान की निर्गुण भक्ति की साधना से प्राप्त किया जाय, दोनों में नाम ही का प्रधान महत्व है और इसकी साधना अनिवार्य है। किसी महापुरुष का वचन कितना यथार्थ है:—

राम नाम को अंक है सब साधन है सून।
अंक गये कछु हाथ नहीं रहे साधन दश गून॥

=नवधा भक्ति में भी प्रथम 'श्रवण' के पश्चात् (नाम) 'कीर्तन' और (नाम) 'स्मरण' भक्ति, यह भगवन्नाम का ही साधन है। देवर्षि नारद ने तो, 'नारदस्तु तदर्पिता खिलाचारता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति॥ (ना० भ० सू० १६) यह कह कर अखंड भगवत्स्मरण' को ही भक्ति का प्रधान लक्षण माना है। निर्गुण उपासना में प्रणव जप ही प्रधान साधन है, यथा 'तस्य वाचकः प्रणवः।' (यो० सू० २७) अर्थात् ईश्वर बोधक शब्द प्रणव है। एक मात्र प्रणव शब्द द्वारा ईश्वर-सम्बन्धीय सभी भावों का बोध होता है।' 'प्रणव' वह है जो नव से पर वा श्रेष्ठ है। नव शब्द से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि, अहंकार और जीव माने जाते हैं। श्री गीता के सातवें

सदाचार का पालन और वेदों का अध्ययन–सब कुछ कर लिया। क्योंकि इन सब का परम फल 'नाम' जो उन्हें प्राप्त हो गया।

नाम सङ्कीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ (१२।१३।२३)

जिन भगवान् का नाम संकीर्तन सारे पापों का नाश करता है और जिनको किया हुआ प्रणाम समस्त दुःखों को शान्त कर देता है, उन परमेश्वर श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

कलियुग में नाम–माहात्म्य का विशेष महत्व बताते हुये श्री शुकदेव जी कहते हैः—

कलेर्दोषनिधेः राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्त संग परं व्रजेत्॥
कृतेयद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायांयजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्॥ (१२।३।५१।५२)

कलियुग यों तो दोषों का खजाना है, परन्तु उसमें एक बहुत बड़ा गुण यह है कि इसमें श्रीकृष्ण के नाम संकीर्तन मात्र से सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञों से, और द्वापर में पूजा-अर्चना से जो फल मिलता है वही कलियुग में केवल भगवन्नाम के कीर्तन से ही मिल जाता है।

भगवान् वेदव्यास ने भी यही घोषणा की हैः

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौनास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥

तथा

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशव कीर्तनात्॥

=अपबल तपबल और बाहु बल
चौथा बल है दाम।
सूर किशोर कृपाते सब बल
हारे को हरिनाम ॥
सुन्योरी मैंने निर्बल के बल राम।

—(सूरदास)

=जब रामनाम कहि गावेगा तब भेद अभेद समावेगा।
जे सुख ह्वै या रस के परसे, सो सुख का कहि गावेगा।

—(रैदास)

= कहत कबीरा राम न जा मुख
ता मुख धूल परी
'जेहि घट नाम रह्यो भरपुर
तिनकी पग-पंकज हम धूर।'

—(कबीर)

='दादूनीको नाम है तीन लोक तत्सार'
नाम बिना किस काम की दाइ सम्पति सुकल

—(दादू)

='नाम घेतां वायां गेला, ऐसा कोणी ऐकिला।'

(हरिनाम लिया हुआ कभी निष्फल गया ऐसा भी क्या किसी ने सुना है?)

—(समर्थ रामदास)

=नानक दुखिया सब संसारा।
सो सुखिया जिन नाम अधारा ॥

—(नानक)

मीरांबाई ने भी इस विभाग के पदों में केवल भगवन्नाम ही की महिमा गाई है। 'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति।' (ना. भ. सू. ५५) के

'नाम माहात्म्य' मीराँ को वाणी में

वेदों ने जिसकी महिमा गाई है ऐसा माहात्म्य जिस भगवन्नाम का है, गुरु की कृपा से मीराँ को उसकी प्राप्ति हुई—

(१) नाम महातम गुरू दियो सोइ वेद वखाणी हो।

भव बन्धन से छुड़ाने वाले इस भगवन्नाम रूप रत्न व धन की प्राप्ति पर वह डंके की चोट प्रकट करती है,—

(३) पायोजी म्हैं तो, राम रतन धन पायो।

शनैः शनै नाम के साधन से नामी में (प्रभु में) चित्त-वृत्ति तन्मय होने लगती है। इस भगवन्नाम रूप खेती में बोये गये नाम-संस्कार रूप बीज से भगवद्भाव के सात्विक गुणों युक्त अमूल्य हीरे व मौक्तिक निपजते हैं—

(२०) राम नाम धन खेती मेरी सुरता प्रभु में रेती।
रामनाम का बीज पड़ा है निपजत हीरा मोती।

इस प्रकार 'सूत्रे मणिगणा इव' रस भरा नाम हृदय में बस जाता है-उसके प्रति पूर्ण प्रेम हो जाता है तभी जन्म-मरण का भय मिट जाता है—

(६) हरिनाम से नेह लाग्योरे। यो रसियो म्हारे मन में बसियो ज्यूँ माला बिच तागो रे। जीवन मरण भय भागो रे।

हरिनाम बिना मानव जीवन शून्य है यथा—

(११) श्री राम नाम की हरिजस बूंटी भर भर प्याला पियां करो ।

(१२) बोल मां बोल मां बोल मां रे राधाकृष्ण बिना बीजूं बोल मां ।

(२४) संसार सागर झूंठो रे कोई रामनाम धन लूटो ॥

मो अबला पर किरपा करज्यो गुण गोविन्द का गाउँ ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर रज चरणन की पाउँ ए माय ॥५॥

अमूल्यधन ३

पायो जी म्हैं तो, राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरू, किरपा कर अपनायो ॥०॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायो ॥१॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरू, भवसागर तर आयो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो ॥२॥

उपदेश ४

राम नाम रस पीजै मनुआँ, राम नाम रस पीजै ॥०॥
तज कुसंग सतसंग बैठ नित।
हरि चरचा सुनि लीजै ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ। बहा चित्त से दीजै ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। ताहि के रंग में भीजै ॥३॥

नाम-प्रभाव ५

मेरो मन रामहि राम रटै रे ॥०॥
राम नाम जप लीजे प्राणी। कोटिक पाप कटै रे ॥१॥
जनम जनम के खत जु पुराने। नामहि लेत फटै रे ॥२॥
कनक कटोरे इम्रत भरियो। पीवत कौन नटै रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनासी। तन मन ताहि पटै रे ॥४॥

उपदेश ६

हरि नाम बिना नर ऐसा है, ज्यों जग में खोटा पैसा है।
दीपक बिन मंदिर जैसा है ॥०॥

उपदेश १०

जपत क्यों नहीं हरिनाम ॥०॥
पांउ दिये तीरथ के तांई, हाथ दिये दे दान ॥१॥
दांत दिये मुख की शोभा को, जीभ दई भजि राम ॥२॥
नैन दिये निरखो राम कों, कान दिये सुन ज्ञान ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ धर ध्यान ॥४॥

उपदेश ११

श्री राम नाम की हरि जस बूंटी भर भर प्याला पियां करो॥०॥
वणज करो व्यापार करो जी । वणज्यां वही भज्यां करो ॥१॥
कुसंगत कांटे की भारी । सत्संगत में जायां करो ॥२॥
भेरूं भोपा के संग मती जाजो । हरि के मन्दिर जायां करो ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
हरिके चरणां सीस नमायां करो ॥४॥

उपदेश १२ (गुज०)

बोल मां बोल मां बोल मां रे राधा कृष्ण विना बीजुं बोल मां॥०॥
साकर सेलडी नो स्वाद तजीने, कडवो लींबडो घोल मां रे ॥१॥
चांदा सूरज नु तेज तजी ने,आगिया संगाथे प्रीत जोड मां रे ॥२॥
हीरा माणेक जवेर तजी ने, कथीर संगाते मणि तोल मां रे ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,शरीर आप्यूं सम तोल मां रे ॥४॥

उपदेश १३

सबां ही मिल हरि हरि कहो नर नारी ॥०॥
हरि का भजन बिना कैसे उबरोगे, भवसागर यो भारी ॥१॥
इणी रे प्रहलाद पिता तज दीन्हो, भरत तज्यो महतारी ॥२॥
बाई मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, प्रभु के चरणाँ बलिहारी ॥३॥

भक्ति तो प्रहलाद कीनी, साँच उर में धरै ।
भक्ति के वस स्यामसुंदर, सिंह को वपु धरै ॥१॥
कोटि वैरी तृण बराबर, कहा वाको करै ।
ओट जिनकी नन्दनन्दन, कौन तासे अरै ॥२॥
भक्ति को परताप ऐसो, कुटिल गनिका तरै ।
दास मीराँ लाल गिरधर, शरण हरि की परै ॥३॥

हरि-नाम-धन १७

माई म्हारे निरधन रो धन राम ॥०॥
खाय न खूँटै चोर न लूटै, विपति पड्यां आवै काम ॥१॥
दिन दिन प्रीत सवाई दूणी, सुमरण आठों याम ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल विसराम ॥३॥

नाम-मद १८

मैं अमली हरिनांव की मुझि वाइडे आवै ।
पीया पियाला प्रेम का कुछि और न भावै ॥०॥
या तन की कूंडी करूं मन पोसत भेऊं ।
ग्यांन गलणीयां हाथिले इम्रत रस पीऊं ॥१॥
पीया जोगी भरथरी गुर गोरख पायो ।
धन माता मैंणावती सुत पैं राज छुड़ायो ॥२॥
और अमल किस काम का, चढि उतर जावै ।
अमल करो इक नाम का, अमरापुर जावै ॥३॥
अमल किया माता भया, सुप रैन विहावै ।
अमलनु फल हरि पुरवै, जस मीराँ गावै ॥४॥

अमूल्य-धन १९

राम रतन धन पायो मैंया, मैं तो राम रतन धन पायो ॥०॥

नाम-धन २२

कब सुमरोगे राम, अब तुम कब सुमरोगे राम ॥०॥
खरच्यो न खूटे, चोर न लूटे ऐसो है हरिनाम ॥१॥
दिन दिन होत सवायो दोढो, अंते आवत काम ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, दे दरसन को दान ॥३॥

नामोपदेश २३

एक राम नाम हिरदा बीच राखो जब जागो जब लिया करो ॥०॥
राम नाम की खेती करलो ब्याज वदे सो भजा करो ॥१॥
राम नाम की प्रेम की बूंटी भर प्याला पीया करो ॥२॥
कड़क वचन मुख से मती बोलो बन आवे सो भज्या करो ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चित धरया करो ॥४॥

नाम-धन २४

संसार सागर झूंठो रे कोई राम नाम धन लूटो ॥०॥
राम नाम की लूट मची है सबही क्यूं नहि लूटो ।
अणी रे लूटयाँ सूं प्रेम घणेरो भरियो सागर फूटो रे ॥१॥
मन को मार इन्द्रियां जीते सो पहुँचे बैकुंठा ।
पांच चोर बसे मन मांही पेली उनको पहुँचो रे ॥२॥
अणी प्रभु की ऐसी रे माया जागे छे पण सूतो ।
माय बाप और कुटुम्ब कबीला यो जग सबही झूठो रे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल रस लूटो रे ॥४॥

———

करना पड़ता है, न उसे चोर चुरा पाते हैं न वह घटता ही है, अपितु प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

कबीर जी ने भी कहा है:—

कबीर सब जग निर्धना, धनवन्ता नहिं कोय।
धनवंता सो जाणिये, जाके राम नाम धन होय ॥

५—तन........पटै रे=तन और मन की उन्हीं से पटती है, तन और मन उन्हीं में रंग गया है।

विशेष:—कुछ ऐसा ही एक पद गो० तुलसीदास जी का भी सुना जाता है:—

हमारे मन रामहि राम रटे ॥०॥
अमरत भरीया रतन कटोरा, पीवत कौन नटे।
भाल तिलक तुलसी की माला, फेरत फंद कटे।
तुलसी-दास रघुबीर भजन से, यम के दूत हटे ॥

विशेष:—शरीर के अंगों को भगवत भाव में स्थित करने के लिये संत कबीर भी यही उपदेश करते हैं:—

मत कर मोह तू, हरि भजन को मान रे।
नयन दिये दरसन करने को, स्रवन दिये सुन ज्ञान रे ॥
वदन दिया हरिगुन गाने को, हाथ दिये कर दान रे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कंचक निपजत खान रे।

१२—बोलमां........बीजु बोलमां='राधा कृष्ण' इस भगवन्नाम के सिवाय मुख से और उच्चारण कुछ न करो। सेलड़ी=गन्ना, ईख। लींबड़ो=नीम। चोलमां=मत बोल, सेवन मत कर। आगिया जुगनू। कथीर=रांगा, धातु विशेष। तोलमां=मत तोल, तुलना मत कर।

विशेषः—हरिनाम का नशा ऐसा पक्का है कि और नशे जैसा कभी चढ़ता उतरता नहीं। यह चंचल मन, जो माया मोहादि के मद में हाथी जैसा मतवाला हो छका फिरता है और जो विवेक संयम आदि के अंकुश से भी वश नहीं हो पाता वह एक मात्र हरिनाम का नशा करके ही शान्त हो जाता है। एक बार जब इसका पूरा चस्का लग जाता है तब संसार व्यवहार के कार्य करते हुए भी वह निरन्तर हरिनाम में ही लगा रहता है। इस सारे पद में मीरांबाई ने यही भाव दृष्टान्तादि देकर बड़े ही सुन्दर ढंग से समझाया है। इस पद के दूसरे और तीसरे चरण पूर्ण रूप से कबीर जी के 'या विधी मन को लगावै।' इस पद की निम्न कड़ियों के समान-भावात्मक है:—

जैसे नटवा चढत बांस पर ढोलिया ढोल बजावै।
अपना बोझ धरे सिर उपर सुरति बरत पर लावै॥
जैसे कामिनी भरे कूप जल कर छोड़े बतरावै।
अपनो रंग सखी संग राचै सुरति गगर पर लावै॥

१६—वपु=शरीर।

१८—अमली=देखो पद १५।

१९—एक अधिक चरण मिलता है:—

सत संगत सद् गुरू की कृपा से, भाग्य बड़ो बनि आयो॥

२०—एक साल............हीरा मोती=निश्चित अवधि तक प्राणायाम द्वारा इड़ा पिंगला की समता साधने के समय अजपाजप द्वारा जो भगवन्नाम का बीज बोया जाता है वही अमूल्य धन, नर जन्म की सफलता का हेतु है। नेती धोती=योग साधन की क्रिया विशेष। प्राण ....धोती=नेती धोती और प्राणायामादि योगिक क्रियाओं द्वारा देह व चित्त की शुद्धि करना साधक का परम कर्त्तव्य है। देखो गीता, अध्याय ४, श्लोक २९ :—

२४—भरियो............फूटोरे=संसार सागर फूट जाता है जिससे पार हो जाना अनायास हो जाता है। पाँच चोर=पंच तत्त्व जो शरीर के कारण रूप हैं। जागे छेपण सूतो=माया का प्रभाव ऐसा प्रबल होता है कि जिससे ज्ञानी पर भी अज्ञान का आवरण छा जाता है अथवा जाग्रतावस्था में सब दृश्य सत्य प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में निद्रावस्था के स्वप्न समान वे सब मिथ्या हैं।

ज्योति जाग्रत की जाती है और होली के पर्व पर चारों ओर वातावरण रंगीला बन जाता है। इसलिये ये सब राष्ट्रीय पर्व राष्ट्र के महोत्सव हैं। यही भारतीय संस्कृति का अमर इतिहास हैं। इनको मनाने से मानसिक दुर्बलता, खेद, परिश्रम व शिथिलता मिटकर, प्राचीन, इतिहास व संस्कृति के संस्मरणों से नूतन प्रेरणाएँ पाकर जीवन उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

वैसे तो भारतवर्ष में चार वर्णों के लिये रक्षा बन्धन, विजया-दशमी, दीपावली एवं होली—ये चार त्यौहार निश्चित किये गये हैं, फिर भी सभी वर्ण के लोग सभी त्यौहार पूर्ण उत्साह के साथ मनाते हैं। फिर होली का उत्सव तो सामाजिक, धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक आदि विविध दृष्टि से भी मनाने योग्य है।

संवतारम्भ और वसन्त के उपलक्ष्य में जो यज्ञ किया जाता है जिसमें अग्नि देवता की पूजा होती है, प्राचीन मान्यता के अनुसार यही "होलिका-दहन" का सर्व प्राथमिक स्वरूप है।

भक्त प्रह्लाद तथा होलिका की पौराणिक कथा तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। यही कथा होलिकोत्सव मनाने की प्रथा के मूल में विशेष प्रचलित है। प्रह्लाद को मारने के अनेकानेक प्रयत्न जब विफल हुए तब हिरण्यकश्यपु के कहने से होलिका प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर अग्नि में बैठ गई। वैसे अग्नि में न जलने का उसे वरदान था परन्तु प्रभु पर अत्याचार करने के कारण वह तो जल गई और प्रह्लाद की रक्षा हुई। अनन्य भक्त की रक्षा होने के उपलक्ष्य में महोत्सव मनाने की प्रथा चल पड़ी। तब से आज भी यह महोत्सव सात्विक वृत्ति के लोग मंगलमय

वैभव उपस्थित होता है, जलाशयों में कमल पुष्प पर भ्रमर गुंजारव करते हैं, और समशीतोष्ण वायु की मंद सुगन्ध व शीतल लहरें चित्त में आह्लाद उत्पन्न करती हैं। इन सरस दृश्यों का जन मानस पर अमोघ प्रभाव पड़ता है। मधुमास का यह नशीला आनन्द- सुधारस संसार के समस्त प्राणिय को, जड़-चैतन्य, गृहस्थी-विरक्त, बालक-वृद्ध, युवा नर-नारी आदि सबको हर्षोन्मत्त बना देता है और रोम-रोम में उमड़ता हुआ वह आनन्द और उत्साह किसी भी प्रकार बाहर छलकना चाहता है। इस प्रकार सर्वत्र मधुरता का साम्राज्य छाकर सबको नवजीवन प्राप्त होता है और प्रभु महिमा की अलौकिक झाँकी दिखाई देकर, 'ऋतुनां कुसुमाकरः' यह गीता-उक्ति सार्थक होती है।

होलिका उत्सव के उपलक्ष्य में लोग नाना प्रकार के रंग-राग करते हैं। अबीर-गुलाल उछालते और रंगों की पिचकारियाँ चलाते व परस्पर में रंग डालते हुए एवं होरी के गीत गाते हुए जहाँ-तहाँ जन समूह दिखाई देते हैं।

ज्यों भारत में विभिन्न प्रान्तों की, उत्सव विशेष के विशिष्ट रूप से मनाने के ढंग से प्रसिद्धि हो चुकी है, यथा महाराष्ट्र का गणेशोत्सव, बंगाल की दुर्गा पूजा, बम्बई की दीपावली त्यों ब्रज की और विशेष कर बरसाने की होरी बहुत प्रसिद्ध है। राज-स्थान की होरी देखने जैसी होती है परन्तु वास्तव में ब्रज की होरी तो अपने ही ढंग की, एक अनोखे आकर्षण को लिये होती है। नर-नारी में उत्साह समाता नहीं, लोग जहाँ-तहाँ रसिया गाते-नृत्य करते, रंग भरी पिचकारियाँ चलाते हैं। ब्रज नारियाँ बड़े उमंग से लोक-गीत गाती हैं। यत्र तत्र श्री राधा-कृष्ण की

सं० २ व १४ ये दो पद निर्गुणी भाव-ज्ञान के हैं।

'होरी' मीराँ की वाणी में

चराचर विश्व में जो विराट् प्रकृति की लीला होती है ज्ञान दृष्टि से वही निर्गुण 'होली' का व्यापक स्वरूप है। जैसे प्रस्तुत सगुण होली अनुकूल साधनों के अभाव में और प्रिय-वियोग में अरुचिकर होती है वैसे ही मानव जीवन की आत्मोन्नतिरूप निर्गुण होली भी सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि द्वंद्वों से असन्तोष जनक होती है। ऐसी परिस्थिति में शनैः शनैः मन को साधन द्वारा अनुकूल बनाकर ज्ञान-प्राप्ति द्वारा भगवद् साक्षात्कार के लक्ष्य तक पहुँचना पड़ता है अर्थात् उन ही बाधाओं को हटा कर जीव को अन्त में आनन्द स्वरूप आत्माराम-परमात्मा को प्राप्त होना पड़ता है। आत्मा-परमात्मा का यह मिलन ही होरी खेलना है। इसी प्रकार उपर्युक्त अन्तिम ध्येय की प्राप्ति पर्यन्त, प्राणि मात्र के मानस में रहे हुए शुभाशुभ भावों की उद्देश्य-पूर्त्ति के लिये जो-जो भी क्रियाएँ की जाती हैं, एक प्रकार से सभी होली के रूप हैं।

इस दृष्टि से मानव जीवन की कृतार्थता के लिये अर्थात् क्षणभंगुर यौवन काल को व्यर्थ न खोकर भगवद् भाव में स्थित होने के लिये मन को मीराँ उपदेश करती है—

(२) फागुन के दिन चार रे होरी खेल मना रे॥

(१४) होरी खेलत चतर सुजाण (विवेकवान्) आतमा राम सूँ॥

(३४) मेरी चूनर भिजोवै, भिजोउंगी पाग। जानन देऊँगी आज। फैंट पकर के फगुवा ल्यौंगी, मुख मीडोंगी ब्रजराज !!

(३८) फगुआ दिया बिना जाने न देऊँगी। हुँ मत जानो पिया भोरी हो ॥

अन्त में एक रहस्य भरी बात सुना देती है—

(४५) म्हारी मानो रे अहीर। भीजे सुरंग शरीर, पत-पाड़ो छोजी लाखन में। मनड़ो लोभाणों झीणी झाँक में, अबीर उड़े छे म्हारी आँख में ॥

होली के उत्सव में अपने प्यारे यदि साथ में हैं तो आनंद का क्या ठिकाना! परन्तु अपने प्यारे श्यामसुन्दर के वियोग में हताश हुई गोपी को यदि होली सूनी लगती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या!

(७) घर आँगन न सुहावे। होली पिया बिन मोहि न भावे। सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे। सिसक सिसक जिय जावे। नैण निंद्रा नहीं आवे। वा बिरियाँ कद होसी मुझको, हरि हँस कंठ लगावे ॥

(८) होली पिया बिन लागे खारी। सूनी सेज अटारी। आयो बसंत कंथ घर नाहीं, तन में जर भया भारी। जनम जनम की मैं थारी। लगी दरसण की तारी ॥

(९) मैं किण संग खेलूँ होरी। तुम तो जाय विदेसाँ छाये मिलन की लग रही डोरी। रस बिन विरहन दोरी ॥

(१२) फागुन की ऋतु पियु घर नहीं है। तन मन झाल जलोरी। फाग में आग लगोरी। बिलखी फिरे राधा गोरी।

चोवा चन्दन केसर अरगजा, उड़त गुलाल अबीर ।
खेलत फाग नवल गोपी रँग, छिरकत श्याम शरीर ॥३॥
चंग मृदंग ढोल ढफ बहु विध, बाजत वेणु रसाल ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नाचत दै दै ताल ॥४॥

उल्लास ४

रंग भरी रंग भरी रंग सूँ भरी री ।
होली आई प्यारी रंग सूँ भरी री ॥०॥
उड़त गुलाल लाल भये बादल ।
पिचकारिन की लगी झरी री ॥१॥
चोवा चन्दन और अरगजा ।
केसर गागर भरी धरी री ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चेरी होय पांयन में परी री ॥३॥

नटखटपन ५

मत डारो पिचकारी । म्हारी सगरी भिंज गई सारी ॥०॥
जिन डारो थिर ठाड़े रहियो । नहिं तो मैं देउँगी गारी ॥१॥
लाल गुलाल उड़ावन लागे । तों मन में न बिचारी ॥२॥
भर पिचकारी मेरे मुख पर डारी । ढ़ीठ बने हो भारी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलिहारी ॥४॥

व्रजभाव ६

होरी खेलत है गिरधारी ॥
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवती व्रजनारी ॥०॥
चंदन केसर छिड़कत मोहन, अपने हाथ बिहारी ।
भरि भरि मूठ गुलाल लाल, चहुँ देत सबन पै डारी ॥१॥

बाजत झाँझ मृदंग मुरलिया, बाज रही इकतारी।
आयो वसंत कंथ घर नाहीं, तन में जर भया भारी।
स्याम मन कहा विचारी ॥३॥

अब तो मेहर करो मुझ ऊपर, चित दे सुणो हमारी।
मीराँ के प्रभु मिलज्यो माधो, जनम जनम की मैं थारी।
लगी दरसण की तारी ॥४॥

विरहभाव ९

इक अरज सुणो पिय मोरी, मैं किण सँग खेलूँ होरी ॥०॥
तुम तो जाय विदेसाँ छाये, हमसे रहे चित चोरी।
तन आभूषण छोड़े सबही, तज दिये पाट पटोरी।
मिलन की लग रही डोरी ॥१॥
आप मिल्या बिन कल न पड़त है, त्यागे तलक तमोली।
मीराँ के प्रभु मिलज्यो माधो, सुणज्यो अरजी मोरी।
रस बिन बिरहन दोरी ॥२॥

व्रजभाव १०

झूलत राधा संग, गिरधर झूलत राधा संग ॥०॥
अबील गुलाल की धूम मचाइ, डारत पिचकारी रंग ॥१॥
लाल भयो वृंदावन जमना, केसर चुवत अनंग ॥२॥
नाचत ताल अधार सुन्दरी, बाजे ताल मृदंग ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागुण, चरण कमल बहे गंग ॥४॥

विरहभाव ११

किण सँग खेलूँ होली, पिया तज गये हैं अकेली ॥०॥
माणिक मोती सब हम छोड़े, गल में पहनी सेली।
भोजन भवन भलो नहिं लागै, पिया कारण भई गैली।
मुझे दूरी क्यूँ म्हेली ॥१॥

व्रजभाव-गोपीभाव १३

स्याम म्हाँसूँ ऐंडो डोले हो, औरन सूँ खेलै धमाल।
म्हाँसूँ मुख हुँ न बोले हो, स्याम म्हाँसूँ ॥०॥
म्हाँरी गलियाँ नाँ फिरै, वाँके आँगण डोले, हो ॥१॥
म्हाँरी अँगुली ना छुवे, वाँकी बहियाँ मोरे, हो ॥२॥
म्हाँरो अँचरो ना छुवे, वाँको घूँघट खोले, हो ॥३॥
मीराँ के प्रभु साँवरो, रंग रसिया डोले, हो ॥४॥

ज्ञान १४

होरी खेलत चतुर सुजाण आतमाराम सूँ होरी ॥०॥
राजा खेले रीत भाँत से। प्रजा खेले अजाण ॥१॥
पंडित खेले पोथी जो पाना। काजी खेले कुरान ॥२॥
पतिवरता पियु सँग खेले। वेश्या खेले अजाण ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। सत उतरे निजधाम ॥४॥

व्रजभाव-लीला १५

वृज में काना धूम मचाई। धूम मचाई ऐसी होरी रमाई ॥०॥
इतसे आई सुघड़ राधिका उतसे कँवर कन्हाई।
हिलमिल तो दोनों फाग रमत है, सब सखियाँ मन भाई।
सुघड़ घर बँटत बधाई ॥१॥
राधेजी सैन दई सखियन से झुँड-झुँड उठ आई।
रपट झपट कर पकड़्यो श्याम ने, बैंयाँ पकड़ ले जाई।
लालजी ने नाच नचाई ॥२॥
मुरली पीतांबर छीन लिया है सिर पर चुँदड़ी उढ़ाई।
बींदी तो भाल नैनाँ सोहे कजरो, नकबेसर पहराय।
लालजी ने नार बनाई ॥३॥

रेशम बंद वदन को छूटयो, झल रही कोर किनारी ।
देखे सब लोग अनारी ॥१॥
पाड़ पड़ोशण संग की सहेल्याँ विनती कर कर हारी ।
ऐसी सीख कहा दई कुबज्या, मानत नहीं गिरधारी ।
सहियाँ सगळी पचहारी ॥२॥
हार हटोक्यो चीर झटोक्यो, लड़ मोतियन की तोड़ी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, फगवा दिया भर झोरी ।
मोही सगळी व्रजनारी ॥३॥

व्रजभाव-नटखटपन १८

समझ डारोने पिचकारी, छैला भयोजी अनोखा खिलारी ॥०॥
बेर बेर तुझे क्या समझाऊँ, मानत नहिं गिरधारी ।
अबकी बेर रंग डार दियो है, अब डारोगा दूँगी गारी ।
अचानक मोरी बैंयाँ मरोरी ॥१॥
नार पराई गोकुल को बसवो, ऐसी न करिये मुरारी ।
तुम बालक हम बहुत सियानी, आप श्याम मैं तो गोरी ।
विधाता लेख लिख्योरी ॥२॥
फारा मोर कोकिला बोले, बोलत अमृत बानी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणो सखण गति मोरी ।
अश्यो वर पायो किशोरी ॥३॥

व्रजभाव-नटखटपन १९

साँवरो होरी खेल न जाने, खेल न जाने खेलाय न जाने ॥०॥
वनसे आवे धूम मचावे, भली बुरी नहीं जाणे ।
गोरस के मस सब रस चाखे, भोर ही आन जगावे ।
ऐसी रीत पर घर म्हाणे ॥१॥

ब्रजभाव-रसिया २२

राधे राणी जी रे महलां रची ए होली, रची ए होली
रंग छोई ए गोरी ॥०॥
केशर भरियो अबीर बाटको झोली भरी गुलालन की ॥१॥
चुवा चुवा चंदन और अरगजा भोमि कसूमल छाय रही ॥२॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल छवि छाय रही ॥३॥

नटखटपन २३

होली काहे को खेलाई मेरी लाज लही, मेरी लाज लही ॥०॥
चुवा चन्दन और अरगजा झोली भरी रे गुलालन की ॥१॥
भर पिचकारी मोरे सनमुख डारी भींग गई म्हारी सारी तन की ॥२॥
अबीर गुलालाँ से बादल छायो केशर कीच मचाय रही ॥३॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर तन मन तो पे वार रही ॥४॥

रसिया २४

ढफ काहे को बजायो मैं तो आवतडी, ओ मैं तो आवतडी ॥०॥
ढफ आवाज सुनी रे बागन में, फूलन की कलियां खील रही ॥१॥
ढफ आवाज सुनी रे महलन में, इन्द्र घटा घन छाय रही ॥२॥
चोवा चन्दन अबीर अरगजा, केशर कीच मचाय रही ॥३॥
भर पिचकारी मोरे सनमुख डारी, तनकी साडी मेरी भींज रही॥४॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित छाय रही ॥५॥

नटखटपन २५

ऐसे नटखट तूं ढीठ कन्हैया, रँग में भिजोई बार बार ॥०॥
चोवा चंदन और अरगजा केशर को रंग डार डार ॥१॥
लपट झपट मोरी बैयां मरोडी अँगियाँ कर डारी तार तार ॥२॥
चंग बजावत गारी भी गावे बैठ कदम की डार डार ॥३॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित लार लार॥४॥

गुलाल डारूँ चंद्रवदन पर धन्य होऊँ मैं चरणन छूकर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर रंग दीजो मोही सारी ॥

उमङ्ग ३०

सखी खेलूँगी मैं होरी, श्री गिरधर नागर से ॥०॥
मैं प्रीतम को रंगाऊँ, आज प्रेम आदर से ॥
डारूँगी मन होरी रंग में, नाचूँगी मैं रंग रंग में ।
लिपट रहूँगी श्याम अंग के, गुलाल केसर से ॥
प्रीतम के सँग होरी गाऊँ, चरणन की रज माथ लगाऊँ ।
दासी मीराँ प्रीतम गिरधर, होवे जनम भर के ॥

व्रजभाव ३१

कुंजविहारी राधागोरी, नव निकुंज में खेलैं होरी ॥०॥
भरि भरि अरगजा लई कमोरी ।
छिरकत झकझोरी झकझोरी ॥१॥
अवीर गुलाल उडावत होरी ।
डफ दुंदुभी बाजत थोरी थोरी ॥२॥
पहुप पराग लिये भरि झोरी ।
पिय पर डारति हँसि मुख मोरी ॥३॥
आँखि आँजि सिर गूथत मोरी ।
झूमत गावत अंचल जोरी ॥४॥
मीराँ प्रभु रस सिंधु झकोरी ।
नवलहि गिरधर नवल किशोरी ॥५॥

व्रजभाव ३२

चंचल चवैया री आली, यशोदा को लाल देखो ॥०॥
हौं दधि बेचन जात रही व्रज, नाहक रार मचाई ।
मेरी चेरी मेरे चेरे की चेरी, ऐसे नाँच नँचाई ॥१॥

इतसे निकसी कुँवरि राधिका, सखियन साज बनायो ॥
मानो सखी भाव न आयो ॥१॥
ताल पखावज मृदँग बाजे, मेघन ज्यूँ घररायो ।
दादुर मोर पपैया बोले, मोहन डौर लगयो ॥
सखी जाने सावन आयो ॥२॥
उड़त गुलाल अरुण भये अम्बर, अबीरन घटा घन छायो ।
दामिनि ज्यूँ दमके सब गोपी, पिचकारिन कर ल्यायो ॥
केशर को कीच मचायो ॥३॥
ब्रजमंडल में फाग रच्यो है, सखियन मोद बढ़ायो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, केशर रंग करायो ॥
सखी मन आनँद छायो ॥४॥

ब्रजभाव ३६

ऐसी चतुर ब्रजनार, पीया संग खेले होरी ॥०॥
नवरंग उड़त गुलाल, सुगंधो केशर गोरी ।
राधे से परशत श्याम, श्याम सें राधे गोरी ॥१॥
उडत अबील गुलाल, केशर की भरी कटोरी ।
राधे चली मुखमोड़, श्याम मेरी बैयां मरोरी ॥२॥
जैसे बने नंदलाल, तेसी बनी राधे गोरी ।
मीरांबाई बल जाय, अविचल रहो ये जोडी ॥३॥

राधा-भाव (ब्रजभाव) ३७ (गुज०)

होरी रमे राधा गोरी । राधा गोरीसी नवल किशोरी हो ॥०॥
हनी हो नौतम ओंढ्यां,ओढणां पेहेर्यां चीर चरणों ने चोली हो ।१
हनी हो चुवा चंदन चोळीआं, केसर चंदन छीकत गोरी हो ॥२॥
हनी हो हाथमां थाल कनकतणा, कुमकुम लीधां गोरी हो ॥३॥

चुवा चंदन ओर अगरजा । गुलाल लीए भर झोरी ॥२॥
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागुण । मिली भावत टोली ॥२।

विरह (व्रजभाव) ४१

हाथ मटकियां रंग की भरी रे, पिया की वाट जोऊं
कबकी खरी रे ॥०॥
भांत भांत को भेस वनायो,
पियाजी आवे मोरे कबकी घरी रे ॥१॥
घाट वाट वृंदावन ढूंढ्यो, ढूंढ लई गोकुल नगरी रे ॥२॥
अवीर गुलाल की धूम मची है, पिय कारण की
लागी झरीरे ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पिया बिन होरी जावो जरीरे ॥४॥

वियोग ४२

विन दरसन महाराज, होरी मैं ना खेलूंगी ॥०॥
सब सखियन मिल फाग रमत है, मोकुं आवत लाज ॥१॥
गोरी गोरी भोरी सब मिल टोरी, फाग वंधावन काज ॥२॥
बाजत ताल मृदंग मधुर धुन, झंझर होत अवाज ॥३॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, वांह गह्या की लाज ॥४॥

व्रजभाव ४३

जिते सुघर सकल त्रिभुवन के प्यारी तिं राग अलाप्यो टोरी ॥०॥
तान तरंगिनी को भेद पाये रसीक लालन संगि
खेलत होरी ॥१॥
रस के गीधे सुर ठठ कीनो एही रस सिंध करत झकझोरी ।
मीराँ प्रभु गिरधर रस क्रीडत मन मथ कोज
धरम द्वार छोरी ॥२॥

एक तो आई राधा प्यारी गोविंदा लिये सङ्ग ।
ग्वाल बाल लिये कृष्णजी सोहे मीराँ के आनंद ॥३॥

ब्रजभाव ४७

गेरा करलो बलदाऊजी भांग पाणी गेरा करलो ॥०॥
वृन्दा तो वन की कुंज गलियन में, भांग मिरच की
मीजमानी ॥१॥
चोवा चन्दन और अरगजा, केशर कीच मच्या भारी ॥२॥
अबीर गुलाल से बादल छायो, भूम कसूमल भई भारी ॥३॥
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर नागर, आनन्द उर न
समायो भारी ॥४॥

१४—सत·········निज धाम="सत्यमेव जयते नानृतम्"।

विशेषः—संसार में सभी प्राणियों को अपने वर्ण, आश्रम, धर्म, विचार, बुद्धि, संस्कार व अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति के अनुसार अपने अपने कर्त्तव्य क्षेत्र में जूझना पड़ता है। इसी नित्य संघर्ष रूप होली को लक्ष्य करके इस पद में भाव निर्दिष्ट हैं।

१६—शूँडाँ की·······मच्यो=केशर तथा टेसू फूलों के रंगों की रेल-पेल होगई।

३२—चवैवा=चुगलखोर, निन्दा फैलाने वाला। नाहक=व्यर्थ। रार मचाई=झगड़ा किया। फगुवा·······शरीर=फाग के उपहार में साक्षात् श्यामसुन्दर को पा लिया।

४०—सखी=समान स्वभाव वाली। सयांणी वयः प्राप्ता, चतुर। तेव तेवड़ी=समान वयस्का। टोली=समुदाय।

४३—जिते········टोरी=त्रिभुवन की जो भी सब सुन्दर हैं उनमें जो प्यारी है (राधा) वह तोड़ी रागिनी अलापने लगी। तान··· ·····होरी=तान-आलापादि संगीत कला भेद प्रवीण रसिक शिरोमणि कृष्ण के साथ होरी खेलने लगीं। रसके·········झोरी=रस के परम अनुरागी उनके स्वर-तालादि संगीत से ऐसा समा बंध गया मानो रस का सागर उमड़ कर हिलोरें लेने लगा हो। रस·······छोरी=नीति-मर्यादा के बंधन को तोड़ कर साक्षात् कामदेव प्रकट हो गया हो त्यों रस-क्रीड़ा करने लगें।

४७—गेरा·········करलो=फागोत्सव में अधिक रंग लाने के लिये भंग-अमल आदि नशा-प्राणी करने की कहीं कहीं प्रथा है अथवा वसंतोत्सव को सफल बनाने के लिए प्रेम-विनोद रूप नशे की भी आवश्यकता होती है। भांग·········मीजमानी=प्रेम-क्रीड़ा, हँसी-विनोद एवं उत्साह-उमंग आदि भावों रूप भोज का आयोजन किया गया।

स्वतन्त्र और आनन्द स्वरूप होने से जीवात्मा-परमात्मा की एकता या मिलने की प्रक्रिया को योग कहते हैं। योग का साधन करने वाला ही 'योगी' (जोगी) है।

योग शास्त्र का माहात्म्य अपार है। वेद-शास्त्र, उपनिषद् व पुराणादि में भी इसकी बहुत कुछ महिमा गाई गई है। साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्णचंद्र मुख निर्गत श्री गीता जी में तो यत्र-तत्र योग का ही समर्थन देखने को मिलता है। इसीलिये अध्याय की समाप्ति में 'ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे' कहा जाता है। वास्तव में यह सर्व सम्प्रदाय मान्य, सर्व सम्मत और सर्व प्रिय है। श्रीमद्भागवत और वेदान्त दर्शनकार भगवान् वेद-व्यासजी ने तो योग-सूत्रों पर योग-भाष्य लिखकर योग के प्रति अपनी रुचि व सम्मति प्रकट की है।

सब शास्त्रों से पातंजल योग शास्त्र की एक विशिष्टता है। महर्षि पतंजलि की यह बड़ी ही अद्भुत रचना है। कल्पना व भावना के आधार पर इसकी नींव न होकर, अपने चरम ध्येय तक की साधन की प्रणाली प्रत्यक्ष अनुभव गम्य है। कहीं टटोलना नहीं पड़ता। मनोवैज्ञानिक ढंग पर अंतर्मानस का विश्लेषण कर सिद्धान्त पूर्वक उसे सूत्र बद्ध किया है।

योग दर्शन के तत्वों को जान लेने के बाद फिर कुछ जानने को बाकी नहीं रह जाता जैसा कि 'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्य ज्ञातव्यमवशिष्यते' (जिसको जान लेने पर फिर नया जानने को कुछ शेष नहीं रहता।)

स्वरूपतः मन के गुण धर्म, संकल्प-विकल्प शक्ति कैसी क्या है, हठधर्मी करने वाले मन को नियंत्रण में किस प्रकार

ध्यान योग एवं समाधि योग आदि योगों का समावेश हो जाता है। योग साधन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों व चमत्कारों का मोह न रखते हुए, उसे और आगे ही आगे प्रगति करते हुए एवं बीच में ही न रुकते हुए आगे बढ़ते रहना चाहिये।

योग पथ पर आरुढ़ होने वाले को अथवा योग साधन सिद्ध को ही 'योगी' यह संज्ञा दी जाती है। योगी का ही अपभ्रंश 'जोगी' है। 'जोगी' इस शब्द का सम्बन्ध नाथ संप्रदाय से माना जाता है। और नाथ संप्रदाय की परम्परा भगवान् शंकर से मानी जाती है। मंत्र–तंत्रादि शास्त्र सभी शिवजी को परम आश्रय मानकर चलते हैं, इसलिये ये 'आदिनाथ' कहलाते हैं। कहते हैं कि इन्होंने सर्व प्रथम पार्वती के आगे रहस्यपूर्ण योग-तत्व को प्रकट किया था। महाराष्ट्र के सिद्ध-प्रसिद्ध संत निवृत्तिनाथ महान् योगी थे। संत ज्ञानेश्वर को उन्हीं से दीक्षा मिली थी। अपनी 'ज्ञानेश्वरी' नामक श्रीगीता के टीका ग्रंथ में ज्ञानेश्वरजी ने अपनी गुरु-परम्परा के प्रति इस प्रकार निर्देश किया है—(१) आदिनाथ (२) मत्स्येन्द्रनाथ (३) गोरखनाथ, (४) गहनीनाथ, (५) निवृत्तिनाथ, (६) ज्ञानेश्वर।

११ वीं शताब्दी में गोरखनाथ काल माना जाता है। तभी से हिन्दी में नाथ संप्रदाय द्वारा योग सम्बन्धी साहित्य की रचना होने लगी।

योग-साहित्य की रचना संस्कृत में तो बहुत प्राचीन काल से पर्याप्त मात्रा में हुई है एवं थोड़ी बहुत नाथ संप्रदाय द्वारा भी हुई। हिन्दी भाषा में भक्ति के साहित्य में सगुण और

भगवावेष, मृगछाला, मुद्रा और अलख आदि शब्दों का अपने पदों में उल्लेख किया है। परन्तु सगुण भाव से तो उसमें योगेश्वर श्रीकृष्ण को ही 'जोगी' के रूप में देखा। क्योंकि वही श्यामसुंदर जोगी का भी भेष लेकर श्रीराधा व मीराँ के पास जाया-आया करते थे। और मीराँ भी जोगी के पीछे महल, वैभव और अपने सर्वस्व को तिलांजलि देकर जोगिन-वैरागिन बन चुकी थी। उसके पदों में भी यही भाव व्यक्त है। उसके प्रियतम होने पर भी जोगी-योगी-योगेश्वर-श्री कृष्ण भगवान् तो अनासक्त और निर्द्वन्द्व है तभी तो जीवन भर उनके दर्शन के लिये तरसती-तड़पती व रोती रही, तब कहीं जाकर उनकी उस पर कृपा हुई।

मीराँ के इस पद-विभाग में जोगी के ही पद हैं जो विशेष कर परमात्मा और उसके प्रियतम श्री कृष्ण को लच्य करके ही बनाये हैं। जिस प्रकार 'सद्गुरु-महिमा' के अधिकतर पदों में ईश्वर को लच्य करके ही गुरु भाव व्यक्त किया है त्यों इस जोगी विभाग में भी परमात्मा को लच्य करके ही जोगी भाव पदों में व्यक्त किया है। यह कहा जा सकता है कि मीराँ का निर्गुण भाव—रहस्यवाद, गुरु, सतगुरु और जोगी भाव के पदों में ही विशेष रूप से झलकता है। वैसे और भावों के पदों में भी कहीं कहीं है। इन पदों में भाव साम्यता देखी जाती है। सद्गुरु और जोगी दोनों भावों के पदों में रहस्य भरा है। अपने सद्-गुरु व जोगी के विरह में व्याकुल होना, दर्शन व मिलन की उत्कंठा, तथा दासी व जोगिन-वैरागिनी होने का भाव है। सद्गुरु व जोगी सम्बन्धी पदों में निर्गुण भाव से ईश्वर को पुकार है, प्रार्थना है।

इस प्रकार जोगी से प्रेम करना क्या एक दुःख मोल लेना है। भला जो भूल जाय वह हित चिंतक मित्र कैसा—

(४) जोगियारी प्रीतड़ी है दुख डारो मूल। हिलमिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल ॥

(५) जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होई, जोगी मित न कोई ॥

जोगी से कोई सुख की आशा भी तो नहीं। क्या विश्वास की प्रेम को निभायेगा ? अधबीच में छोड़ जाने वाले का क्या भरोसा ? यह क्या मित्रता का लक्षण है ?—

(७) मैं तो जाणुँ जोगी संग चलेगा, छोड़ गया अधबीच।

आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत ॥

(१४) जावा देरी जावादे जोगी किसका मीत। बोलत वचन मधुर अति प्यारे, जोरत नाहीं प्रीत ॥

सगुण उपासना की दृष्टि से सम्बन्ध देखा जाय तो मीराँ साक्षात् पूर्वजन्म की श्रीकृष्ण की प्रेयसी-गोपी थी, तब भला प्रियतम का दूर रहना अथवा अबोली रखना कैसे सहा जाय ?

(८) राजेश्वर जोगी अब तेरी मौनज खोल ॥ पूरब जनम की तेरी मैं गोपिका, बीच माँही पड़ गई झोल। पूरब जनम का कौल ॥

इसी जन्म में भी तो बालावस्था में जोगी के भेष में मंदिर में पूजा करने को जाते समय प्रेम-कटाक्ष करके योगेश्वर श्याम-सुन्दर ने पूर्व प्रेम का स्मरण दिलाया था—

१४–जोगी के पद

★

रहस्य १

तेरो मरम नहिं पायो रे जोगी ॥०॥
आसन माँडि गुफा में बैठो, ध्यान हरी को लगायो ॥१॥
गल बिच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सोही पायो ॥३॥

प्रेम-लगन २

जोगियारी सूरत मन में बसी ॥०॥
नित प्रति ध्यान धरत हूँ दिल में, निसदिन होत कुसी ॥१॥
कहा करूँ कित जाउँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु कबरे मिलोगे, प्रीत रसीली बसी ॥३॥

विरह ३

म्हारे घर रमतो ही आई रे तू जोगिया ॥०॥
कानाँ बिच कुंडल गले बिच सेली, अंग भभूत रमाई रे ॥१॥
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, ग्रिह अंगणो न सुहाई रे ॥२॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यौ मोकूँ आई रे ॥३॥

निर्मोहीपन ४

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल ॥०॥
हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल ॥१॥
तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चँमेली के फूल ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़ा में सूल ॥३॥

पूरब जनम की तेरी मैं गोपिका ।
बीच माँही पड़गई झोल ॥१॥
सहस्र गोप्याँ संग रमताजी मोहन ।
कई मैं बजाउँ अब ढोल ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
पूरब जनम का कौल ॥३॥

निर्मोहीपन ९

मैंने सारा जंगल ढूंडा रे, जोगीडा न पाया ॥०॥
कानु बीच कुंडल गले बीच शैली, घर घर अलेक जगाया रे ।२।
अगर चंदन की धुणी धखाई, अंग बीच भभुत लगाया रे ॥२॥
बाइ मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, शबद का ध्यान लगाया रे ॥३॥

विरह १०

जोगिया तें जुगत न जाणी हो ।
मैं तो आसिक तेरड़ी तोने दया न आणी हो ॥०॥
तूं भी स्वारथ को सगो परदुःख न जाणी हो ।
तो मो बीच बिछोह भो कोई दाणा पाणी हो ॥१॥
तुम बिन कल मोइ ना पड़े मच्छी बिन पाणी हो ।
तुम बिन मैं कैसे जियूं रैन तलफ बिहानी हो ॥२॥
जा दिन ते तुम बिछड़े मेरे भई हानी हो ।
तो कारण बन बन फिरूँ होय प्रेम दीवाणी हो ॥३॥
खान पान की सूध नहीं काया कुम्हलाणी हो ।
अब तो बाकी ना रही पिंड त्यागे प्राणी हो ॥४॥
पतित पावन तो बिड़द है (याही) बेद बखानी हो ।
मीराँ कूं द्यो दरस प्रभुजी अब सुखदानी हो ॥५॥

सदां उदासि रहै मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत ॥१॥
बोलत वचन मधुर अति प्यारे, जोरत नाहीं प्रीत ॥२॥
मैं जाणूँ या पार निभैगी, छाँड़ि चले अधबीच ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत ॥४॥

विरह-तीव्रता १५

जोगी मतजा मतजा मत जा पाँव परूँ मैं तेरी ॥०॥
प्रेम-भक्ति को पैंड़ो हि न्यारो, हमकूँ गैल बताजा ॥१॥
अगर चँदन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा ॥२॥
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगाजा ॥३॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिलाजा ॥४॥

विरह १६

जोगी म्हाँने दरस दियाँ सुख होइ ॥०॥
नातरि दुखी जग माहिं जीवड़ो, निस दिन झूरै तोइ ॥१॥
दरस दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस ॥२॥
मीराँ दासी भई हैं पंडर, पलट्या काला केस ॥३॥

विरहालाप १७

जोगिया ने कहियो रे अदेस ।
आऊँगी मैं नाहिं रहूँ रे कर जटाधारी भेस ॥०॥
चीर को फाड़ कंथा पहिरूँ लेऊँगी उपदेस ।
गिनते गिनते घिस गई रे मेरी उंगलियों की रेख ॥१॥
मुद्रा माला भेष लूँ रे, खप्पड़ लेऊँ हाथ ।
जोगिन होय जग ढूंढ़ सूँ रे, सांवलिया के साथ ॥२॥
प्राण हमारा वहाँ बसत है यहाँ तो खाली खोड़ ।
मात पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़ ॥३॥

चीछड़ियाँ कोइ भौ भयो (रे जोगी), ऐ दिन अहला जाय।
एक वेरी देह फेरी, नगर हमारे आइ ॥२॥
या मूरति मेरे मन वसे (रे जोगी); छिन भरि रह्योइ न जाइ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यौ हरि आइ ॥३॥

विरहालाप २१

धूतारा जोगी एकर सूँ हँसि बोल ॥०॥
जगत वदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृगछाला, तू जन गुढियाँ खोल ॥१॥
सदन सरोज वदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद वभूत न वटवो, अजूँ मुनी मुख खोल ॥२॥
चढती वैस नैण अणियाले, तूँ घरि घरि मत डोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल ॥३॥

अनन्यभाव २२

जोगिया मेरे तेरी मनसा वासा करमणा, प्रभु,
पूरवौ मेरी ॥०॥
मैं पतिवरता पीव की हो मोल लयी चेरी।
तुम बिना कोऊ दूजो देवा, सुपनै नहिं हेरी ॥१॥
मात पिता सुत बंधु दारा, अै पांव में वेरी।
तुम बिना कोऊ नाहीं मेरो, प्रगट कहूं टेरी ॥२॥
एक विरियाँ मेरे नगर प्रभु, दे जावो फेरी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रखो चरण नेरी ॥३॥

विरह २३

जोगियारे तू कबहु मिलेगो मोकूँ आय ॥०॥
तेरे कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाय ॥१॥

लोक लाज विसारि डारी, छांड्यौ जग उपदेस ।
विरह अगनि में प्राण दाझै, सुणि लीज्यौ आदेस ॥
पांच मुद्रा भाव कंथा, नख सिख साजे साज ।
जोगणि होइ जग ढूँढिस्यूं, म्हारी घरि घरि फेरी आज ॥२॥
दरद दिवानी तन जानि अपनी, मिलिया राम दयाल ।
मीराँ कै मन आनंद उपज्यौ, रोम रोम खुसियाल ॥३॥

वैराग्यभाव २८

बाई म्हारे नैना रावल भेष ॥०॥
वे स्यामी व हो जटाधारी । अबही अंजन रेख ॥१॥
स्वेत वरण रँग कंथा पहरया । भिक्षा माँगी देस ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । करहुँ अलख अलेख ॥३॥

दर्शनानंद २९

आँण मिल्यो अनुरागी, जोगियो (आँण मिल्यो अनुरागी) ॥०॥
साँसो सोच अंग नहिं अब तो । तिस्ना दुवध्या त्यागी ॥१॥
मोर मुकुट पीताम्बर सौहै । स्याम वरण बड़भागी ॥२॥
जनम जनम को साहिव मेरो । वाहीसों लौं लागी ॥३॥
अपणाँ पिया सँग हिल मिल खेलू । अधर सुधारस पागी ॥४॥
मीराँ गिरधर के मन मांनी । अब मैं भई सुभागी ॥५॥

विरह ३०

जोगिया हो, दरसण दो महाराज ।
करजो रे करूणा करूं रे वा'ला, बांय गह्य की लाज ॥०॥
साच मुद्रा सीलकंता, तन मन राखूं साज ।
जोगण होय जग ढूंढसां रे वा'ला, घर घर फेरी आज ॥१॥
लोक लाज बिसार बैठी, छोर्यो कुल उपदेश ।
बिहे अंग जले प्रान जरत है, सुण लीज्यो आदेश ॥२॥

ब्रजभाव (पूर्व संस्कार) ३२

घुतारा जोगी एक बेरीया मुख बोल रे ॥०॥
कानन कुंडल गल बिच सेली अब तेरी मुन खोल रे ॥१॥
रास रच्यो वंसीवट जमुना ता दिन कीनो कोल रे ॥२॥
पूरब जनम की मैं हूँ गोपिका अब बिच पड़ गयो झोल रे ॥३॥
जगत वंदि ते तुम करो मोहन अब क्यों बजाऊँ ढोल रे ॥४॥
तेरे कारन सब जग त्यागो अब मोहें कर सों लोल रे ॥५॥
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर चेरी भई बिन मोल रे ॥६॥

च-२ (रचाऊँ) चिणाऊँ। च ४ जोत में जोत मिलाजा।

नये चरण:—

तेरे कारण प्रेम भक्ति की, मढी रची तुं आजा।
पाय परू ं मैं चेरी तेरी, जातो चिता में जलाजा।

भावार्थ:—जोगी........बताजा=प्रेमियों के सुख-सहवास के दिन पंख लगा कर उड़ जाते हैं तत्पश्चात् वियोग की घड़ी उपस्थित होती है। वियोग की व्यथा से प्राण व्याकुल हो उठते हैं, तब जिसके कारन असह्य विरह-ताप को सहना पड़ रहा हैं, उस प्रेम पथ का दिग्दर्शन कराने के हेतु, जोगी के भेप में आये हुए और अब बिछड़ते हुए अपने ही प्यारे श्याम सुन्दर को रुकने के लिये मीरांबाई बार-बार 'मतजा' कहती हुई चरणों में प्रार्थना करती है। अगर... ......जलाजा=हे मेरे प्यारे जोगी! तुम्हारे विरह में एक क्षण भर भी मेरे प्राण देह में नहीं रह पाएँगे यह निश्चित है! इसलिये जाने के पहले मेरे निर्जीव शरीर को मेरे ही द्वारा रची हुई अगर-चन्दन की चिता में अपने ही हाथों से जलाकर जाओ जिससे मेरा यह भौतिक शरीर भी अंतिम क्षण तक तुम्हारे कोमल कर कमलों के स्पर्श सुख के सौभाग्य को प्राप्त करे। जल.........लगाजा=(परन्तु) हे जोगी! अगर-चन्दन की उस मेरी चिता में केवल अग्नि प्रज्ज्वलित करके ही न चले जाना! जिस तन के रोम-रोम में एक मात्र तुम्हीं समाये रहे और जिस काया मन द्वारा अन्तिम क्षण तक एक मात्र तुम्हारा ही ध्यान-स्मरण होता रहा, भला उस काया की भस्म को क्या यों ही वायु द्वारा इतस्ततः निराधार उड़ती हुई छोड़कर चले जाओगे ? ऐसा तो नहीं करना जोगी! मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को अवश्य ही कृपा कर स्वीकार कर लेना! जब चिता पूर्ण रूप से जलकर मेरे शरीर की सर्वथा राख बन जायगी तब उसे यत्न पूर्वक बटोरकर अपनी झोली में भर लेना और नित्य उसे अपने अङ्ग में रमाया करना जिससे चित्त को यह सुख समाधान होगा कि जीवित रहते तो प्राण प्यारे के सहवास के लिये तड़फती रही परन्तु मरने के बाद भस्म रूप से ही सही प्यारे के श्री अङ्गों में लिपटी रहूँगी, और बरबस उन्हें भी भस्म रमाते समय

२०—पाठान्तर—टेरः—जोगिया आवरे इण देस ।
आवत देखूँ नाथ मेरा ध्यान करूँ आदेस ॥

चरण-३:—वा सुरत मेरे मन बसैरे पल भर रह्यो न जाइ ।
मीराँ के कोई नहिं दूजो दरस द्यो हरि आय ॥

२१—एक रसूँ=एक वार भी तो । गुढ़ियाँ=गूढ़, रहस्य । नाद=योगी के वजाने का सींग वाजा ।

२२—मेरे तेरी=मुझे तेरी लगन लगी है—तेरा ही आधार है।

२६—निरंजन=माया रहित । फूतली=पुतली, माया नटी ।

भावार्थ:—निरंजन..........रमता=अखिल ब्रह्मांड में-सकल चराचर में एक मात्र परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है । गढ़..........पाता=परमात्मा अपनी प्रकृति द्वारा चराचर सृष्टि की रचना कर स्वयं निर्लेप रहता है और प्रकृति द्वारा प्रकृति के निर्माण एवं विनाश की कार्य-परंपरा चला करती है । श्री गीता में भगवान ने कहा है :—

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥७-६॥

'मैं संपूर्ण जगत का उत्पति तथा प्रलय रूप हूँ—सम्पूर्ण जगत का मूल कारण हूँ ।' तथा:—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ ६-१० ॥

'हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से यह मेरी माया चराचर सहित सर्व जगत को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतु से ही (त्रिगुण प्रकृति निर्मित स्वभाव वश कृत कर्मानुसार सृष्टि

२७—पांच मुद्रा=१ ध्यानमुद्रा, २ अभय मुद्रा, ३ वरद मुद्रा, ४ व्याख्यान मुद्रा, ५ ज्ञान मुद्रा। पांच..............आज=पांचों भाव—मुद्रारूप कंथा तथा भेष के योग्य आवश्यक सब साज सज कर जोगिन होकर आज से घर घर फेरी देती हुई संसार में विचरण करूँगी।

हुई, गौओं को आनन्दित करती हुई, गोपजनों को सम्भ्रम में डालती हुई, मुनियों की समाधि भंग करती हुई, सप्तस्वरों को विस्तारित करती हुई और ॐकारार्थ को प्रकट करती हुई श्यामसुन्दर की वंशी-ध्वनि की सदा सर्वदा विजय है।

सनातन धर्म में ज्यों प्रायः अधिकतर देवी-देवता शस्त्रधारी हैं त्यों साथ ही साथ अथवा स्वतन्त्र रूप से वाद्यों को भी धारण करते हैं, यथा शिवजी का त्रिशूल के साथ डमरू को, श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र के साथ मुरली को और सरस्वती का वीणा को धारण करना इत्यादि।

संगीत शास्त्र में वाद्यों के चार प्रकार माने जाते हैं।

(१) 'तत' अर्थात् तंतुवाद्य-यथा बीन, सारंगी, वीणा, स्वरमंडलादि,

(२) 'वितत'—अर्थात् चर्म से मढ़ा हुआ यथा मृदंङ्ग, डफ, डमरू, खंजरी, ढोल, ढोलक आदि, (३)—'घनवाद्य'-अर्थात् ठोसवाद्य यथा—करताल, झांझ, मजीरा, जलतरंग आदि और (४) 'सुपिर'-अर्थात् वायुवाद्य यथा मुरली, शहनाई आदि। इसी मुरली को श्रीकृष्ण भगवान् ने अपनाया था। साधारण बांस के बने इस मुरली वाद्य को ही श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् ने क्यों अपनाया, इस पर सामान्य दृष्टि से तो यह कहा जा सकता है कि सभी वाद्यों में एक मात्र वेणु ही सर्वानु-कूल वाद्य है। बोझ नहीं, बड़ा आकार नहीं, तार आदि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं, दूर तक सुनाई देने वाली,

प्रतीत होगा ! विस्तृत प्राङ्गण, निरन्तर रजत धाराओं से पृथ्वी को धवलित करता हुआ नक्षत्र मण्डल का सूत्र संचालक सुधाकर, चाँद के चमकीले वैभव के साथ तद्रूप होकर अठखेलियाँ करती हुई लहरियों से छलकती सरिता का मन्थर प्रवाह उस पार वनराजि, तथा शांत मध्य-रजनी ऐसे सुन्दर समय में किसी निकटवर्तिनी पहाड़ी पर से कोई संगीत-सिद्ध कलाकार समयोचित राग रागिणी में भावोन्मत्त होकर वंशी की तान छेड़ता हो तो उस नीरव वातावरण में बहती हुई उन मधुर स्वर लहरियों को सुनकर, कौन ऐसा प्राणी होगा कि जिसका चित्त एक बार भी फड़क न उठे ! कौन ऐसा मानव-हृदय होगा जो उस अनोखी सृष्टि के भावों में रंग नहीं जायगा।

जब सामान्य मानव-कला का यह चमत्कार है तो पूर्णावतार योगेश्वर, रसिक-शिरोमणि, नटवर और रास विहारी, मुरलीधर, श्यामसुन्दर जब स्वयं वंशी बजाते हों तब तो भला कहना ही क्या ! 'रन्ध्रान्वेणोरधर सुधया पूरयन्' अर्थात् ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र की सुधामयी स्वर परम्परा को प्रचारित करने वाली उस वंशी के बजने पर देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, योगी-मुनि, नर-नारी, एवं पशु-पक्षी आदि मोहित होकर अपने कर्त्तव्य तथा काया-वाचा-मन की सुधि भूल जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? वंशी के प्रभाव से जड़-प्रकृति में भी किस प्रकार रस-संचार होता है देखिये—रसोई बनाते समय वंशी-ध्वनि सुनकर कोई गोपी कृष्ण से प्रार्थना करती है:—

मुरहर ! रन्धन समये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।
नीरसं मेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम् ॥

हे सखि ! न जाने इस वंशी ने क्या पुण्य किया जो गोपियों के भोग्य दामोदर के अधरामृत का स्वच्छन्दता पूर्वक पान कर रही है ! वह भी सब का सब पी जाती है, तनिक भी शेप नहीं रहने देती ।

गोविन्द वेणु मनुमत्त मयूर नृत्यं ।
प्रेक्ष्याद्रिसान्व परतान्य समस्त सत्वम् ॥
(श्रीमद्भा० १० । २१ । १०)

गोविन्द की वंशी सुनकर मयूर मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं और उनका नृत्य देखकर पर्वतों की चोटियों पर रहने वाले समस्त जीव (मृग प्रभृति) मारे आनन्द के निश्चेष्ट हो रहे हैं ।

श्रुत्वा च तत्कणित वेणु विचित्र गीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्न सारा ।
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहु र्विनीव्यः········ ॥
(श्रीमद्भा० १०।२१।१२)

अपने पतियों के पास बैठी हुई, विमानों में जाती हुई, देवाङ्गनायें जब वंशी का विचित्र स्वर सुनती हैं तो वे प्रेमावेश के कारण धैर्य खोकर मोहित हो जाती हैं, उनके बंधे हुए बालों की चोटियों के पुष्प गिर पड़ते हैं और उन्हें अपने वस्त्रों की भी सुधि नहीं रहती ।'

गावश्च कृष्ण मुखनिर्गत वेणुगीत
पीयूषमुत्तभित कर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥
(श्री मद्भा० १०।२१।१३)

गौएँ भगवान् की मुख से बजाई गई वंशी की अमृतध्वनि को अपने कानों को ऊपर उठाकर दोना-सा बनाकर पी लेती

जलद समूह को स्तम्भित करता हुआ, स्वर्ग में देव-गायक तुम्बरु को पुनः पुनः चकित करता हुआ, स्वयं प्रजापति ब्रह्मा को विस्मित करता हुआ, यों उर्ध्वलोक में अपनी विजय-पताका फहराकर नीचे पाताल की ओर चला और वहाँ राजा बलि को चौंका कर नागराज अनन्त शेषनाग के सहस्त्रफणों को कँपाकर, अखिल ब्रह्माण्ड कटाह को भेदकर श्रीकृष्ण का वह वंशी संगीत सब ओर फैल गया।

'निशम्य गीतं तदनङ्ग वर्द्धनम्'—

अर्थात् वंशी के उस दिव्य अनङ्ग-वर्द्धक और आनन्दमय संगीत को सुनकर, गृहकाज एवं लोकलाज आदि को तिलांजलि देकर प्रेम-विह्वल हुईं गोप-ललनाएँ किस प्रकार श्यामसुन्दर के पास दौड़ी हुई चली जाती हैं, श्रीरास-पञ्चाध्यायी में इसका बड़ा ही भाववाही, अलौकिक और रोचक वर्णन है।

मुरली के अमोघ प्रभाव के कारण ब्रज गोपियों की दशा ही दयनीय हो जाती है। शरीर, मन, वचन की सुधि नहीं रह पाती, क्या करने जाती हैं और क्या हो जाता है। कैसी विवशता! वास्तव में वंशी की ध्वनि का कानों से सुनना ही लोक-लाज मर्यादा का हठात् त्याग होजाना है। इसका उपाय एक गोपी दूसरी गोपी से सुनाती है:—

सुनती हो कहा भज जाहु घरै,
बिंध जाओगी नैनन के बानन में।
यह वंशी निवाज भरी विष सों,
बगरावत है विष प्रानन में॥
अबही सुधि भूलि हो भोरी भटू,
भँवरो जब मीठीसी तानन में।

प्रति इस सौतियाडाह की मनोवृत्ति के रहते हुऐ भी कभी राधा मुरली पर कृपा की वर्षा भी करती सी दिखाई देती हैं, यथा:—

> श्याम तेरी बंसरी नेक बजाऊँ।
> जो तुम तान लहो मुरली में, सोई सोई गाय सुनाऊँ॥

न जाने यह भाव-परिवर्तन समझौते का लक्षण है अथवा उतने समय के लिये ही सही मुरली को श्यामसुंदर से वियुक्त कर देने की भावना का द्योतक।

वंशी-ध्वनि को सुनकर वास्तव में गोपियों की श्रीकृष्ण दर्शन की उत्कण्ठा उस सीमा तक पहुँच जाती है कि जहाँ माया—मोहादिक प्रलोभन का कोई आकर्षण नहीं, सांसारिक प्रवृत्तियाँ सारहीन प्रतीत होती हैं एवं आत्मीयजनों का कोई ममत्व नहीं रह पाता। न भय, न शङ्का, न लज्जा, न संकोच! चित्त में कोई भोग-स्पृहा की मलिनता नहीं, न आत्मतृप्ति की संकीर्णता ही। इस प्रकार 'यादुस्त्यजं स्वजनमार्य पथं च हित्वा' अर्थात् कठिनाई से भी नहीं छोड़े जा सकने वाले ऐसे, अपने बान्धव और कुल की श्रेष्ठ रीतियों को त्यागकर परमानन्द विभोर हो उन दिव्य भावोन्मादिनी व्रज-गोपियों ने अन्त में, 'भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्' अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान् का भक्ति मार्ग पाया जिसको श्रुतियाँ भी ढूँढा करती हैं।

भगवान का वंशी वादन यह वास्तव में संगीत के एकाधिपत्य और सार्वभौम प्रभाव का प्रकटीकरण है या यों कहा जाय कि अखिलविश्व की उत्पत्ति, स्थिति, और लय की समस्त स्थूल एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया की गति में नाद व्याप्त है—और

ही कम्पन अनिवार्य होता है और कम्पन से नाद की उत्पत्ति होती है, चाहे नाद मंद्रातितम ही क्यों न हो ! सम्भव है भविष्य में कभी विज्ञान इस रहस्य का अनेकों अनुभव कराने जैसे स्तर को प्राप्त करे। इस प्रकार प्रकृति के समस्त व्यापार में एक मात्र संगीत ही व्याप्त है।

सागर की उत्ताल तरंगें, मेघगर्जन, झरने की कलकल-ध्वनि, वायु के झकोर, झिल्लियों की झनकार, जल-प्रपात का गंभीर घोष एवं देह में नाड़ियों का तद्गतिजन्य अनाहत-नाद आदि प्रकृति का दिव्य संगीत भी भावोर्मियों को जगाकर हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। इस प्रकार अखिल प्रकृति नाद-ब्रह्ममय है।

जगत के सभी साहित्यों में संगीत का प्रभाव माना गया है। पाश्चात्य साहित्य में एक प्रार्थना गीत में ड्रायडन ने बताया है कि संगीत में निर्माण की ही नहीं अपितुलय की भी शक्ति वर्तमान है। स्टीवेन्सन ने अपनी कल्पना द्वारा एक प्रकृति-निर्माता को चित्राङ्कित किया है, जो वंशी बजा रहा है।

भगवान का वंशी-वादन क्या है, विश्व कल्याणार्थ प्रेम संदेश है, प्रेमी भक्तों को उनकी ओर जाने के लिये आह्वान है, सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, के सिद्धान्तानुसार त्यागमय कर्तव्य की स्मृतिदायिनी प्रेरणा है, भक्त की हार्दिक पुकार और चिर-साध को पूर्ति के लिये मंगल वरदान है। प्राणियों के लौकिक दिव्य बंधनों से सहज त्राण पाकर भगवदाश्रय ग्रहण करने के लिये शक्ति-दान है और जन्म जन्मांतरों से प्रिय मिलन के हेतु तड़पते हुए प्रेमाभक्ति के अन्तरंग उपासकों

की जागृति के लिये। कहीं वीरता संचार के लिये तो कहीं धार्मिक भावोद्दीपन के लिये। कहीं गोपियों में इर्ष्या-प्रेम-अभ्यर्थना-अनुराग-करुणा एवं उत्कंठा आदि विविध भावों को उकसाकर मुरली उनकी मनःसृष्टि में खलबली मचा देती है तो कभी उसके मानस को यथार्थ रूप से समझने के लिये जिज्ञासा करने के लिये उन्हें बाध्य करती है। निर्गुण साधन में भी नाद के प्रकट होने पर 'मुरली' का शब्द सुना जाता है और समाज में कोई सुखी प्राणी भी चैन की वंशी बजाता है सारांश कि जीवन-क्षेत्र में कई दृष्टि से साहित्य और कला के उपासकों ने मुरली को अपनाया है।

भगवान की इस 'वंशी' पर मीरांबाई ने भी बहुत से पद बनाये हैं जो 'मुरली' के इस स्वतंत्र विभाग में दिये गये हैं। मीराँ जैसी प्रेम-योगिनी और श्रीकृष्ण की जन्म-जन्म की प्रेयसी के लिये तो ब्रजभाव उसकी आत्मा और 'मुरली' उसके प्राणों के समान है। उसके रोम रोम में वंशी-ध्वनि समा गई थी और उसके श्रवण युगल निरन्तर एक मात्र अपने प्यारे की मुरली की तान मधुरी को ही सुना करते थे। उसके ब्रज जीवन की अभिलाषाओं में मुरली ने जो रस-सिञ्चन किया है उससे उसके पदों में सजीवता आगई है।

पद संख्या २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १५, १६, २०, २१, ३२ एवं ३४ ये १३ पद गुजराती भाषा के हैं।

पद संख्या १३, १८, २३, २५, ३०, ३१, ३३, ३४, ३५, ३६ एवं ३८ इन ११ पदों में बछड़े गौएँ व मृगादिक पशु पक्षियों का मोहित हो कर खाना पीना भूल जाना, ॐ की सुरता

(५) मन रे मारुं मोरली ए मोह्युं, पेला बांस तणे कटके' उसकी ऐसी स्थिति होगई।

मुरली वृन्दावन में बजती है पर त्रिलोक भर में उसका स्वर गूँज उठता है—

(१८) वागे छे रे वागे छे वृन्दावन मुरली वागेछे, तेना शब्द त्रिलोक मां गाजे छे।

उस मुरली ने—

(६) मीराँ के प्रभु वश कर लीनें' है ऐसी वह ब्रज गोपियों के लिये-

(६) सप्त सुरनताननि की फाँसुरी, बनी हुई है।

यह सब कुछ होते हुए भी मुरली दुःख देने वाली भी है,

(२०) कानुड़ा तारी मोरली अमने दुःखड़ां दीए छे दोडी दोड़ी।'

ऐसी स्वार्थ और गर्व भरी मुरली को मीराँ खरी खोटी सुनाने से भी नहीं चूकती—

(१६) बन्सी तुम कवन गुमान भरी, तुम राधा से झगरी, जात पात हुँ तोरी मैं जानूँ, तू बन की लकरी।

(२२) चार आंगल की लाकड़ी, कोड़ी बाँको मोल। कृष्ण बजाई बाँसरी, व्हेगी मोला मोल।

यही नहीं जिसके कारण श्यामसुन्दर उसे व गोपियों को भूल भी जाते हैं उस कुटिल मुरली के प्रति सौतिया डाह के मारे हिंसात्मक भाव भी कुछ काल के लिये मीराँ के हृदय में आ जाता है—

(२२) जो मैं थाँने अशी जाणती तो लेती तोड़ मरोड़।

(२६) यहाँ मधुबन के कटा डारूँ बाँस, उपजे न बांस न बाजे मुरलिया।

तारा सरखां प्रभु कोई नव दीठा, मुखडे मनडा मोह्यां ॥२॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमले चित प्रोया॥३॥

प्रेमालाप ५ (गुज०)

लीधां रे लटके, म्हारां मन लीधां रे लटके ॥०॥
गात्र भंग कीधां गिरधारी ए, जो मार्यां झटके ॥१॥
मन रे मारूं मोरली से मोह्युं, पेला वांस तणे कटके॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हो रंग लाग्यो चटके ॥३॥

आतुरता ६ (गुज०)

वागे छे रे, वागे छे, पेला वनडामां मीठी वेणुं वागे छे,
दुर्जन नो डर लागे छे ॥०॥
सासु सुती मारी सुख निद्रामां, जाउंतोरे नणदल जागे छे ॥१॥
ससरो हमारो परम सोहागी,
दीयेरीओ छणछणो दिलमां दाझे छे ॥२॥
मीरां बाइ के प्रभु गिरधर ना गुण, जन्म मरण से लागे छे ॥३॥

प्रभाव ७ (गुज०)

एक दिन मोरली बजाइ, कनैया एक दीन मोरली बजाइ ॥०॥
मोरली ना नादे मारो मन हर लीनो, ओम् की सुरता उठाइ ॥१॥
गौओ तो सब घास ना खाये, × × × × ॥२॥
शर्वरी तो वळी स्तंभ भइ हे, चंद्र गयो छुपाइ रे ॥३॥
मेघ घटाघट थई रही छे, बादरी कारी गै वाही रे ॥४॥
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित्त धाइ रे ॥५॥

व्रजभाव-प्रेम ८ (गुज०)

मार्यां छे मोहनां बाण, वा'लीडे अमने मार्यां छे मोहनां बाण ॥०॥
तमारी मोरलीए मारां मनडां विंधायां, विंधायां तन मन प्राण॥१॥

व्रजभाव १२

मुरली बाजी तो सही, मेरे राधे गोपीनाथ की,

मुरली बाजी तो सही ॥०॥

अध गोकुल अध मथुरा नगरी, आसा लाग रही ।

म्हारा नैणाँ में नीर भर आयों, जमुना उलट रही ॥१॥

एक दिन घर मेरे आयो साँवरियो, म्हैं दधि मथत रही ।

लूट लूट दधि खायो साँवरिया- हमने कछु न कहो ॥२॥

मोर मुकुट कानों बिच कुंडल, पहिरो तो सही ।

सज सोलह शृंगार श्याम घर, आवो तो सही ॥३॥

मैं दासी तोरे जनम जनम की, अब हरि शरण गही ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणे लिपट रही ॥४॥

व्रजभाव (प्रभाव) १३

कुण है सखी प्यारी कुण है सखी ।

ऐसी वंशी बजाय रह्यो कुण है ॥०॥

बछवा खीर नीर तज दीनो, गउ तो चरे नहीं तृण है ॥१॥

खग मृग तो दोये पंछी मोह्या, मोह्या बनका बन है ॥२॥

शेष नाग भवन तजि आयो, सुण मुरली की धुन है ॥३॥

मीरांबाई के हरि गिरधर नागर, हरि के चरण चित लीन है ॥४॥

व्रजभाव (प्रेमालाप) १४

बाँसुरी सुनौंगी मैं तो बाँसुरी सुनौंगी ।

वो वंशीवाले को जाने न दूँगी ॥०॥

वंशीवाला मुझे एक कहेगा । एक के लाख सुनावौंगी ॥१॥

बिंद्राबन की कुञ्ज गलिन में भर भर फूल चुनौंगी ॥२॥

इत गोकुल उत मथुरा नगरी । बीचमें आय अड़ावौंगी ॥३॥

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । चरण कमल बलि जावौंगी ॥४॥

ब्रजभाव-प्रभाव १८

मन मेरा मोह्याजी वजाई कौन बैन ।।०।।
पट आभूषण सोई मैं भूली, अंजना भूल गई नैन ।।१।।
इन्द्रलोक चतर गुण भूल्या, चंदा भूल गया रैन ।।२।।
शेषरीनाग भवन तज आयो, सुणरियो मुरली की तान ।।३।।
गावत वजावत गंधर्व भूल्या, वे पण भूल गया तान ।।४।।
ठौड़ ही ठौड़ आसन मुनि-जन का, वे पण भूल गया ध्यान ।।५।।
मीरांबाई के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां में म्हारो ध्यान ।।६।।

ब्रजभाव-लीला १९ (गुज०)

वागे छे रे वागे छे, वृन्दावन मोरली वागे छे,
तेनो शब्द गगनमां गाजे छे ।।०।।

वृंदा ते वनने मारग जातां, वा'लो दाण दधिनां मागे छे ।।१।।
वृंदा ते वनमां रास रच्यो छे, वा'लो रासमंडळ मां विराजे छे ।।२।।
पीळां पीतांबर जरकसी जामा, वा'ला ने पीळो ते पटको बिराजे छे।।३।।
काने ते कुंडळ मस्तके मुगट, हांरे वा'ला मुख पर मोरली विराजे छे।।४।।
वृंदा ते वननी कुंजगलन मां, वा'लो थनक थै थै नाचे छे ।।५।।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, वा'ला दर्शनथी दुःखडां भागेछे।।६।।

ब्रजभाव-प्रेमालाप २० (गुज०)

कानुडा तारी मोरली अमने दुःखडां दीए छे दा'डी दा'डी ।।०।।
माझम रातनी, मधुर स्वरनी, व्हालाजी मुरली कोणे वगाडी ।
हुंरे सुती'ती मारा शयन भुवन मां, मुंने निंद्रामाथी जगाडी।।१।।
कयोरे कवाडी तुने कापीने लाव्यो, व्हालाजी कयोरे सुनारे तुंने सँवारी
शरीर जोने ताडुं संघाडे चडावी, तारा, पंडडा मां छेद पडावी ।।२।।
मोरली कहे हुं कामणगारी व्हालाजी, छुं हुँ व्रजकेरी नारी ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तनडा मां ताप समावी ।।३।।

थूँ से वृजकी वंशरी म्हें हूँ वृज की नार ।
दोनों एकाँ गाँव की रेस्याँ मतो विचार ॥४॥
वंशीवाला मोहना वंशी फेर बजाय ।
आ वंशी मनमोहनी लहर लहर जीव जाय ॥५॥
मीराँ मन माती फरे बाँध भक्त को मोड़ ।
दर्शन दीजो कृपा करजो नागर नंदकिशोर ॥६॥

व्रजभाव (प्रभाव) २३

श्याम की वंशी जमुना पर बाज रही ॥०॥
नेवर हाथ में हाँस जो पग में ।
तो सुध बुध सघली बिसराई ओ ॥१॥
बेसर हाथ में मुनडी जो नाक में ।
तो करणफूल भुल आई ओ ॥२॥
साडी जो हाथ में लेहंगो जो गले में ।
तो चोली की कस तडकाई ओ ॥३॥
दाल अलूणी लूण खीर में ।
हरि उलट पुलट कर आई ओ ॥४॥
जल मांहि जावण दूध मांहि अणती ।
तो सुध बुध सघली बिसराई ओ ॥५॥
बालक ठाण में बछडा खाँख में ।
तो सुध बुध सघली बिसराई ओ ॥६॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ।
चरण कमल लपटाई ओ ॥७॥

व्रजभाव (प्रेम) २४

जमुना किनारे वंशरी महाराज ने बजाई ।
महाराज ने बजाई घनश्याम ने बजाई ॥०॥

थारे थारे खातिर प्रभु सेज बिछाई,
थें पुरुष में नारी जी ॥४॥
आओ आओ प्रभुजी चौपड़ खेलाँ,
थें पासा में स्यारी जी ॥५॥
जो मोरे प्रभुजी कु भूख लगेगी,
बण जाऊँ छप्पन त्यारी जी ॥६॥
जो मेरे प्रभुजी कु प्यास लगेगी,
भर ल्याऊँ गंगाजळ झारी जी ॥७॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल बलिहारी जी ॥८॥

उत्कंठा २७

कलेजे म्हारे बाँसुरी की धुन लागी ॥०॥
हौं अपने गृह काज करत रही । श्रवण सुनत उठ भागी ॥१॥
खान पान की सुधि न सखी री.। कल न पडे निसि जागी ॥२॥
रैन दिनां गिरधरनलाल के । मीराँ रहै रंग पागी ॥३॥

लीला २८

इन काना की बंशी म्हांने लागे प्यारी माय ॥०॥
आज बिरज पर इन्दर कोप्यो, बरसे मूसलधारा ।
बाँवां नख पर गिरवर धारयो, डूबत बिरज उबारा ॥
गऊ बछड़ा भीजे री माय ॥१॥
पाँव पयादे सब चल आये, सुन मुरली का बाजा ।
मृत्युलोक में टटियां छाई, जहाँ देवन का वासा ॥
ब्रह्मा विष्णु खडेरी माय ॥२॥

नारद नृत्य करंता आगे, हांरे नाचे राधा सखीओ लई ।।२।।
ब्रह्मा वेद भणंता आगे, हांरे त्यां सुर्यस्थंभी रह्यो मोही ।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, हांरे एवी कृष्णजी ए मोरली
बजाई ।।४।।

ब्रजभाव ३२ (गुज०)

ए मोरली शीद वाई, धुतारा ए मोरली शीद वाई ।।०।।
ए मोरली मारे मंदिर संभळाई, काळजडुं गयुं कोराई ।।१।।
जल जमुना ना भरवा गया त्यां, पालव पकडी शीद साई ।।२।।
पर घेर वात पडी चर्चाय छे, सैयरों मां लजवाई ।।३।।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमळ चित लाई ।।४।।

शरत्पुनम-ब्रजभाव ३३

घर छोडी दोडी वन जाय, शरदपून की बंसी बाजी ।।०।।
हींग डार्यो भात में, लुण खीर के मांही ।
कर कंकण पग में सोहे, घुंघर गले झबकाई ।।१।।
बांस में से निपजी, निकसी परवत फोड़ ।
जो जाणुं तुं वाजती तो, देती तोड़ मरोड़ ।।२।।
वृंदावन की कुंज गलि में, बोले दादुर मोर ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मील गयो नंदकिशोर ।।३।।

ब्रजभाव ३४ (गुज०)

दुःखडा दीये छे अमने भारी रे, कानुडा तारी मोरली,
दुःखडा० ।।०।।
हुंरे सूतीती मारा भवन मां, सुतेला ने एणे जगाडी,
माजम रात नी झक्की ने जागी मोरली आ कोणे वगाडी ।।१।।

सोने की थाली में पान सुपारी, चावे चबावे घनश्याम ॥६॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणों में शीश नमावें घनश्याम ।७।

व्रजभाव ३८

प्यारी मैं ऐसे देखे श्याम । बांसुरी बजावत गावत कल्याण ॥०॥
कब की मैं ठाढी भैयां सुध बुध भूल गैयां ।
छौने जैसे जादू डारा भूलै मोसै काम ॥१॥
जब धुन कान पैया देह की ना सुध रहिया ।
तन मन हर लीनो विरहों वाले कान्ह ॥२॥
मीराँ बाई प्रेम पाया गिरिधर लाल ध्याया ।
देह सों विदेह भैयां लागो पग ध्यान ॥३॥

७—विशेषः—इस पद का प्रथम चरण निर्गुण-साधन की ओर लक्ष्य करके कहा गया है। ॐ की सुरता जगाना, जीव-हंस का 'सोहं-सोहं' यह उलटा जाप जपना, शांभवी मुद्रा द्वारा अनाहत नाद को सुनना आदि सब निर्गुण उपासना के ही अन्तर्गत है अथवा यों कहा जाय कि एक ही प्रकार के साधन के पर्यायवाची शब्द हैं। इस भाव को लक्ष्य करके भक्त दरियाव साहब ने गाया हैः—

मुरली कौन बजावे हो, गगन मंडळ के बीच ।
त्रिकुटी-संगम होयकर, गंगजमुन के घाट ।
या मुरली के शब्द से, सहज रचा वैराट ॥
गंग जमुन बीच मुरली बाजै, उत्तर दिसिधुन होहि,
या मुरली की टेरहि सुनसुन, रही गोपिका मोहि...॥

१५—विशेषः—इस पद में मीरांबाई ने मुरली के लिये ४ विशेषण लगाये हैं। रूड़ी, रंगीली, मीठी एवं मधुरी। देखा जाय तो इन चारों शब्दों में कोई विशेष अन्तर नहीं। प्रायः एक ही अर्थ के ये पर्यायवाची शब्द हैं फिर भी मीरांबाई ने किसी उद्देशपूर्वक ही यह प्रयोग किया है ऐसा प्रतीत होता है।

संचरदधर सुधा मधुरध्वनि मुखरित मोहन वंशम् ॥(गी.गो.)

'निकसती है अधर की सुधा जिससे ऐसी मधुर-ध्वनि से जिन्होंने वंशी बजाई है।' ऐसी कृष्ण-मुरली के बजने पर भला कौन ऐसा प्राणी होगा जिसके काया, वाचा, मन परमानन्द से सराबोर नहीं होंगे ? फिर और भक्तों में, और मीरांबाई में बहुत अन्तर भी तो है। और भक्तों को भले ही ध्यानावस्था में अथवा कल्पना द्वारा वंशी का कुछ अनुभव हुआ हो परन्तु पूर्वजन्म की गोपिका मीराँ तो व्रजरस की प्रत्यक्ष भुक्त भोगिनी थी। उसने जो मुरली का अलौकिक आनन्द लूटा वह औरों के भाग्य में कहां से! परन्तु तब भी 'मूकास्वादनवत्' सूत्र के अनुसार वंशी की अनन्त महिमा को और उसके अनुभूत आस्वादन को भला वह पूर्ण रूप से कैसे व्यक्त कर सकती है। शब्दों में इतनी सामर्थ्य

'मुरलिया काहे गुमान भरी ।
जात पात हुँ तोरी मैं जानूँ, तूँ बनकी लकरी ॥

भक्त कवि दयाराम भी गोपी द्वारा यही कहलाते हैं:—

तूं तो जंगल कष्ट तणों कटको, रंग रसिये कीधो रंग
चटको, अलीते पर आवड़ो शो लटको ।

भावार्थ:—हे बंशी ! तू तो वन के बांस का टुकड़ा मात्र है। परन्तु रसिक शिरोमणि श्याम सुन्दर ने तुझे अपना लिया इसी से तेरा महत्व बढ़ गया है, इस पर क्यों इतना इतरा रही है !

१७—**विशेष:**—कहीं बंशी-ध्वनि गोप रमणियों के आनन्दोल्लास का कारण बनती है तो कहीं विरह भाव को भी उकसाती है। इस पद में उस रस भरी मुरली ने किसी गोपी की विरह में कैसी दयनीय दशा करदी है, यहाँ तक कि देह का रक्त-माँस भी सूख गया है पर निर्लज्ज-प्राण अभीतक प्रिय मिलन की आशा में अटके ही रह गये । अन्त में गोपी के प्रेम की विजय होती है जब कि वह जमुना जल लेने जाती है वहाँ श्याम सुन्दर से मिलन होकर उसकी आशा पूर्ण होती है ।

१९—**विशेष:**—यह गरवी गुजरात में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी टेर 'तेनो शब्द गगन मां गाजे छे' और भक्त दयाराम के पद की 'एनो शब्द गगन मां गाजे छे' ये दोनों कड़ियाँ समान प्राय हैं।

२०—**विशेष:**—इस पद की 'माझम रातनी, मधुर स्वरनी, व्हालानी, मुरली कोणे वगाड़ी' कड़ी से तुलना करिए:—

'मध्य रात्रिए, मधुरीरे, वहालजीए, वांसलड़ी वाही (बजाई) रे ।

नरसिंह मेहता

२२—**विशेष:**—इस पद के द्वितीय चरण के लिये देखिए १६ वें पद की विशेष टिप्पणी ।

सब धेनु-नाम कइया अधरे मुरली लइया
डाकिया पुरिल उच्च स्वरे।
शुणिया वेणुर रव धाय धेनु वत्स सब
पुच्छ फेली पिठेर उपरे॥
धेनु सब सारि सारि हाम्बा हाम्बा रव करि
दाँडाइल कृष्णेर निकटे।
दुग्ध स्रवि पड़े बाँटे, प्रेमेर तरङ्ग उठे,
स्नेहे गाबी श्याम-अङ्ग चाटे॥

२६—कुरका कुरका=रह रह कर।

विशेषः—अपने प्रियतम के प्रेम में भाग बटाना कोई भी सहधर्मिणी-अनन्य प्रेमिका सहन नहीं कर सकती। समस्त नारी-मानस में यह भाव पूर्ण रूप से जाग्रत रहता है। अपने प्रियतम को वश करके उनकी अधर-सुधा का आकण्ठ पान करने वाली वंशी को, भला एक नारी सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देख ही कैसे सकती है। भक्त सूरदासजी के शब्दों में तो गोपी वंशी को चुरा लेना ही पर्याप्त समझती है यथा:—

'सखी वाकी बन्सी लीजे चोर।
जिन गोपाल किये अपने वश प्रीतिसबन की तोर।
अधरन को रस पियत मुरलिया हम तरसत निशि भोर॥

परन्तु मीराँ जैसी श्याम सुन्दर की अनन्य प्रेयसी इतने ही से भला कैसे सन्तोष कर लेती। उसके लिये तो उस वैरिणी वंशी का अस्तित्व ही कण्टक समान हो रहा है। देखिये वह क्या कहती है:—

'यहाँ मधुबन के कटा डारूँ बाँस, उपजे बांस न बाजे मुरलिया।
(इस पद का ३रा चरण)

'जो मैं थाँने असी जाणती तो लेती तोड़ मरोड़।'

३४—विशेषः—जब गोपी को विश्वास हो जाता है कि मुरली ही श्याम सुन्दर को मिलाने में सहायिका हो रही है, इसीसे उनकी गति विधि जानी जाती है और एक प्रकार से प्रियतम के पास लेजाने के लिये यह निमन्त्रण रूप है तब उसके उपकारों को मानों याद करती हुई अन्तिम चरण में गोपी कह उठती है:—

तुं जीती ने हुं हारी'।

कवि दयाराम भी गोपी द्वारा इसी भावना को व्यक्त करते हैं:—

'दयाना स्वामी ! तमो शामला ! जीत्या ने अमो हारी रे।

नहीं उन्होंने श्री कृष्ण गीतावली की भी रचना की है जिसमें श्री कृष्ण-लीला का सुन्दर वर्णन है।

श्री मीराँदेवी और गुसाँई तुलसीदासजी के उपर्युक्त पद एवं दोहे के प्रसंगों को कुछ लोग इसलिये 'क्षेपक' मानते हैं कि सामान्य स्तर से ऊपर उठे हुए महापुरूषों में लौकिक भेद और संकीर्णता का होना संभव नहीं। वास्तव में यह ठीक भी है। तभी गोस्वामी द्वारा 'श्रीकृष्ण गीतावली' और मीरांबाई द्वारा अन्य देवी-देवताओं के पदों की रचना की गई।

मीरांबाई का यह कहना कि:—

> मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
> जाके शिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
>
> (विं० ४ पद सं० १०)

अवश्य ही यह उसकी एक इष्ट उपासना अथवा अनन्यता का द्योतक है, और इसीलिये जब उसने सीधा अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दर से ही सम्बन्ध बाँध लिया और वे ही सर्व-समर्थ, उसके परम प्रियतम एवं सर्वस्व हो चुके तब केवल अपने लौकिक सुहाग के लिये उसे अन्य देवी-देवता की पूजा की आवश्यकता ही क्या! इस परिस्थिति में यदि वह लौकिक जातीय प्रथा के अनुसार की जाने वाली पूजा का विरोध करती है तो कोई अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। और मीरांबाई की अन्य देवी-देवताओं की पद-रचना के लिये तो यही दृष्टांत पर्याप्त है कि जिस प्रकार एक मात्र अपने स्वामी से अनन्य प्रेम सम्बन्ध के होते हुए भी कुलवधू, अपने पति के अन्य सम्बन्धी जनों के प्रति भी आदर एवं सेवा का भाव रखती है, वैसे ही मीरांबाई

होता है और परस्पर विरोधी भाव भीतर ही भीतर टकरा कर अन्त में अनायास ही मन सत्यभामा के पक्ष की पुष्टि करता हुआ उसके साथ पूर्ण हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करने लग जाता है और साथ ही साथ श्री कृष्ण पर उनके निष्ठुर और निर्मोही होने का आक्षेप करने को बाध्य हो जाता है।

कोई भी नारी अपने पति के प्रेम को बँटता हुआ देख कदापि मूक रह कर सह नहीं सकती। मानव स्वभाव में ही नहीं अपितु देवादिकों में भी यही मनोवृत्ति देखने में आती है। ऐसे अनेकों दृष्टांत पुराणादि ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। नारी के भाव संस्कारों को–उसके यथार्थ मानस को वास्तव में तो केवल नारी ही समझ सकती है।

मीरांबाई ने किस सरसता के साथ सत्यभामा के हृदय की मर्मव्यथा की इस पद में अभिव्यक्ति की है सो देखते ही बन पड़ता है।

श्रीगणेश स्तुति ४

विघ्न हरण गवरी के नन्दन, सुमर सदा सुख पाई ॥०॥
जो नर उठ गणपति को सुमरे, विघ्न व्याधि मिटाई।
अन्न धन लक्ष्मी वधे चोगणा, मन वाँछित फल पाई ॥१॥
भाल तिलक अरू छत्र विराजे, कुंडल की छव छाई।
गल सोहे मोतियन की माला, केशर तिलक बनाई ॥२॥
थाल भरचो कंचन को मोदक, मेवा और मिठाई।
रिद्धि सिद्धि तो चमर ढुलावे, जीमो गजानन्द राई ॥३॥
अष्ट सिद्धि नव निधि द्वारे, रहे सदा थिरताई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुमर सदा सुखपाई ॥४॥

श्रीजानकी-स्तुति ५

ऊभा ऊभा जानकीजी गणपत सुमरे, मारा पिताजी की बदनामी,
धनुष नहीं टूटो, राजदुलारी धनुष नहीं टूटो, रेउँला कुंवारी ॥०॥
दोई दोई भाई अयोध्या से आया।
नरखण गई जनकपुर की नारी ॥१॥
दोई दोई भाई हरख्या जो फरे।
वलखी फिरे जनकपुर की नारी ॥२॥
डांवा कर से धनुष उठायो। तीन टूक कर डारचा ॥३॥
धनुष अब टूटो। परण्यां जी धनु धारी ॥४॥
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। हरि चरणा बलिहारी ॥५॥

श्रीजगदीश ६

आप तो सांचा छो जी जगदीश।
आप तो बड़ा हो जगदीश, दर्शन देवो विसवावीस ॥०॥
सनमुख तो गरूडजी विराज्यां, भक्ति देवो ने जगदीश ॥१॥

सुदामा ९

देखत राम हँसे सुदामाँ कूँ देखत राम हँसे ॥०॥
फाटी तो फूलड़ियाँ पाँव उभाणे, चलतैं चरण घसे ॥१॥
बालपणे का मिंत सुदामाँ, अब क्यूँ दूर वसे ॥२॥
कहा भावज ने भेंट पठाई, ताँदुल तीन पसे ॥३॥
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे ॥४॥
कित गईं प्रभु मेरी गउअन बछिया,
द्वारा बिच हसती फसे ॥५॥
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, सरणे तोरे बसे ॥६॥

तुलसीदास १०

स्वस्ति श्री तुलसी गुण-भूषण दूषण हरण गोसाँई।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु शोक-समुदाई ॥१॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग और भजन करत मोहिं देत कलेश महाई ॥२॥
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई।
बालपने में मीराँ कीन्हीं गिरधरलाल मिताई ॥३॥
मेरे मात तात सम तुम हो हरिभक्तन सुखदाई।
मोकों कहा उचित करिबो अब सो लिखिये समुझाई ॥४॥

प्रभु पद-महिमा ११

चरण रज महिमा मैं जानी ॥०॥
जिहि चरणन से गंगा प्रकटी, भगीरथ कुल को तारी ॥१॥
जिहि चरणन से विप्र सुदामा, कंचनपुरी कर डारी ॥२॥
जिहि चरणन से अहल्या उधारी, गौतम की पटरानी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल लिपटानी ॥४॥

मीराँ कहे प्रभु पैया परूं तेरी,
एक भरोसो मोपे कृपा करो रे ॥३॥

विनय १६

सुरत पर वारी जाऊं नागरनंदा ॥०॥
सब देवन में कृष्ण बड़ा है, तारन में ज्युं चंदा।
सब सखियन में राधा बड़ी है, तीर्थन में बड़ी गंगा ॥१॥
सब भक्तन में भरत बडा है, जोधन में हनुमंता।
मीराँ कहे प्रभु तुम्हरे दरश से, मिट जाय चोरासी की चिंता ॥२॥

सत्यभामानुं रूसणुं १७ (गुज०)

जाण्युं जाण्युं हेत तमारूं जादवा,
हेत होय तो हैडा मां वरतावजो ॥०॥
अमे तमारी आखडीये अळखामणा,
प्रेम छुपे ना नयणा मां झलकावजो ॥१॥
पारीजातक फूल नारदजी लावीया,
जइ सोंप्यु राणी रुकमणी रे द्वारजो।
अेके पांखडी मारे मंदिर न मोकली,
कीधी मुजथी ए अदकेरी नारजो ॥२॥
अचरत पामो शुं आनंद माणु नहिं,
जाओ जाओ नहि बोलु सुन्दरश्यामजो।
रुकमणी ने मन्दिरे जइ रंगे रमो,
हवे तमारे अम साथे शुं कामजो ॥३॥
अळगा रहो अलबेला अडशो नहिं मने,
तम साथे करूं वात न नंदकुमारजो।
म्होले तो पधारो मानीती तणे,
आज पछी नव आवशो मारे द्वारजो ॥४॥

पूरण पाप मन्यांरे अे अवळातणां,
जेनो परण्यो पर घेर रमवा जायजो ।
अवोलडा लीधा रे वाळे वेप थी,
ते नारीनुं जोवन झोलां खायजो ॥११॥
पाणीडां पीने पछी घर शुं पुछीअे,
वेरी वापे पूरण साध्यां वेरजो ।
उछेरी आपी अेवानां हाथमां,
गळथुलीमां घोळीन पायां झेरजो ॥१२॥
शोकलडीना वेण मने वहु सांभरे,
नयणामां छूटे आंसुधारजो ।
हैडुं केम नथी फाटतुं हजी अमतणुं,
उर उपर वह्या जाय मेघ मलारजो ॥१३॥
अेवां ते मेणां शुं वोलो मुख थकी,
भोळा मननी शुं आणो छो आंतजो ।
नारी मन शुं राखो नारद ने कहे,
कुळवंती तमे केम करो कल्पांतजो ॥१४॥
पटराणी तमथी वीजी प्यारी नथी,
शुं सतभामा कुडो आव्यो क्रोधजो ।
कपटी नारदियाना केहेण न मानिये,
घणो वधारे घेर घेर विरोधजो ॥१५॥
साचुं जो कहुं तो तमे नव सांभळो,
कहो सतभामा खाउं तमारा समजो ।
काळुडा नागने आपुं जइ आंगळी,
तोय तमारूं मन नव माने केमजो ॥१६॥

श्रीजगन्नाथ-स्तुति १९

होजी म्हारा लटकाळा जगन्नाथ दरशन म्हाने वेगा दीजो जी ॥०॥
दरशन दीजो साँवरा किरपा करीजो,
होजी म्हारा सांवरा जगन्नाथ० ॥१॥
आपरा दरशन विना कल न पडत है ।
होजी म्हारो तडप तडप जीव जाय, तलफूं सुध वेगा लीजो जी ॥२॥
गुण तो प्रभुजी म्हांमें एक नहीं छे ।
होजी म्हारो ओगुण भर्यो सरीर, ओगुण गुना माफ करीजो जी ॥३॥
बाई मीराँजी री विनती ।
होजी म्हारे सरणे आया री लज्जा राखजो ॥४॥

सीता-हरण २० (गुज०)

सीता कोणे हरी—ओ लच्मण सीता कोणे हरी ॥०॥
सीता हरी पेला लंकापति रावणे । गई छे रोष भरी रे ॥१॥
कोने सीवडावुं मृगचर्मनी चोळी । कंइ एक खूणे पडी ॥२॥
आ पर्णकुटी मां सज्यां छे । ते तो सुनी पडी ॥३॥
जोगी ने वेषे रावण आव्यो । लई गयो लंका भणी ॥४॥
क्रोधे भराई लच्मणजी रे आव्या । खांधे धनुष धरी ॥५॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । रैयत सुनी रे पडी ॥६॥

राम-वनवास २१

लछमन धीरे चलो मैं हारी ॥०॥
राम लछमन दोनों भ्रातर, बीच में सीता प्यारी ॥१॥
चाल चलत मोहे छाली पड गई, तुम जीते मैं हारी ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी ॥३॥

श्रीराम-स्तुति २५

आ तो सांवरी सुरत मारा मनमां वसी ।
कांई मधुरी मूरत मारा दिल मां ठसी ॥०॥
छोटे छोटे चरण, कमल दल लोचन ।
ए तो धनुप उठावत कमर कसी ॥१॥
तोडत धनुप, जनक यज्ञ पूरण ।
ए तो असुरन के मन शंक धसी ॥२॥
मालती डालीनी, फूल माळा ।
ए तो रघुवर कुं, पेराय हसी ॥३॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर ।
एना चरण कमल मारी सुरत ठसी ॥४॥

श्री अंबाजी-स्तुति २६ (गुज०)

कीरपा करजो अंबा आज मने कीरपा करजो ॥०॥
बारे गत्रीसी रसोई करूं मा । भोजे भावे जमवा ॥१॥
चोंसठे जोगणी टोळे वळी मा । आवजो गरवे रमवा ॥२॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर । शुंभ निशुंभ ने दमवा ॥३॥

श्री गणेश-स्तुति २७ (गुज०)

गणपति नमो रे नमो, जय जय गणपति नमो रे नमो ॥०॥
सरस्वति साह्यक गणपति दायक,
मोदक लाडु जमो रे जमो ॥१॥
तीन लोक के तुम हो दाता,
अवगुण मारा खमो रे खमो ॥२॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
भक्त उद्धारण तमो रे तमो ॥३॥

चुनिन तनिन को कबीरा लीजै मति बुधि जांकी चेरी ।
खेनि बोवन को धनरा लीजै थोड़ी माहिं बहुतेरी ॥१॥
पढ़िनि गुनिन को जैदेउ लीजै वाचत वेद पुराणा ।
रंग रंगनि कौ सीवन सीवन को लीजै छीपा नामा ॥२॥
खिचड़ी करन कौ करमाबाई लीजै कलस भरन कौ रंका बंका ।
तोलन जोखन कौ सधना लीजै तेग वाहन कौ पीपा ॥३॥
तेल लावन कौ सैना लीजै हरि चरना लपटाना ।
पनीआ गढ़न कौ बोझ ढोरन कौ लीजै रविदासा सरना ॥४॥
सभ भगतनि मिल बेड़ा लादियो सूर भली गत पाई ।
अगम निगम को जहाज ठिलियो है जसु गावै मीराँबाई ॥५॥
सुत के हेतु अजामलु तारिओ नाराइन बोलाई ।
जहिर कटोरि राणे भेजी पीवै मीराँबाई ॥६॥

श्रीराम   ३२

नमो नमो रचना रघुवर की ।
शिव विरंची सनकादिक मोहे,जो सोचे तो कहाँ गति नर की ॥०॥
दीन धनाढ्य दीन करे लागत, चार पलक नहिं करकी ।
संपति विपद विपद करी संपति, अकथ कथा दशरथ सुत करकी॥१॥
राणाजी की मति सब बिगरी, मैं तो गई बुद्ध मुनिवर की ।
मीराँ के प्रभु तुम हो रच्छक, मैं तो शरण गई सियवर की ॥२॥

श्रीराम   ३३

मोरे तो मन राम-चरण सुखदाई ॥०॥
जिन चरणन सों निकसी सुरसरि शंकर जटा समाई ।
जटा शंकरी नाम धरयो है, त्रिभुवन तारन आई ॥१॥
जिन चरणन की विमल पादुका, भरत रहे लवलाई ।
जो केवट कहँ पावन कीन्हों, जब प्रभु नाव चढ़ाई ॥२॥

पदों के शब्दार्थ-भावार्थ-विशेषादि

★

१—विशेषः—मीरांबाई जब वृन्दावन गई तब वहाँ बंगाली परम वैष्णव महात्मा श्री जीव गोस्वामी के सत्संग में कुछ काल रही थीं यह महात्मा श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य श्री रूप और सनातन के भतीजे थे। प्रतीत होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु की अपूर्व प्रेमाभक्ति की महिमा को सुन कर उनकी स्तुति में यह पद बनाया है। वैष्णव भक्त-जनों में श्री गौराङ्ग महाप्रभु के श्रीकृष्ण के अवतार होने की जो श्रद्धा-भरी मान्यता प्रचलित है उसका प्रभाव पद पर स्पष्ट व्यक्त होता है।

७—विशेषः—देवर्षि नारद ने अपने नारद भक्ति सूत्र (सू.सं.७२) में कहा है-"नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियादि भेदः" अर्थात् भक्त के लिये उपयुक्त गुणों में से किसी की भी प्रधानता कोई आवश्यकीय नहीं। भक्तों में कोई भेद नहीं। जिसके भी हृदय में काया वाचा मनसा अखण्ड भगवद् प्रेम वहता हो वही भक्त है। चाहे वह कैसा भी हो। इसी भाव को शबरी में घटाते हुए मीरांबाई ने इस पद में कहा है—'ऐसी कहा अचारवती' (क्रिया -'रूप नहीं एक रती' (रूप) 'नीचकुल' (कुल) 'ओछीजात' (जाति) 'अति ही कुचीलणी' (धन) धनहीन, दारिद्र्यवती-'ऐसी कहा वेद पढी' (विद्या) अर्थात् उक्त सभी गुणों से हीन होने पर भी वह प्रभु प्रेम के प्रताप से ही भव सागर से तर गई।

इस पद की और विशेषता यह है कि इसकी टेर को वाद करने पर शेष प्राय: कवित्त छंद रह जाता है।

६—फूलड़ियाँ=जूतियाँ। पाँव उभाणे=नङ्गे पैर।

विशेषः—इस पद में सुदामा चरित्र का सार आ गया है। "फाटी तो फूलड़ियाँ" 'पाँव उभाणे' 'चलतैं चरण घसे' 'ताँदुल तीन पसे' आदि शब्दों द्वारा मीरांबाई ने सुदामा की दारिद्र्य पूर्ण परिस्थिति और मनोदशा का निर्दोष विनोदयुक्त बड़ा ही सुन्दर, मार्मिक और यथार्थ भाव चित्रण किया है।

१०—वरियाई=बड़ी। मिताई=मित्रता।

विशेषः—कहा जाता है कि पति के देहान्त होने के पश्चात् देवर विक्रमाजित द्वारा मीराँ को अविचार पूर्वक सताया जा रहा था तब उसने उपरोक्त पद श्री गोस्वामी तुलसीदास जी को लिख कर भेजा था।

करके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा है पर हाय ! सौत के उन व्यङ्ग रूप मेघ मल्हार के प्रभाव से नेत्रों से वर्षा की झड़ी लगने पर भी अभी तक हमारा हृदय क्यों न फट गया ? ॥१३॥ एवां..............कल्पांत जो=(श्रीकृष्ण) ऐसे उपालंभ भरे वचन मुख से बोलना उचित नहीं ! अपने भोले मन को तर्क-वितर्क द्वारा भ्रम में क्यों डाल रही हो ! नारद के कहने से, अपने उदार स्वभाव और सरल चित्त में साधारण स्त्री सुलभ भावों को जगाकर इस प्रकार दुःखित होना व क्लेश करना, क्या तुम जैसी उच्च कुलवधू को शोभा देता है ॥१४॥ पटराणी..............विरोध जो= तुम पटरानी से वढ़ कर और कोई मुझे प्यारी नहीं—सत्यभामे ! व्यर्थ क्रोध न करो । घर घर में कलह वढ़ाने वाले उस कपटी नारद की वातों में न आओ ॥१५॥ साचुं जो..............केमजो=मैं सत्य कहता हूँ तो तुम सुनती नहीं हो ! सत्यभामे, कहो तो तुम्हारी शपथ खाऊँ अथवा काले नाग द्वारा अपनी अंगुली को डसवालूँ ! इस पर भी तुम्हारा मन क्यों नहीं मानता है ! ॥१६॥

विशेषः—गुजराती भाषा का यह वड़ा ही भाव पूर्ण और रोचक 'गरवी' का पद है। स्त्री सुलभ संस्कार वश सत्यभामा की जो मनोदशा हुई थी, इस पद में उसे वहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। सरल भाषा में भी इस प्रकार सरसता भरी है कि पढ़ते-पढ़ते मन उन्हीं भावों में तन्मय हो जाता है। यह गरवी गुजरात में वहुत प्रचलित है और वहाँ के स्त्री समाज में वड़ी ही रुचि पूर्वक गाई जाती है।

३१—सभ..............मीरांवाई=प्रभु के उस सुदुर्लभ धाम की ओर जिन सव भक्त वीरों का वेड़ा चल पड़ा और अन्त में जिन्हें सद्गति प्राप्त हुई मीरांवाई उनके गुणगान करती है।

सारे पद का भावार्थः—प्रभु की शरण में जाने को मेरा जी चाहता है क्योंकि वे समदर्शी हैं जो जाति, वर्ण और व्यवसाय आदि की ओर न देख केवल प्रेम और भक्ति से ही रीझ कर भक्त को अपनी अभय शरण में ले लेते हैं। (दृष्टांत में वताए गए) सव भक्तों को प्रभु ने उनके प्रेम-भाव से ही रीझ कर उन्हें अपना लिया।

३२—विशेषः—इस पद का वहुत कुछ अंश श्री गो० तुलसीदासजी के 'भज मन राम चरन सुखदाई' पद से मिलता जुलता है।

—: समाप्त :—

पृष्ठ संख्या	पैरा पद सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४३	नीचे से	६	विपय में	विषम एवं
५४५	३	३	हँसती	हँसाती
,,	,,	७	प्रणाय	प्रणय
५४६	ऊपर से	११	राजचरण	चरण
५५१	,,	४	में	में है।
५५२	,,	४	मिली	मिति
,,	नीचे से	२	प्रिय	प्रिया
५५७	दोहा	१	मो	तो
५५६	संस्कृत	२	नर्तती	नर्तकी
५८३	२६	३	यथा छे	थया छे
६०३	६१	३	टोटो	ढोटो
६१७	१२५	५	वाछकू ने	वाछरडां
६३८	१८५	२	सहेजी	सहेळी
६८६	३३१	१२	'ख	कंस
७४०	४	३	माचिक	मायिक
७५८	२६	२	जहुर	जरूर
८३२	४	२	... णाम विचार...	...णा गविचा...
८६१	श्लोक	१	...मिच्छ तामूकुतो...	...मिच्छता मकुतो...
८७६	२३	३	भर	भर-भर
८७८	भजन नं० २	३	हरिगन	हरिगुन
,,	,,	४	कंचक	कंचन
८७६	ऊपर से	६	जनेर	जवेर
८६६	१६	११	कारे	करे
,,	१७	२	लई	लई है
६०६	ऊपर से	४	लगयो	लगायो
६२७	११	२	जव	जग
६४४	ऊपर से	३	का अनेकों	का प्रत्यक्ष
६४८	२०	२	दोडी दोडी	दा'डी दा'ड
६६४	२०	५	ताडु'	तारू'
६७६	नीचे से	५	साम्फ	साम्य